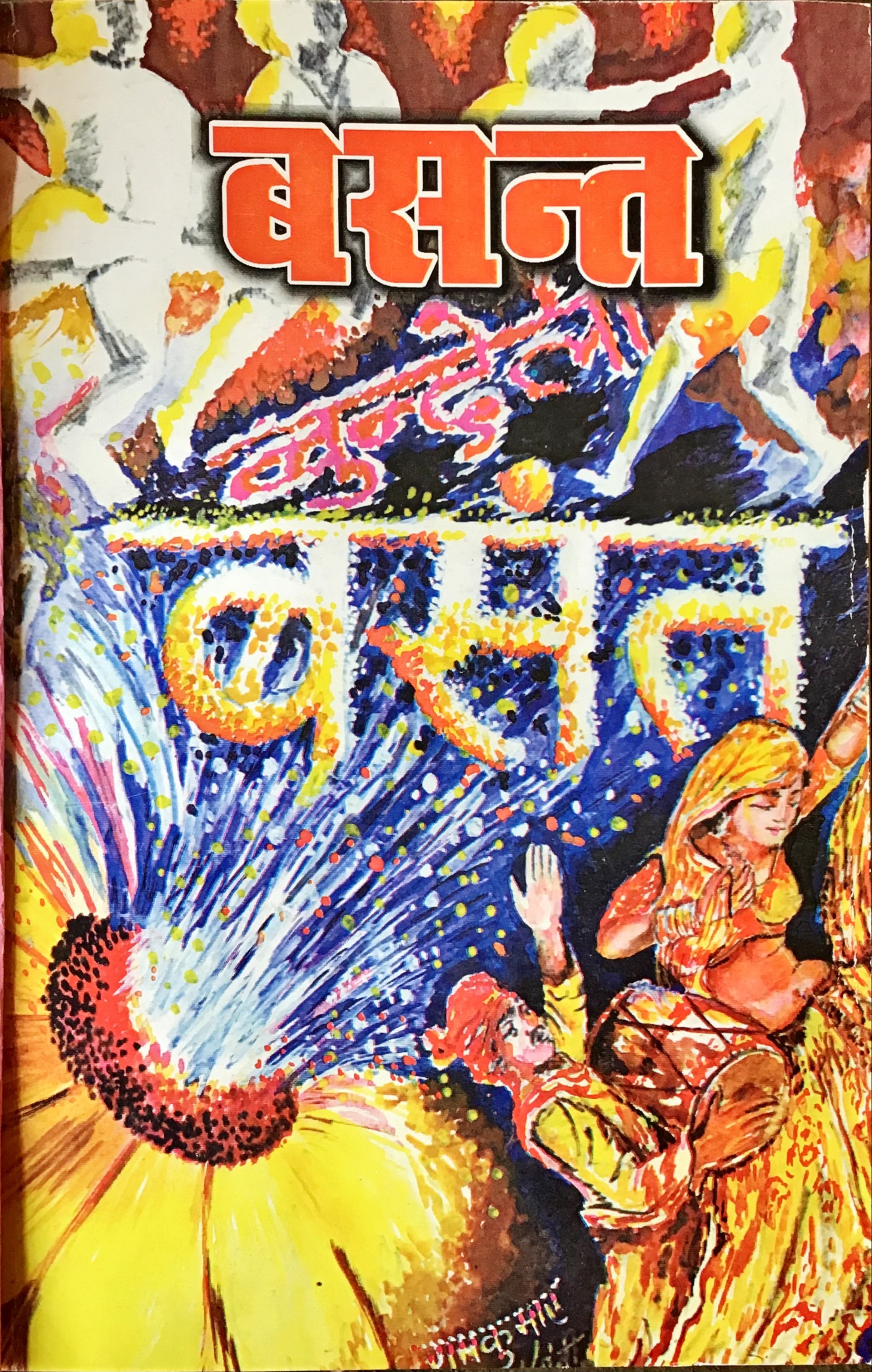
बसन्त







INDO FARM
2050 DI
2040 DI

बुन्देली उत्सव के अवसर पर प्रकाशित स्मारिका

बुन्देली बसन्त

सम्पादक :

डॉ. बहादुर सिंह परमार

४/२, प्रोफेसर्स कॉलोनी, छतरपुर (म.प्र.) ४७१००१

☎ : (०७६८२) ४४१३३

सह सम्पादक :

डॉ. के. एल. पटेल

३/४, प्रोफेसर्स कॉलोनी, छतरपुर (म.प्र.)

डॉ. हरिसिंह घोष

घोषयाना, संकटमोचन मार्ग, छतरपुर (म.प्र.)

☎ : (०७६८२) ४३०६६

बुविसं

प्रकाशक :

बुन्देली विकास संस्थान

बसारी जिला छतरपुर (म.प्र.) ☎ :(०७६८६) ८१२५१

✦

□ सम्पादन एवं प्रबंध पूर्णतया अवैतनिक एवं अव्यावसायिक

✦

□ **आवरण चित्र :**

रामकुमार सोनी, छतरपुर (म.प्र.)

✦

□ **छाया चित्र :**

आर.के. स्टूडियो एवं दिनेश पटेल, छतरपुर

✦

□ कीमत :

६०/– (साठ रुपये)

✦

□ **मुद्रक :**

जिला सहकारी संघ मुद्रणालय मर्या०,
छतरपुर (म.प्र.) ☎: (०७६८२) ४८६८६

✦

□ **आवरण मुद्रण :**

प्रियंका आफसेट, भोपाल (म.प्र.) ☎: (०७५५) ५५५७८९

✦

□ बुन्देली बसन्त में प्रकाशित लेखकों के विचार उनके अपने हैं। उनसे संपादकीय सहमति अनिवार्य नहीं।

✦

□ विवादास्पद मामले केवल छतरपुर न्यायालय के अधीन होंगे।

अनुक्रम

संपादकीय

आलेख :

१. स्वतंत्रता की प्यासी आत्मा चम्पतराय बुन्देला – *वीरेन्द्र बहादुर खरे* १
२. बुन्देलखण्ड के पारम्परिक आभूषण – *कु. रामकिशोरी गुप्ता* ७
३. रायप्रवीण यथार्थ के आईने में – *पं. गुणसागर सत्यार्थी* १२
४. बुन्देली विवाह गीतों में राम – *डॉ. के.एल. पटेल* १७
५. बुन्देली का संस्कृत से अन्त:सम्बन्ध – *डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी* २२
६. बुन्देलखण्डी कवि ठाकुर (ठाकुरदास कायस्थ) और उनका काव्य – *डॉ. गंगा प्रसाद बरसैंया* २५
७. बुन्देली लोकसंस्कृति का बदलता स्वरूप – *डॉ. बहादुर सिंह परमार* ३०
८. मधुकर शाह बुन्देला 'नारहट'– *जयेन्द्र सिंह परमार* ३३
९. छतरपुर अंचल में सैर साहित्य की परम्परा – *डॉ. (श्रीमती) गायत्री बाजपेयी* ३४
१०. छत्रसाल के वंशज शाहगढ़ नरेश वखतबली शाह – *हरगोविन्द तिवारी* ३८
११. बुन्देली की उपबोली बनाफरी– *डॉ. श्रीनारायण पाठक* ४५
१२. गांव के लिए साहित्य – *डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त* ४९
१३. बुन्देलखण्ड में गौड़वानी खटोला राज्य एवं खटोला दुर्ग – *डॉ. के.पी. त्रिपाठी* ५३
१४. बुन्देलखण्ड का कलापक्ष – *मधु श्रीवास्तव* ५६
१५. वीरसिंहजू देव महल दतिया : एक परिचय – *डॉ. परशुराम शुक्ल* ५९
१६. तिरहार क्षेत्र का भक्ति संगीत : एक पहचान – *राहुल मिश्र* ६१
१७. मूर्तिकला, स्थापत्य एवं चित्रकला के परिप्रेक्ष्य में बुन्देलखण्ड – *डॉ. सरोज गुप्ता* ६६
१८. बुन्देलखण्ड में प्रतिहारी सत्ता – *प्रागेन्द्र प्रताप सिंह* ७०
१९. बुन्देली संस्कृति का प्रतीक स्थल : अबार माता – *डॉ. लखनलाल खरे* ७२
२०. लोककवि ईसुरी का आध्यात्मिक चिन्तन – *डॉ. दुर्गेश दीक्षित* ७४
२१. बुन्देली लोकगीतों में सीता वनवास – *रमेश शंकर सक्सेना* ७७
२२. एकता की भावना कौ संदेशौ देती बुन्देली संस्कृति– *आशा चौरसिया* ८१
२३. बुन्देलखण्ड के लोकोत्सव और नवरात्रि – *विन्ध्यकोकिल भैयालाल व्यास* ८६
२४. बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक धरोहर 'टेसू' – *श्रीमती ब्रजलता मिश्रा* ८८
२५. बुन्देली तंतटोटका – *डॉ. डी.आर. वर्मा 'बेचैन'* ९०
२६. मुंशी अजमेरी द्वारा रचित 'श्रीरामचरित नाटक' – *डॉ. सियाराम शरण शर्मा* ९४
२७. चरखारी : ऐतिहासिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक वैभव – *राम प्रकाश गुप्त* ९६
२८. बुन्देलखण्ड के व्यंजन और काव्य परम्परा – *डॉ. प्रेमलता 'नीलम'* ९९
२९. ईसुरी काव्य में सामाजिक चेतना – *डॉ. एन.आर. चौरसिया* १००
३०. विलुप्त हो रही बुन्देलखण्ड में फड़बाजी तथा ख्यालबाजी – *अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद'* १०२
३१. लोकगाथा अमरवीर हरदौल – *उषा सक्सेना* १०५

३२. बुन्देलखण्ड के कथात्मक गीत : पुंवारे — *वर्षा सिंह* १०६
३३. कवि जोगीदास भाण्डेरी और उनके वंशज — *डॉ. श्याम बिहारी श्रीवास्तव* १०८
३४. बुन्देल केशरी महाराज छत्रसाल — *नरेन्द्र जैन* १११
३५. बम्बुलिया में निहित नर्मदा के प्रति आत्मीय संवेदनाएं — *डॉ. सुश्री शरद सिंह* ११४
३६. बुन्देलखण्ड का एक अद्वितीय अभिशप्त प्रासाद नरसिंह महल दतिया — *हरिविष्णु अवस्थी* ११७
३७. मदन वर्मा और महोबा — *कृष्ण किशोर द्विवेदी* १२१
३८. बाबू गुलाबराय का बुन्देखण्ड प्रवास — *श्रीनिवास शुक्ल* १२६
३९. अपनी माटी मीठे बोल : आकाशवाणी छतरपुर — *गुलाबचंद* १४२

कविताएँ :

१. दिया तरें नदिया — *आशाराम त्रिपाठी* ६
२. बुन्देली गीत — *डॉ. डी.पी. खरे 'प्रसाद'* ११
३. 'भूख' पर बुन्देली चौकड़ियां — *एल.एम. चौरसिया* १६
४. दादरौ — *डॉ. लोकेन्द्र सिंह नागर* २१
५. बुन्देली पद — *डॉ. डी.पी.खरे 'प्रसाद'* ६५
६. गाव गीत फागुन के — *एन.डी. सोनी* ७६
७. बसन्त — *जगदीश्वर* ७६
८. बुन्देली गजल : ख्याल में — *साकेत सुमन चतुर्वेदी* ८५
९. दो कुण्डलियां — *कल्याणदास साहू 'पोषक'* ८५
१०. हम गीत बुन्देली गायें — *हरगोविन्द तिवारी* १०७
११. अपनौ गांव — *नवल किशोर सोनी 'मायूस'* ११३
१२. सांची कात चिनसचिनी लगने — *डॉ. हरिसिंह घोष* ११३
१३. सुनवा की विदा — *आर.बी. सिंह* ११५
१४. बुन्देली बसन्त — *श्रीमती विजयश्री बुन्देला* १३५

संकलन :

१. बुन्देली अहाने — *श्रीमती दीप्ती मिश्रा* ३२
२. बुन्देली मुहावरे — *डॉ. जयप्रकाश मिश्रा* १०३
३. लुप्त होते बुन्देली शब्द — *सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष'* १२३
४. बुन्देली बुझौअल — *अरविन्द सिंह यादव* १३५

लघुकथाएँ :

१. देखौ कोउ रह न जाए — *निहाल* ११३
२. अर्थ/सहारौ — *निहाल* १२४

लोककथाएं :

१. सूतौ न पौनीं, कोरी सें लठा—लठौ — *डॉ. नारायण दास गुप्त 'कमलेश'* ६३
२. चम्पा कौ फूल — *श्रीमती कुन्ती व्यास* ९२

विविध :

१. आचार्य कन्हैया लाल शर्मा 'कलश' से भेंटवार्ता — *वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक'* ८३
२. बुन्देली गीत गंगा की रसधार बहती रही बसारी में — *जगदीश प्रसाद रावत* १३०
३. बुन्देली लोक कलाओं व खेलकूदों का उत्कृष्ट प्रदर्शन — *भरत श्रीवास्तव* १३१
४. चिट्ठी मिली १३४
५. श्री शंकर लाल मेहरोत्रा का संक्षिप्त परिचय — *अरविन्द यादव* १३९

सम्पादकीय–

विश्व में जब से संस्कृतियों के संघर्ष का उद्घोष गुंजायमान हुआ है तब से विश्व में सांस्कृतिक आत्मसमर्पण की प्रवृत्ति पनप रही है। भूमण्डलीकरण के इस दौर में हमारे देश की सांस्कृतिक परम्पराओं पर विश्व के धन्नासेठों द्वारा सुनिश्चित प्रहार किया जा रहा है, हमारी संवेदनाओं, हमारी परम्पराओं, हमारी मान्यताओं और हमारी जीवन शैलियों का पण्यीकरण कर उसे कमाई का जरिया बनाया जा रहा है। पहले हम राजनैतिक रूप से गुलाम जरूर थे परन्तु सांस्कृतिक मूल्यों हेतु संघर्ष करते थे आज स्थिति उलट गई है। हम राजनैतिक रूप से तो आजाद हैं किन्तु अपने सांस्कृतिक मूल्यों को बाजारू, मायावी संस्कृति के सामने स्वयं स्वेच्छा से त्याग रहे हैं। यह स्थिति क्यों पैदा हुई है? यह यक्ष प्रश्न खड़ा है। इस पर चिन्तन करने पर उत्तर मिलता है कि आज 'मास मीडिया' को विश्व व्यापारियों ने एक हथियार के रूप में उपयोग कर हमारे सामने एक ऐसा छद्म स्वर्णमृग खड़ा किया है कि जिसके पीछे लोक रूपी 'राम' लगातार अपनी इच्छा रूपी 'सीता' की तुष्टि हेतु सतत् भटक रहा है। आज आम आदमी अपनी संस्कृति का स्वयं गला घोंट रहा है। ऐसी विषम परिस्थितियों में लोक संस्कृतियों तथा उसके साहित्य के लिए कार्य करना बड़ा दुष्कर है।

आज लोकमन अपने संस्कारों, अपनी परम्पराओं और अपनी अस्मिता को बचाने के लिए छटपटा रहा है किन्तु वह परिस्थितियों की विवशताओं में कुछ कर नहीं पा रहा है। वह अपनी रोजी–रोटी के धन्धे में इतना उलझ गया है कि वह लोक परम्पराओं को बचाने की बात सोच ही नहीं पा रहा है। किन्तु यह भी सत्य है कि वह गहरे से लोक संस्कृति से जुड़ा है, क्योंकि वह उसे जीवनद्रव प्रदान करती है। लोक संस्कृति से ही लोक साहित्य सृजित होता है। जब लोकमन तरंगित हो अपनी भावनायें गीतों, गाथाओं और कथाओं में व्यक्त करता है, तो लोक साहित्य सृजित होता है। लोकमन से उद्घाटित या रचित साहित्य की अपनी मधुरता होती है, जो लोक को अपनी ओर आकर्षित करती है। लोक संगीत और लोक भाषा का मेल जब लोक साहित्य से होता है तो हारा–थका मन नवीन स्फूर्ति प्राप्त करता है।

पचास वर्ष पहले का हमारा जीवन दर्शन कर्म में प्रवृत्त होकर सादगीपूर्ण जीवन बिताने तथा सत्य, ईमानदारी एवं निष्ठा से कर्त्तव्य निर्वहन का था परन्तु इन पचास वर्षों में हमारे जीवन में झूठ, फरेब, बेईमानी और मक्कारी के साथ बहानेबाजी तथा शॉर्टकट तरीकों ने इतनी अधिक पैठ बनाई है कि लोकजीवन भी इससे अछूता नहीं है। आज 'लोकमंगल' की अवधारणा कागजों और नारों में उछल रही है परन्तु आचरण में 'स्वमंगल' के रूप में परिणत हो गई है। इन तमाम सवालों को मैं यहाँ इसलिये उठा रहा हूं कि इस भयावह परिस्थिति से हम कैसे निपटें? इसका जवाब यह है कि हमें सामूहिक संघर्ष करना होगा। हमारी लोक संस्कृतियों, हमारे लोक कलाकारों तथा लोकमन से जुड़े नेताओं को आगे आना होगा तभी हम अपने वास्तविक चेहरे के स्वरूप को बचाये रखकर उसे अगली पीढ़ी को हस्तांतरित कर सकेंगे। इसका एक सत्प्रयास छतरपुर जिले के ग्राम बसारी में विगत छः वर्षों से हो रहा है। बुन्देलखण्ड की लोकरंजन सम्बन्धी विविध विधाओं को मूलरूप में प्रोत्साहित करने हेतु प्रयास किए जा रहे हैं, जिससे बुन्देलखण्ड में सांस्कृतिक अस्मिता को रेखांकित किया जा रहा है।

बुन्देलखण्ड अँचल में ऐतिहासिक महत्व के पुराअवशेष बिखरे पड़े हैं, इनको संरक्षित करने की आवश्यकता है किन्तु इस ओर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। इसके लिए बुन्देलखण्ड के ही लोगों को आगे आकर संरक्षण का दायित्व निभाना होगा। दुख होता है जब पता चलता है कि अँचल के पुराने किलों, मंदिरों, गढ़ों तथा अवशेषों को गढ़े धन की खुदाई की लालच में लोग नष्ट–भ्रष्ट कर रहे हैं।

इसके लिए एक जनचेतना की आवश्यकता है। कालिंजर के अद्वितीय किले के पत्थरों को लोग अपने नाबदानों में लगाये हैं, उन पर कपड़े धो रहे हैं। गोंड़ों का खटोला किला उपेक्षित पड़ा है, दतिया के नरसिंह महल का जो संरक्षण होना चाहिए था वह नहीं हो रहा है। इनके अतिरिक्त गढ़कुण्डार का किला हो या राजगढ़ का सभी को संरक्षण की दरकार है। 'बुन्देली बसन्त' के इस अंक में कुछ पुरातात्विक महत्व के स्थानों पर हमने आलेख प्रकाशित कर लोगों का ध्यान आकर्षित करने का प्रयत्न किया है। इसके साथ हमारे इतिहास के जननायकों पर भी इस बार जानकारीपूर्ण लेख संकलित है। इनमें चन्देल राजा मदन वर्मा, बुन्देलानायक चम्पतराय, छत्रसाल, बखतबली तथा मधुकर शाह के व्यक्तित्वों को रेखांकित किया गया है।

बुन्देलखण्ड में दुर्भाग्य से विगत वर्षों में प्रकाशन की समस्या खड़ी हुई है। आज हमारे लोक साहित्य की विधाओं को तथा लोकसंस्कृति के विभिन्न पहलुओं को उदघाटित करने वाली सामग्री प्रकाशित करने के लिए कोई नियमित प्रकाशन नहीं है। 'बुन्देली बसन्त' के माध्यम से एक छोटा प्रयास हमारी समिति द्वारा किया गया है। इस बार लोकगीतों के विभिन्न पक्षों, फड़बाजी के अस्तित्व के साथ गाँव के साहित्य पर प्रकाश डालने वाले आलेख लिखकर विद्वानों ने हमें सहयोग दिया है। लोक संस्कृति सम्बंधी आलेखों में से कुछ हमारे आभूषणों, व्यंजनों तथा त्योहारों पर प्रकाश डालते हैं, तो कुछ लोकदेवता हरदौल तथा देवी अबारमाता के महत्व को व्यक्त करते हैं। लोक कलायें लोक अभिरुचियों को व्यक्त करती हैं। इससे सम्बंधित आलेख भी हमें मिले हैं। 'राय प्रवीण' को नए सिरे से परखने तथा ठाकुरदास, जोगीदास 'भाण्डेरी, मुंशी अजमेरी, बाबू गुलाबराय के कुछ अनछुए पहलुओं को उदघाटित करने का कार्य हमारे सुधी लेखकों ने किया है। बुन्देली की रचनाधर्मिता को गीतों, कथाओं और कहावतों के माध्यम से संकलित किया गया है। हाँ एक बात नाम के सम्बन्ध में भी आपको बता दूं कि 'बसन्त' के नामकरण में सुझावों के आधार पर 'बुन्देली' शब्द जोड़ा गया। अब इसे 'बुन्देली बसन्त' का नाम दिया गया है।

बुन्देली उत्सव के माध्यम से समिति एक ओर हमारे पारम्परिक खेलों, उत्सवों तथा कलात्मक पहलुओं को उदघाटित करने का प्रयत्न करती है वहीं दूसरी ओर वह लोक कलाकारों को उनका सम्मान व स्वाभिमान दिलाये जाने हेतु प्रयत्नशील है। इस कार्य में तन–मन–धन से संलग्न हमारे समिति के संरक्षक श्री शंकर प्रताप सिंह बुन्देला का योगदान अतुलनीय है, वे अपनी ऊर्जा इसी में लगाते हैं कि बुन्देलखण्ड की लोककलाओं को किस तरह वह स्थान दिलाया जाये जिसकी वह सच्चे मायनों में हकदार है। इस पुनीत कार्य में उनके साथ पूरी समिति मनोयोग से कार्य करती है, जिससे यह सांस्कृतिक पर्व सफलता से सम्पन्न होता है। पूरी समिति को मैं बुन्देलखण्ड के सुधीलेखकों की ओर से हार्दिक शुभकामनायें देता हूं। समिति के पदाधिकारियों के प्रति मैं स्मारिका प्रकाशन हेतु कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए उन विद्वानों व सुधी लेखकों का भी ऋणी हूं जिनके रचनात्मक सहयोग से यह स्मारिका बुन्देलखण्ड का एक सांस्कृतिक दस्तावेज बनती है। धन के बिना आयोजन असंभव है। विज्ञापन के रूप में आर्थिक संबल प्रदत्त करने वाले सभी सहयोगियों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए, हम आभारी है संघ मुद्रणालय के प्रबंधक श्री बी.जी. पाण्डेय, प्रेस प्रभारी श्री अनिल गुप्ता, शब्द संयोजक श्री जीतेन्द्र बस्वापट्टनकर, मुद्रण सहायक श्री अरुण व श्री सर्वेश आदि के जिनके समग्र प्रयत्नों से 'बुन्देली बसन्त' आपके सामने है।

अन्त में मैं आपसे स्मारिका तथा आयोजन के सम्बन्ध में सुझाव आमंत्रित करते हुए यह संकल्प लेने का आव्हान करता हूं कि ''आज के आतंकी एवं बाजारू परिवेश में बुन्देली संस्कृति व साहित्य के साथ भारतीय लोकसंस्कृतियों तथा लोकसाहित्य की अस्मिता व स्वाभिमान की रक्षा हेतु हम प्रयत्नशील रहेंगे।''

बहादुर सिंह परमार

स्वतंत्रता की प्यासी आतमा चम्पतराय बुन्देला

— वीरेन्द्र बहादुर खरे

बुन्देली आन के धनी चम्पतराय इतिहास और जनमानस में पन्ना राज्य के संस्थापक बुन्देलखण्ड केसरी छत्रसाल के पिता के कारण ही वन्दनीय नहीं हैं अपितु वे इसलिये वन्दनीय हैं क्योंकि उन्होंने उस युग में जब निष्ठायें धन और पद के मोल बेच दी जाती थी शाही ऐश्वर्य एवं पद के लिये अपनी मानमर्यादा एवं इज्जत का सौदा नहीं किया उन्होंने अपने बुन्देल कुल और गोत्र पर आये संकट के समय उस पर किये गये अन्याय के प्रतिकार के लिये और ओरछा राज्य पर बुन्देला कुल के वैधानिक हक के लिये १५३५ से १५५२ तक १७ वर्षों तक बिना निजी स्वार्थ और साधन के मुगल शहंशाह शाहजहां से अकेले जूझने का साहस किया। यही नहीं उन्होंने अपनी आन और स्वाधीनता की खातिर परम प्रतापी औरंगजेब से बैर लेकर तीन वर्ष तक मुगल साम्राज्य से टक्कर ली उन्होंने अपनी जान दे दी पर समर्पण नहीं किया।

चम्पतराय का जन्म ओरछा राज्य के महेवा में बुन्देला भगवंतराय के यहां सन् १५९२ ई. शनिवार को हुआ। उनके जन्म के उपलक्ष्य में ओरछा के तत्कालीन महाराज मधुकर शाह (१५५४ से १५९२) ने नवजात शिशु चम्पतराय को आशीर्वादस्वरूप भेंट दी थी (कृष्ण कवि) चम्पतराय बुन्देला की रगों में ओरछा राज्य के महाराज रुद्रप्रताप बुन्देला का रक्त प्रवाहित हो रहा था। चम्पतराय के प्रपितामह उदयाजीत महाराज रुद्रप्रताप के पुत्र थे और ओरछा के प्रतापी राजा भारती चन्द्र (१५३१ से १५५४) और महाराज मधुकर शाह के सौतेले भाई थे।

महाराज रुद्रप्रताप ने उदयाजीत को नुना महेवा की जागीर दी थी (वीर सिंह देव चरित्र—महाकवि केशवदास पेज १५, छत्रप्रकाश लाल कवि पेज १३) उन्होंने अन्य राजकुमारों की तरह ओरछा से स्वतंत्र होकर अलग राज्य नहीं बनाया अपितु अपने को ओरछा राज्य का अंग माना। उन्होंने महाराज भारतीचन्द्र के लिये शूरवंश के सुल्तान इस्लाम शाह के शासन काल में जतारा को अफगानों से जीत लिया।

उदयाजीत के पुत्र और चम्पतराय के पितामह ने दिल्ली सम्राट अकबर के विरुद्ध युद्ध में महाराज मधुकर शाह के कंधे से कंधा लगाते हुये साथ दिया, वे मधुकर शाह महाराज के इतने विश्वासपात्र थे कि महाराज ने प्रेमचन्द्र (अब्दुल फजल के सोमचन्द्र) को बादशाह अकबर से संधि करने के लिये अपना प्रतिनिधि बनाया। (अकबरनामा अब्दुल फजल पेज ४७६) १५९२ में महाराजा मधुकर शाह की मृत्यु के पश्चात उनके बड़े पुत्र ओरछा के राजा रामशाह ने बिना युद्ध किये ही बादशाह अकबर की पराधीनता स्वीकार कर ली। पर महाराजा मधुकर शाह के छोटे पुत्र बड़ौनी के जागीरदार राजा वीरसिंह ने अपनी पहचान बनाने और स्वतंत्र अस्तित्व के लिये बादशाह अकबर से संघर्ष का रास्ता अपनाया। बादशाह अकबर के साथ महाराज वीरसिंह के युद्ध में चम्पतराय के पिता भगवंत राय वीरसिंह के साथ रहे। १६०२ में राजवीरसिंह ने सम्राट अकबर को जबर्दस्त आघात दिया। बादशाह अकबर के पुत्र एवं युवराज सलीम के कहने पर उसके शत्रु और अकबर के सबसे विश्वासपात्र मंत्री और मित्र अब्दुल फजल को दक्षिण से आगरा आते समय शिवपुरी के पास आंतरी (सरांय बरार) में घात लगाकर मार डाला और उसका शीश काटकर इलाहाबाद सलीम के पास पहुंचा दिया।

अबुल फजल के वध के बाद तो अकबर वीरसिंह के खून का प्यासा हो गया। ओरछा के राजा रामशाह और अन्य राजपूत राजा अकबर के आदेश से वीरसिंह के विरुद्ध युद्ध कर रहे थे, पर नुना महेवा के जागीरदार भगवन्त सिंह वीरसिंह के साथ थे। वीरसिंह के लिये यह काल घोर संकट का काल था। वीरसिंह के साथी होने के कारण चम्पतराय के पिता को जंगलों एवं गुफाओं में रहना पड़ा। इनको भी पिता के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान में भागते रहना पड़ा। चम्पतराय बचपन से ही कठिन जीवन के आदी हो गये। वे अकेले बीहड़ वनों में विचरते रहते थे। किवदंती है कि जंगलों में उन्हें एक अघोरी तांत्रिक ने अलौकिक शक्तियां भी दी थीं। इन परिस्थितियों में पलने के कारण उनका शरीर पाषाण की भांति सुदृढ़, लताओं की भांति लचीला, धरती की तरह सहनशील पहाड़ी, नदियों की तरह गतिशील, बाधाओं को अपमानित करने वाला एवं पहाड़ों की तरह गर्वीला हो गया।

१६०५ में बादशाह अकबर की मृत्यु होने पर राजकुमार सलीम के जहांगीर के नाम से आगरा के सिंहासन पर बैठने से वीरसिंह बुन्देला के बुरे दिन समाप्त हो गये। जहांगीर ने अपनी सहायता करने के उपहार के तौर पर वीरसिंह को ओरछा का राजा बना दिया। ओरछा के राजा रामशाह को ओरछा के पहले चन्देरी की जागीर दे दी गई। मुगल बुन्देला मैत्री के इस युग में ओरछा के राज परिवार के राजकुमारों ने पद, धन और सुख भोग के लिये मुगल सेना में भर्ती होना प्रारम्भ कर दिया, पर

नुना महेवा के जागीरदार भगवंत सिंह और चम्पतराय मुगल सेना में नहीं गये। उन्होंने बादशाह की सेवा स्वीकार नहीं की। वे ओरछा के राजा को ही अपना राजा मानते रहे। यद्यपि उनकी जागीर परिवार में बंटते बंटते ३५० रुपये वार्षिक की ही रह गई। चम्पतराय ने ३५० रुपये वार्षिक आय यानि २९ रुपये मासिक आय का जागीरदार बना रहना श्रेयस्कर समझा। सन् १६२७ में ओरछा के राजा वीरसिंह की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र जुझार सिंह ओरछा के राजा बने और कुछ समय बाद बादशाह जहांगीर का १६२७ में निधन हो गया। शाहजहां के नाम से राजकुमार खुर्रम बादशाह बना। शाहजहां अपने पिता पर महाराज वीरसिंह के प्रभाव से वीरसिंह पर खुश न था उसने १६२८ ई. में ओरछा पर चढ़ाई कर दी। उस समय तो सरदारों के बीच बचाव के कारण जुझार सिंह और शाहजहां में संधि हो गई। बादशाह ने जुझार सिंह को ओरछा का राजा मान लिया उन्हें खिल्लत दी और दक्षिण में मुगल सेना के साथ भेज दिया।

जुझार सिंह अपने पिता की तरह चतुर एवं दूरदर्शी न थे। उन्होंने ईर्ष्या एवं सन्देह के कारण देवता स्वरूप अपने भाई हरदौल को भोजन में विष देकर मरवा डाला। इससे वे जनता की नजरों में गिर गये। इस कृत्य के कारण चम्पतराय भी उनसे कट गये अपने पुत्र के कारण उन्होंने अपने पिता के वफादार सरदारों को अपमानित कर दिया वे भी इनके विरोधी हो गये। (बनारसीदास सक्सेना पेज ८४ शाहजहां दिल्ली का सुल्तान)। जुझार सिंह बादशाह की आज्ञा के बिना दक्षिण से ओरछा भाग आये। उन्होंने गौड़वाने के शासक प्रेमशाह पर चढ़ाई कर धोखे से उनकी हत्या कर दी और उसके राज्य पर अधिकार कर लिया। प्रेमशाह मुगल बादशाह के अधीन था। उसकी हत्या होने पर प्रेमशाह के भाईयों ने शाहजहां से जुझार सिंह की शिकायत की। शाहजहां ने नाराज होकर राजा जुझार सिंह से इस कृत्य का स्पष्टीकरण मांगा और लूटी हुई सम्पत्ति को मुगल खजाने में जमा करवाने का आदेश दिया पर जुझार सिंह ने शाहजहां के आदेश का पालन नहीं किया। शाहजहां ने नाराज होकर दतिया के राजा भगवानदास चंदेरी के राजा देवीसिंह आदि को खानेजहां एवं फीरोजजंग, खानेदौरान की फौज के साथ जुझार सिंह पर आक्रमण करने के लिये भेजा। (श्री बनारसीदास सक्सेना श्री रामस्वरूप ढेगुला पेज ३६९, का.रा.खा.अनु.) ओरछा के राजा वीरसिंह बुन्देला ने अपनी राजधानी की मजबूत किलेबन्दी की थी। उनके पास करोड़ों रुपये एवं २०००० सेना थी पर जुझार सिंह कमजोर शासक निकले। वे मुगल सेना का सामना नहीं कर सके। वे ओरछा को शत्रुओं की दया पर छोड़कर धामोनी भाग गये। वहां से भी पराजित होकर दक्षिण की ओर भागे। वहीं चांदा के जंगलों में वे गोड़ों के द्वारा मार डाले गये। मुगल फौज ने ओरछा को लूटा, राजपरिवार की रानियों को एवं राजमाता को बंदी बना लिया गया। राजा जुझार सिंह के पुत्र उदयभान को मार डाला गया। जुझार सिंह का दूसरा पुत्र दुर्जनशाह मुसलमान बना लिया गया। इस प्रकार उनका पूरा परिवार नष्ट हो गया। उनका राज्य मुगल राज्य में मिला लिया गया। इस प्रकार स्वतंत्र ओरछा राज्य का नाम मिट गया। किन्तु जुझार सिंह के सगे भाई पहाड़ सिंह, तुलसीदास, भाई भगवानदास दतिया के राजा किसी ने भी इस संकट की घड़ी में अपनी धरती, ओरछा और अपने वंश का साथ नहीं दिया। किसी ने चूं तक नहीं की। मुगल बादशाह के विरुद्ध उंगली नहीं उठाई। मुगल सेना ओरछा को लूटती रही उत्पात करती रही और वे उसी सेना का अंग बने उसकी दुर्गति देखते रहे। शासन के प्रकोप के भय ने उनका मुँह बन्द कर दिया (बनारसीदास पेज ९०)। इस संकट की घड़ी में जुझार सिंह के सगे सम्बन्धी तो चुप रहे पर नुना महेवा का जागीरदार चम्पतराय ओरछा का बुन्देला राज्य मुगल साम्राज्य में विलीन होते नहीं देख सका। वह बादशाह शाहजहां के विरोध में खड़ा हो गया। उसने शपथ ली कि ओरछा में वीरसिंह का वंशज ही राज्य करेगा। उन्होंने राजा जुझार सिंह के छोटे नाबालिग पुत्र पृथ्वीसिंह को ओरछा का राजा घोषित कर मुगल बादशाह के विरुद्ध छापामार जन युद्ध छेड़ दिया। उनके पास न धन था न नियमित सेना थी, न राज्य था न दुर्ग। वे अवसर का लाभ उठाकर अपने लिये ओरछा का राज्य पाने के लिये नहीं लड़ रहे थे। उन्होंने भूमियावत युद्ध छेड़ दिया। (छत्रप्रकाश) उन्होंने मुगल शासित प्रदेश बुन्देलखण्ड में अराजकता और अव्यवस्था फैला दी। मुगल चौकियों को लूटा जाने लगा। वे पीछे से मुगल फौज पर हमला करते और लूटकर भाग जाते। शाही खजाने लूटे जाने लगे। मुगल राज्य की प्रजा चम्पतराय के डर से गांव खाली करके भागने लगी। मुगल प्रदेशों से लगान एवं राजस्व की वसूली बहुत कम हो गई। मालवा एवं बुन्देलखण्ड से मुगल दबदबा समाप्त हो गया। इस क्षेत्र में एक कहावत चल पड़ी —

जुत जुत मरवै बैलवा बो बो मरे किसान
चम्पत राय सुवनवा भये उड़ उड़ लागे खान

(लालकवि रचित छत्रप्रकाश सम्पादित डॉ. महेन्द्र प्रताप सिंह पेज १८)

मुगल सेना के सैनिक अधिकारी एवं सरदार जैसे विट्ठल गौर, नुसरतजंग, खानेजहां चम्पतराय के उत्पात को नहीं रोक पाये मुगल फौजदार सुजान राय और चम्पतराय को वश में नहीं करपाये। १६४० में चम्पतराय ने जतारा के फौजदार को पराजित कर दिया। इससे बौखलाकर मुगल सेना ने इनका घिराव कर दिया। अब्दुल फीरोज जंग एवं बाकी खां को चम्पतराय को दवाने के लिये भेजा गया। १८ अप्रैल १६४०

को अब्दुलाह को पता लगा कि चम्पतराय झांसी के जंगलों में है। चम्पतराय को बड़ी फौज के साथ घेरा गया, पर चम्पतराय जेल तोड़कर चम्पत हो गय। नावालिग राजकुमार पृथ्वीसिंह मुगल फौज के हाथ लग गया। अब्दुलाह चम्पतराय को नहीं पकड़ पाया (बादशाह नामा भाग–२)। शाहजहां ने १६३९–४० में ओरछा में शान्ति बनाने के उद्देश्य से ओरछा के पूर्व राजा रामशाह के प्रपौत्र चंदेरी के राजा देवीसिंह को ओरछा का राज्य दे दिया। देवी सिंह जी बुन्देलखण्ड में अपना प्रभाव नहीं जमा पाये और चम्पतराय को नहीं दबा पाये। चम्पतराय के डर से मुगल फौज चौकती रहती थी। देवीसिंह ने खुद को राजा रामशाह के प्रपौत्र होने का वास्ता देकर चम्पतराय को अपनी ओर मिलाने का प्रयास किया। पर चम्पतराय ओरछा की गद्दी पर देवी सिंह के अधिकर को स्वीकार नहीं कर पा रहे थे। वीरसिंह के कुल के प्रति चम्पत राय की निष्ठा नहीं डिगी।

शाहजहां ने अब्दुल्लाह की असफलता से नाराज होकर उसे वापिस बुला लिया। बहादुर खां रुहेला चम्पतराय को दबाने के लिये भेजा गया। सन् १६४१ में चम्पतराय पर जोरदार आक्रमण किया गया। चम्पतराय ने छापामार युद्ध का सहारा लिया। वे छिप गये और अवसर पाकर उन्होंने पीछे से मुगल सेना पर आक्रमण कर दिया। शाहवाज खाँ वाकी खाँ पराजित हुये। चम्पतराय ने भेलसा और सिरोज लूट लिया। उन्होंने उज्जैन को लूटा। चम्पतराय ने नौरोज खाँ सैयद मुहम्मद वली अब्दुला की सेना को पराजित किया (बादशाहनामा जिल्द २ पेज २२१)। बादशाह शाहजहां पूरी ताकत लगाकर भी चम्पत राय को नहीं दबा सका तब उसने अपने सरदारों की सलाह मानकर देवीसिंह बुन्देला के स्थान पर ओरछा के प्रसिद्ध राजा वीरसिंह के दूसरे पुत्र और जुझारसिंह के भाई पहाड़सिंह को ओरछा का राजा बना दिया।

यह विद्रोही चम्पतराय की जीत थी। उनके विद्रोह के कारण ओरछा का राज्य फिर से अस्तित्व में आ गया और उस पर सही हकदार वीरसिंह के पुत्र पहाड़सिंह का हक हो गया। मुगल साम्राज्य रूपी अजगर को ओरछा राज्य को उगलना पड़ा। प्रसिद्ध इतिहासकार श्री बनारसीदास सक्सेना के शब्दों में — "जुझार सिंह के पतन के बाद बुन्देला इतिहास का क्रम टूट जाता अगर बुन्देलखण्ड के ओरछा राजवंश की रक्षा के लिये नुना महेवा का जागीरदार आगे न आता।" शाहजहां। इसी प्रकार का मत महान इतिहासकार श्री यदुनाथ सरकार ने औरंगजेब के संक्षिप्त इतिहास में प्रकट किया है — (पेज ९९)। चम्पतराय ने मुगल शासन को यह बतला दिया कि बुन्देलखण्ड की जनता कायर नहीं है वह चुपचाप किसी आरोपित या थोपे गये व्यक्ति को अपना स्वामी नहीं मान सकती है अगर उसे उचित नेतृत्व मिले तो वह बड़ी से बड़ी शक्ति से लोहा ले सकती है।

ओरछा का राज्य तो उसके पूर्व राजवंश को मिल गया पर मुगलों की दृष्टि से चम्पतराय अभी भी बागी थे और साम्राज्य के शत्रु थे। बादशाह को उनकी तलाश थी। वे अभी भी मोस्ट वान्टेड थे। ओरछा के नये राजा पहाड़ सिंह मे इतना साहस नहीं था कि वे बादशाह की इजाजत के बिना ओरछा में चम्पतराय को शरण दे देते। पहाड़सिंह बादशाह के कोप के भय से चम्पतराय की सहायता नहीं कर सकते थे। उनमें इतना साहस नहीं था कि वे बादशाह से चम्पतराय को क्षमा दिलवा सकते। सच तो यह है कि चम्पतराय की लोकप्रियता से राजा पहाड़सिंह आतंकित और शंकित थे। उन्हें चम्पतराय से द्वेष होने लगा। उन्होंने चम्पतराय को आमंत्रित कर धोखे से विष खिलाकर रास्ते से अलग करने का प्रयास किया। पर अपने भाई की सतर्कता से चम्पतराय बच गये। सन् १६४२ से १६५२ तक का समय चम्पतराय के लिये बड़ा कष्ट कर था। एक ओर मुगल बादशाह उनकी जान का दुश्मन था दूसरी ओर ओरछा का राजा। चम्पतराय निजी स्वार्थ या महात्वाकांक्षा के कारण शाहजहां के विरुद्ध नहीं खड़े हुये थे। मुगल दरबार में बहुत से सरदार थे जिनका मानना था कि चम्पतराय को मित्र बनाये बिना सैन्यबल से मालवा में शान्ति नहीं हो सकती है। शुभचिन्तक सरदारों ने चम्पतराय को मुगल बादशाह के विरुद्ध युद्ध बन्द करने एवं मुगल सेना में शामिल होने का प्रस्ताव भेजा। उन्होंने बादशाह से चम्पतराय को माफी देने के लिये निवेदन और सिफारिश की। चम्पतराय ने अपनी मां से सलाह कर और वस्तुस्थिति को समझकर बादशाह से १६५२ ई. में समझौता कर लिया। शाहजहां ने उन्हें दो हजारी मनसबदार बना दिया — (छत्रप्रकाश लाल कवि पेज ३१)। वे समझ गये थे कि जिस ओरछा के राजवंश की सेवा करने में उन्हें गर्व का अनुभव होता था उसे उनकी सेवा की नहीं प्राणों की जरूरत है और ओरछा का राजा स्वामी नहीं मुगल बादशाह का गुलाम बन गया है।

चम्पतराय ने शीघ्र ही मुगल दरवार में वीरता से अपनी धाक जमा ली। १६५३ में शाहजहां ने खोये हुए कंधार को जीतने के लिये दारा को कंधार विजय के लिये भेजा। दारा के साथ चम्पतराय बुन्देला भी थे। उन्होंने कंधार के युद्ध में बड़ी वीरता दिखलाई। उनकी वीरता से प्रभावित होकर शाहजहां ने उन्हें कौंच की जागीर प्रदान की।

महाराज पहाड़ सिंह को मुगल दरवार में चम्पतराय का बढ़ता प्रभाव रास नहीं आया। कौंच की जागीर पाने से वे और जल गये। पहाड़ सिंह कौंच की जागीर खुद चाहते थे। उन्होंने चम्पतराय के विरुद्ध दारा के कान भर दिये। पहाड़सिंह ने दारा को समझा दिया कि चम्पतराय ने कंधार की लूट से प्राप्त

सम्पत्ति को खजाने में जमा न कर स्वयं हजम कर ली है। उन्होनें कौंच की जागीर के बदले दारा को दो लाख रुपये देने की पेशकश की। दारा कान का कच्चा था। वह चम्पतराय के स्वाभिमानी स्वभाव से भी खुश नहीं था। वह दो लाख के लालच में भी आ गया। उसने चम्पतराय को कंधार की लूट की सम्पत्ति हजम करने का इल्जाम लगाकर बुरा भला कहा और कौंच को जागीर न देने की धमकी दी। चम्पतराय से बेईमानी का आरोप बर्दाश्त नहीं हुआ। वे क्रोधित हो उठे और बोले आप मुझे कौंच न देना चाहे न दें, मुझे नहीं चाहिये कौंच मेरी तरफ से उसे चन्द्राल को दे दे पर मुझ पर झूठा आरोप न लगायें।

शाहजहां के लाड़ले युवराज से उसके मुंह पर खरी बात सुना देना चम्पतराय के वश की ही बात थी। वे किसी की बात नहीं सह सकते थे। वे ऐश्वर्य को लात मारकर फिर महेवा आ गये पर वे महेवा मे चैन से नहीं बैठ सकते थे। अब पहाड़ ही उनका घर था, जंगल ही उनकी जागीर थी पर वे आराम के लिये अपमान नहीं सह सकते थे।

१६५७ ई. में शाहजहां बीमार पड़ गया। दारा शिकोह बादशाह की तरफ से शासन का काम देखने लगा। शाहजहां ने शेष तीनों पुत्रों (शुजा बंगाल, सूबेदार मुराद, गुजरात और औरंगजेब दक्षिण में सूबेदार) को सन्देह हुआ कि बादशाह शाहजहां की मृत्यु हो गई है और उसकी मौत छिपाई जा रही है। अतः तीनों पुत्रों (शुजा, मुराद और औरंगजेब) ने अपने अपने सूबो से सिंहासन पर अधिकार करने के लिये दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। चतुर औरंगजेब ने दिल्ली में अपने समर्थकों को सतर्क रहने के लिये कहा और स्वयं बीमार बादशाह को देखने के बहाने दिल्ली की ओर बढ़ा। उसने रास्ते में मुराद को अपनी ओर मिला लिया।

औरंगजेब ने १६५८ ई. में उज्जैन के पास धरमत के मैदान में जोधपुर के राजा जसवंतसिंह को ओरछा के राजा सुजानसिंह के नेतृत्व में लड़ने वाली शाही सेना को पराजित कर दिया।

अब औरंगजेब और मुराद की सम्मिलित सेना आगरा की ओर बढ़ी। धरमत के युद्ध में औरंगजेब के बहुत से सिपाही मारे गये थे उसे सैनिकों की आवश्यकता थी। उसे सहयोगी चाहिये थे। दतिया के राजकुमार शुभकरण औरंगजेब का साथ दे रहे थे। उन्होंने चम्पतराय को औरंगजेब की ओर से लड़ने को राजी कर लिया। चम्पतराय दारा शिकोह से नाराज थे ही १५ मई १६५८ को औरंगजेब की सेना चम्बल नदी के पास आ गई। चम्बल के दूसरे किनारे पर दारा की सेना तैयार थी। चम्बल के सभी घाटों पर दारा के सैनिकों का पहरा था। उनकी आंख बचाकर नदी पार करने की समस्या थी। इस संकट के समय चम्पतराय ने थोड़ी ही दूर पर एक अज्ञात घाट से औरंगजेब की फौज को सुरक्षित चम्बल पार करा दिया। औरंगजेब की सेना ने अचानक दारा की सेना पर आक्रमण कर दिया। चम्पतराय स्वयं औरंगजेब की ओर से लड़े युद्ध में औरंगजेब की जीत हुई (छत्र प्रकाश लाल कवि पेज ४० – भीमसेन, तरीखे नश्तर पेज २०)। सामूगढ़ की विजय ने औरंगजेब के सिर पर हिन्दुस्तान की बादशाहत का ताज रख दिया। औरंगजेब ने बादशाह बनते ही चम्पतराय को सम्मान सहित आगरा बुलाया उन्हें दो हजारी मनसबदार एवं कौंच और ऐरच के भू–भाग का जागीरदार बना दिया। अब चम्पतराय यमुना के तटीय भू–भाग के स्वामी बन गये।

पर राजयोग तो उनके भाग्य में था ही नहीं। औरंगजेब का अपने भाई मुराद को धोखा देना, पिता को बन्दी बनाना दारा शिकोह को अपमानित कर बुरी मौत मारना चम्पतराय को अच्छा नहीं लगा। उनका औरंगजेब से मोह भंग हो गया। वे मुगल दरबार के कठोर अनुशासन और परम्पराओं को भी बर्दास्त नहीं कर पा रहे थे। उनकी रानी सारंधा का तो गुलामी के माहौल में दम घुट रहा था। वे दरबार से अनुपस्थित रहते थे औरंगजेब भी उनके स्वाभिमानी स्वभाव से खुश नहीं था। दोनों ओर से एक दूसरे के प्रति अरुचि बढ़ रही थी। तभी सन् १६५९ में शुजा के आक्रमण की सूचना आई औरंगजेब ने कड़ी एवं दर्प भरो जवान से चम्पतराय को खलील उल्लाह की अधीनता में शुजा का सामना करने का आदेश दिया और कहा कि आज्ञा का उल्लंघन करने पर उनकी जागीर छीन ली जायेगी। चम्पतराय मान सम्मान के भूखे थे जागीर और सम्पत्ति के नहीं। उन्हें औरंगजेब की धमकी खल गई वे चतुर थे। उन्होंने जान लियां कि औरंगजेब से अलग होने का समय आ गया। वे शाही सेना के साथ चले पर बीच रास्ते में सेना का साथ छोड़ ओरछा की ओर मुड़ गये। लाल कवि ने छत्रप्रकाश में औरंगजेब की चम्पतराय से नाराजगी का दूसरा कारण बतलाया है। उनके अनुसार १६५७ में उत्तराधिकार के युद्ध में शाही सेना की ओर से लड़ते हुये सामूगढ़ की लड़ाई में बहादुर खां बहुत घायल हो गये। किन्तु उनके अश्व ने उनके घायल शरीर की रक्षा की। शत्रु पक्ष का कोई भी सैनिक घायल शरीर के पास नहीं पहुंच पा रहा था। चम्पतराय के शिविर में इस विलक्षण घोड़े की चर्चा पहुंची। चम्पतराय स्वयं अच्छे घुड़सवार थे। उन्होंने प्यार से घोड़े का विश्वास जीतकर उसे वश में कर लिया। घायल बहादुर खां को उसके शिविर में पहुंचा दिया। कुछ समय बाद वह स्वस्थ हो गया और औरंगजेब के बादशाह बनने पर उसकी सेवा में आ गया। अब चम्पतराय और बहादुर खाँ औरंगजेब की सेवा में होने के कारण आपस

में मिलते थे। चम्पतराय को अपने घोड़े पर सवारी करते देख बहादुर खां का मन कचोट उठता था। उसने चम्पतराय से घोड़ा वापिस लेने का बड़ा प्रयास किया पर घोड़ा चम्पत को विजय के उपलक्ष्य में मिला था और उन्हें बहुत प्यारा था वे इसे किसी भी कीमत में देने को तैयार नहीं हुये। अन्त में एक दिन जब चम्पतराय का पुत्र घोड़े में सवार होकर कहीं जा रहा था बहादुर खां ने अकेला पाकर अपने सैनिकों की सहायता से घोड़े को छीन लिया जब यह घटना रानी सारंधा को ज्ञात हुई तो वे आपे से बाहर हो गई। वे अपने सैनिकों सहित बहादुर खां के निवास पर पहुंचीं और घोड़े को बलपूर्वक वापिस ले आईं। रानी के इस दु:साहस पर और अपने सरदारों के आपसी झगड़े से बादशाह बेहद नाराज हो गया। उसने चम्पतराय को घोड़ा बहादुर खां को वापिस करने का आदेश दिया। राजा और रानी दोनों ने उसकी बात नहीं मानी। बादशाह ने राजा को जागीर छीनने की धमकी दी पर चम्पतराय किसी धमकी से डरकर घोड़ा देने को तैयार नहीं हुये। औरंगजेब अपनी हेठी सहन करने वाला नहीं है इस बात को चम्पतराय जानते थे। अत: इससे पहले कि औरंगजेब कोई और चाल चले चम्पतराय उसके प्रभाव क्षेत्र से बाहर निकल जाना चाहते थे और यही उन्होंने किया।

उन्होंने ऐरच को अपना केन्द्र बनाकर मालवा और आस–पास की चौकियों को लूटना प्रारंभ कर दिया। शुजा को परास्त करने के बाद डॉक्टर यदुनाथ सरकार के शब्दों में – ''बादशाह औरंगजेब के शक्तिशाली पंजों का शिकार चम्पतराय बने'' (औरंगजेब का संक्षिप्त इतिहास)। उसने १६५९ ई. में दतिया के राजा शुभकरन को कांटे से कांटा निकालने की नीति अपनाकर चम्पतराय को दबाने के लिये भेजा। उनके साथ भदावर के राजा महासिंह भदोरिया ओरछा के राजा सुजान सिंह और इन्द्रमणि भी थे। चन्देरी के राजा देवीसिंह को भी चम्पतराय को दबाने के लिये भेजा गया (रामस्वरूप ढेगुला बुन्देलखण्ड का राजनैतिक सांस्कृतिक अनुशीलन पेज ५९)। चम्पतराय ने पहले भाण्डेर को लूटा। उस समय शुभकरण अजमेर में थे उन्होंने अजमेर से आकर चम्पतराय का पीछा किया। चम्पतराय शाही सेना के आने की सूचना पाकर ऐरछ भाग गये। शुभकरन ने ऐरच में उनका पीछा किया। इस युद्ध में चम्पतराय के मित्र बखतवली मारे गये (बुन्देला इतिहास प्रतिपाल सिंह)। चम्पतराय के पीछे मुगलों की सेना पड़ी थी। देवीसिंह जो चम्पतराय के शत्रु थे ही ओरछा की राजमाता हीरा देवी भी चम्पतराय की जान की ग्राहक थी। पूरी ताकत लगाने के बाद भी शाही सेना चम्पतराय को पकड़ पाने में असमर्थ रही। चम्पतराय छापामार युद्ध कर रहे थे। वे अचानक एक स्थान को लूटते और शाही सेना के आने पर भाग जाते थे। वे पीछे से शाहीसेना पर आक्रमण कर भाग जाते थे। कभी शाहगढ़ को लूटते थे तो कभी धामौनी पर छापा मारते थे। वे सभी भेलसा में दिखाई देते तो कभी भाण्डेर में तो कभी सिरोंज में। उनकी परिधि में पूरा मालवा था। शुभकरण चम्पतराय को दबाने में असफल सिद्ध हो रहे थे। शायद उनके मन में चम्पतराय के प्रति शत्रुता और कटुता का भाव नहीं था वे बहुत दिनों तक चम्पतराय के साथ रहे थे। उन्होंने ही चम्पतराय को औरंगजेब की सहायता करने के लिये राजी किया था। वे चम्पतराय से मन ही मन सहानुभूति रखते थे और औरंगजेब के आदेश से ही चम्पतराय से युद्ध कर रहे थे। उन्होंने चम्पतराय और बादशाह के बीच समझौते का भी प्रयास किया। चम्पतराय भी जानते थे कि इस युद्ध में बुन्देलों का ही खून बह रहा है। बुन्देलखण्ड ही टूट रहा है और हानि भी बुन्देला लक्ष्मी की हो रही है। वे समझौते के लिये दिलीपपुर पहुंचे पर बात नहीं बनी। वे पद नहीं चाहते थे सम्मानपूर्वक जीना चाहते थे। वे समझौता कर सकते थे। समर्पण नहीं। ओरछा की रानी उन्हें चैन से नहीं बैठने देना चाहती थी उन्होंने चम्पतराय की सेना में भी फूट डालने का प्रयास किया। ओरछा की सेना बराबर चम्पतराय का पीछा कर रही थी। औरंगजेब ने भी शुभकरण की असफलता को देख चन्देरी के देवीसिंह को चम्पतराय के दमन का भार सौंपा। इधर देवी सिंह उधर ओरछा के राजा चम्पतराय का पीछा कर रहे थे। निरन्तर भाग दौड़ के कारण वे थक गये थे। उनको आयु भी ६९–७० वर्ष की ओ गई थी। उनके पास सैनिक भी कम बचे थे। वे अस्वस्थ रहने लगे थे और युद्ध में घायल भी हो गये। वे कुछ समय के लिये स्वास्थ्य लाभ के लिये सुरक्षित स्थान चाहते थे। उन्होंने अपने पुत्र छत्रसाल को देलवारा में भेज दिया। इस संकट की घड़ी में उनके पुत्र उनसे अलग नहीं होना चाहते थे पर परिस्थितियों को देखते हुये उन्हें अलग होना पड़ा (जबलपुर गजेटियर)। एक संघर्ष में उनके भाई सुजानराय भी मारे गये। ओरछा की सेना वेदपुर से उनका पीछा कर रही थी वरेछा में चम्पतराय के आने पर फौज ने वरेछा को घेरा।

अन्त में उन्होंने सहरा जाने का निश्चय किया सहरा में उनके साले इन्द्रमणि धंधेरे रहते थे इन्हें चम्पतराय ने शाही कोप से बचाया था। (इर्विन लटेर युगल पेज २२५, २२६) वे अभी सहरा के रास्ते में ही थे कि ओरछा के सैनिकों ने उन्हें घेर लिया उनके साथ के स्वामिभक्त सैनिकों ने रानी को विश्वास दिलाया कि जब तक एक भी सैनिक जिन्दा रहेगा ओरछा की सेना राजा को हाथ भी नहीं लगा सकेगी। इसी समय इन्द्रमणि धंधेरे भी आ गये। चम्पतराय की सेना ने शाही सेना से घमासान युद्ध किया चम्पतराय को उनके सैनिक सुरक्षित सहरा पहुँचाने में सफल हो गये पर इस प्रयास में इन्द्रमणि धंधेरे और उनके साथी मारे गये।

चम्पतराय अपने को सहरा में भी सुरक्षित नहीं समझ रहे थे। ओरछा के सैनिक सहरा में भी पीछा करते हुये आ सकते थे। इन्द्रमणि धंधेरे की मृत्यु के कारण सहरा के धंधेरे शाही प्रकोप के डर से चम्पतराय को शाही सेना को सौपने का मन बना रहे थे। रानी सारंधा उनके बदले तेवरों को समझ रही थी इधर राजा शिथिल हो गये थे उन्हें ज्वर भी आ रहा था वे लड़ना तो दूर घोड़े की सवारी भी नहीं कर पा रहे थे।

रानी ने शाही सेना को धोखे में डालने की योजना बनाई। उसने सहरा के एक नाई को राजा के स्थान पर डोली में लिटाने और स्वयं कुछ सवार लेकर उसकी डोली के साथ चलने की योजना बनाई। राजा को अलग कुछ विश्वास पात्र आदमियों के साथ मोरन गांव रवाना करने को सोची। शाही सेना रानी को साथ देख डोली में बैठे राजा को पकड़ने का प्रयास करेगी और असली राजा सुरक्षित मोरन गांव पहुंच जायेगा। पर इस योजना में नाई और रानी दानों को जानका संकट था। नाई इस कुर्बानी को तैयार नहीं हुआ।

अत: यह योजना छोड़नी पड़ी। रानी ने रामभरोसे मोरन गांव जाने का निश्चिय किया। राजा को डोली में लिटाया गया रानी डोली के साथ चली उनके साथ सहरा के २०० सिपाही ही थे। वे अब सहरा से २२ कि.मी. निकल आये तो धंधेर सैनिकों के मन में असाहाय और बीमार राजा को बंदी बनाकर शाही सैनिकों को सौप कर पुरस्कार पाने का लालच आ गया। वे राजा को बंदी बनाने के लिये आगे बढ़े। राजा के निष्ठावान सैनिकों ने प्रतिरोध करते हुये उनका मुकाबला किया पर वे एक एक करके मरने लगे। रानी ने मरते दम तक राजा की सुरक्षा का निर्णय ले लिया वे शत्रुओं का सामना करने के लिये तैयार हो गई। राजा पालकी से सब देख रहे थे। उन्हें लगा रानी मरते ही उन्हें बन्दी बना लिया जायेगा। उन्हें अपनी असह अवस्था पर रोना आ रहा था। उन्होंने रानी से कहा ''रानी जीते जी शत्रुओं के हाथों में नहीं पड़ना चाहता हूं। मैं बन्दी न होना चाहता हूं मेरी आखरी इच्छा पूरा कर दो मुझे औरंगजे के सामने बंदीबन कर जाने से बचा लो इससे पहले की श के सैनिक मुझे हाथ लगाये तुम मुझे मार डालो रानी ने पति क बात सुनी तो वे जड़ हो गई। भारतीय प्त्नि के लिये अपने प को मार डालना क्या संभव है? पर यह सोचने का नहीं निर्ण लेने का समय था। उन्होंने तत्काल वह निर्णय लिया जिसक उदाहरण राजपूतों के हजार जौहरों मे भी नहीं है। इससे पह कि शत्रु राजा की डोली के समीप पहुंचे रानी ने चम्पतराय क सीने में बिजली की तरह लपक कर कटार भोंक दी। राजा रानी की ओर कृतज्ञता से देखा और उनका प्राणहीन शरी पालकी में स्थिर हो गया। बिना विलम्ब किये रानी ने वह कटार अपने सीने में भौंक कर सती धर्म का निर्वाह किया। नवम्बर १६६१ ई. को वीर श्रेष्ठ चम्पतराय ने सम्मान की रक्ष के लिये अपने प्राण दे दिये। उनके शीश को काटकर शहंशाह के पास भेज दिया— (आलमगीर नामा पेज ६३३)। आज भी इतिहास और जनमानस लाल कवि के शब्दों में स्वर मिलाक कहता है।

धनि चम्पत तुम राख्यों पानी। धनि धनि लाल कुंअरि ठकुरानी।
धनि चम्पत की कठिन कृपानी धनि चम्पत की रुचिर कहानी
(छत्रप्रकाश)

—टीकमगढ़ म.प्र.

बुन्देली गीत—

दिया तरें नदिया

— आशाराम त्रिपाठी

चरचा इतै करौ न अब उजयारे की।
दिया तरें नदिया बैरई अंदयारे की।।

भैंसा सौ कारौ अंदयारौ पसर गओ पगरा रओ।
का कर लैहै दिया तरैयन के मिस दांत दिखा रओ।।
बेइमानी सी लगत बात भुंसारे की।
दिया तरें नदिया बैरई अंदयारे की।।१।।

चुक रओ चोखौ तेल चुकी सी लगत दिया की बाती।
हनकें दियै जकड़ कें रै गओ अंदयारौ उत्पाती।।
ऐसौ लगत दियट घुन गई गुन्तारे की।
दिया तरें नदिया बैरई अंदयारे की।।२।।

अंदरु नदिया के बहाव ने ऐसी मांटी काटी।
बै गये रूख पुराने बन गई घट करमन् की घाटी।।
भौंरा दौ में फंसी मती गैलारे की।
दिया तरें नदिया बैरई अंदयारे की।।३।।

लीकें लौ मिट गई भैया की बातें भई गड़वातें।
गर्रा बैल गैल न सूजे सामूँ कारी रातें।।
बीन चकील चल रई गाड़ी गड़वारे की।
दिया तरें नदिया बैरई अंदयारे की।।४।।

जोती बनकें रै गई होती के हांतन कौ गानौ।
जीरौ जैसी जुगनू बांदें उजयारे कौ बानौ।।
राम भरोसें नैया देस विचारे की।
दिया तरें नदिया बैरई अंदयारे की।।५।।

—एफ—१०८/१२, शिवाजी नगर, भोपाल

बुन्देलखण्ड के पारम्परिक आभूषण

— कु. रामकिशोरी गुप्ता

किसी भी जनपद या क्षेत्र विशेष की पहचान उसकी भौगोलिक स्थिति, भाषा–बोली, वहाँ के निवासियों का रहन–सहन, खान–पान एवं वस्त्राभूषण आदि से होती है। बुन्देलखण्डवासियों का पारम्परिक पहिनावा अर्थात् वस्त्र एवं आभूषण अब लगभग समाप्त प्राय है। दूरस्थ अँचलों में यदा–कदा यह वस्त्राभूषण दिखाई दे जाते हैं।

''स्त्रियों की वेशभूषा और आभूषणों से किसी क्षेत्र विशेष की संस्कृति, लोक रुचि, रीति–रिवाजों और प्रथा परंपराओं का ज्ञान होता है। किसी भी अंचल के लोकगीतों में वस्त्र और आभूषणों का वर्णन बहुतायत में होता है जो उनकी महत्ता को रेखांकित करता है। आभूषणों को नारी की शोभा और पुरुषों के गाढ़े दिनों का साथी कहा गया है। श्रीमती ऐनीबेसेन्ट ने आभूषणों को किसानों का परम्परागत 'सेविंग बैंक' कहा था।''

बुन्देलखण्ड तीज–त्यौहार, व्रत उपासना, पूजा–रचा का क्षेत्र है। यहाँ महिलाएं अपने सुहाग एवं सन्तान की सम्पन्नता तथा दीर्घायु के लिये पूजा के समय विशेष रूप से सुहाग के प्रतीक आभूषण आदि पहिनकर पूजा–रचा करके व्रत–त्यौहार मनाती हैं। श्रृंगार से नारी का रिश्ता सदियों पुराना है। नारी के सजने संवरने में आभूषण (गहने–बुन्देली में इन्हें गानों कहते हैं) की एक अनूठी और अनुपम भूमिका है। सोने चाँदी से बने आभूषणों का प्रयोग सदियों से चला आ रहा है। सभ्यता के विकास के साथ ही साथ विभिन्न प्रकार के आभूषण बनने लगे जो सोना, चाँदी, गिलट, हाथी दाँत, सीप, लाख, काँच आदि से निर्मित होते हैं।

हर व्यक्ति अपनी सामर्थानुसार परिवार की महिलाओं के लिये विभिन्न प्रकार के आभूषण बनवाता है। महिलाएं तो आभूषण प्रिय होती हैं उनके लिये परिवार की सम्पन्नता आवश्यक नहीं होती है। महिलाएं इस मामले में बहुत चतुर और चालाक होती हैं। वे अपना पेट काटकर व पति की जेब काटकर थोड़ी बहुत बचत करके आभूषण बनवाने से नहीं चूकती हैं। इस तरह बनवाये गये आभूषणों की जानकारी जब उनके घरवालों को होती है और वे इस सम्बंध में प्रश्न पूंछते हैं तो वे हँसकर टाल जाती हैं। घरवालों के हठ करने पर उसे अपने मायके से मिला बताकर सत्य को छुपा जाती हैं। आभूषण सिर से लेकर पैरों तक के अंगों के अलग–अलग होते हैं।

हमारी भारतीय संस्कृति एवं विशेष रूप से बुन्देलखण्ड में विवाह के पश्चात् महिलाओं की माँग में सिन्दूर, ललाट में रोरी का तिलक या काँच की बिन्दी आँख में काजल, हाथों में चूड़ी और पैर की अंगुलियों में बिछिया पहिनना अनिवार्य माना जाता है, क्योंकि यह सभी वस्तुएं उनके सुहागवती होने के प्रतीक माने जाते हैं। अब से २५–३० वर्ष पूर्व तक महिलाएं रोरी को घी या तैल में मथकर एक डिबिया में रखलेती थी और चोटी करने के बाद उससे अपने ललाट पर बीचों–बीच एक बड़ी गोलाकार बिन्दी या काँच का बूँदा लगाती थी। माँग सूखी या मथी हुई रोरी से पूरी–पूरी भरा करती थी तथा आँखों में काजल या सुरमा लगाती थी।

सिर के आभूषण :–

सुहागिन के लिये उक्त श्रृंगार अनिवार्य होता था। इसके अतिरिक्त सौन्दर्य वृद्धि के लिये माथे तथा ललाट पर विभिन्न प्रकार के आभूषण जैसे बीज, शीशफूल, बेंदा, बेंदी–बंदियाँ, टिकली, दावनी, टीका, सिरजेब, झूमर, केकर पान, रेखडी आदि पहिने जाते थे। बेंदा या बीज किसी जंजीर (साँकल) या मोटे रेशमी धागे के सहारे मांग के बीचों बीच पहिना जाता था। यह सोने अथवा चांदी के बने होते थे। बेंदा बीज और शीशफूल विवाह के समय नववधू को अनिवार्य रूप से चढ़ाने (पहिनने) का रिवाज था। रेखड़ी बेंदा से बड़ा ठप्पादार चाँदी की बनती थी इसे भी माँग में जंजीर या डोरा की सहायता से बांधा जाता था। बीज और बेंदा को बाँधने के लिये सोने या चांदी की साँकल बनवाई जाती थी जो बंदिया कहलाती थी। बंदिया दोनों तरफ कान के पास तथा बीच की बंदियाँ मांग की सीध में चोटी या जूड़ा में बांधी जाती थी, इससे यह आभूषण सधे रहते थे।

ललाट के मध्य टिकली बांधी जाती थी। यह गोलाकार होती थी तथा इसके मध्य में बड़ा नग जड़ा रहता था और चारों किनारों पर विभिन्न रंगों के छोटे–छोटे नग जड़े रहते थे। इसके आमने–सामने के किनारों पर बने कुन्दों में रेशमी काला धागा डालकर सिर के पीछे बाँध दिया जाता था। टीका टिकली से छोटा होता था, जिसे रार के सहारे लगाया जाता था। जूड़ा के ऊपर चुटबंद बाँधा जाता था। यह आजकल जूड़ा में लगाने वाले बेंडी की तरह होता था। महिलाएं इन्हें शादी ब्याह तथा तीज–त्यौहारों पर पहिना करती थी।

नाक के आभूषण :–

'पुंगरिया' आज भी नाक में पहिना जाने वाला प्रमुख

आभूषण है। यह छोटी, बड़ी तथा विभिन्न आकार–प्रकार की सादा या जड़ाऊ बनती थी। पुरानी डिजाइन में ये गररादार, कलस्याऊँ, नगदार डेमलकी, जड़ाऊ बिल्कुल घट गया है। किसी जाति विशेष में बुलाक, दुर, बेशर, दुलरी, नथनी आदि पहिनने का रिवाज था। उपहार रूप में अनिवार्य रूप से पुंगरिया कन्या के माता–पिता विवाह के समय उसे देते थे। नथनी पहनकर भाँवर पड़ने का रिवाज था। नाक मे आभूषण पहिनने के लिये कन्या की ३,५ या ६ वर्ष की आयु होने पर शुभ मुर्हूत या किसी त्यौहार, जैसे विवाह–पंचमी, वसन्त–पंचमी, शिवरात्रि के अवसर पर नाक एवं कर्ण छेदन संस्कार कराया जाता था। आँगन को गोबर से लीपकर तुलसी चौरा के पास चौक पूर कर पटली पर दादी या बुआ को बैठाया जाता था। वे उस कन्या को गोद में बिठा लेती थी। पतले तार की सोने, चाँदी, पीतल या ताँबे की बाली से सुनार नाक एवं कान छेदन करता है। नाक छेदन के बाद उस स्थान पर सूखी हल्दी लगा देते हैं। कन्या का मुँह मीठा कराया जाता है तथा कर्ण छेदन करने वाले सोनी को सम्मान स्वरूप कुछ भेंट देकर उसे विदा किया जाता है। इस बाली को कुछ माह बाद उतारकर नाक के उसी छेद में नीम की सूखी सींक डाल दी जाती हैं। जिससे छेद बड़ा हो जाता है। छेद बड़ा हो जाने पर उसमें पुंगरिया पहना दी जाती है। पुंगरिया के ऊपरी भाग में कोई डिजाइन बनी रहती है, इसके नीचे एक पतली सी पोली डंडी जुड़ी रहती है, इस डंडी को नाक के छेद में डालकर अन्दर की ओर ठुल्ली लगाते हैं, जिसे तरपलिया भी कहते हैं। इसको लगाने से पुंगरिया गिरती नहीं है।

कान के आभूषण :–

कानों में पहिने जाने वाले आभूषणों में कन्नफूल (कर्णफूल) लोला, बारी, पत्ता, पान, ऐरंन, लौंगे, तरकियाँ, कुण्डल, मुरकी विजरी, झुमकी, कनौटी, ढारें आदि हैं। कन्नफूल का रिवाज अब समाप्त हो गया है कभी बहुत बुजुर्ग महिलाएं इन्हें पहने दिख जाती हैं। कन्नफूल का ऊपरी भाग गोलाकार कलशाकृति का होता है। इसके नीचे एक कुन्दा लगा रहता है, जिसमें उल्टे आकार में छोटी सी टोकड़ी डली रहती है। इसके नीचे छोटे–छोटे सोने के रोना या सफेद लाल रंग के छोटे मनके डले रहते हैं। इसमें पीछे की ओर एक पतली पोली छोटी सी डंडी लगी रहती है जिसे कान के छेद में डालकर लोड़ी के पीछे पेंच लगाकर बन्द कर दिया जाता है जिससे यह गिरें न। कर्ण फूलों का वजन अधिक होने के कारण उनके वजन से कानों के छेद बड़े हो जाते थे जिससे पीछे वाली डंडी आगे की ओर आ जाने से कर्ण फूल का ऊपरी हिस्सा लटकने लगता था जो देखने में भद्दा लगता था इसे ठीक रखने के लिये डंडी और पेंच के बीच में मोटे धागा से बनी गेंदी लगाते थे जो कुनई के आकार की होती थी। इसे लगाने से कन्नफूल का लटकना बन्द हो जाता था।

कन्नफूल के ऊपर भी एक कुन्दा लगा रहता था जिसमें सोने की साँकल सा कनौटी फसाकर साँकल के दूसरे सिरे को बालों में फसा दिया जाता था या साँकल को डंडी में फसाकर कान के अगले हिस्से से लेते हुए उसे पीछे ले जाकर पेंच में बन्द कर देते थे। कान में चाँदी की बनी हुई तरकियाँ पहनी जाती थी। ये चाँदी से बने गोल फ्रेम में बिल्कुल छोटी आरसी के समान लाल, हरे रंग के काँच के टुकड़े जड़े रहते थे। इसे भी कन्नफूल की तरह पहिना जाता था। ब्रिटिश शासन काल से ऐंरन (इंयर रिंग) पहिनने का चलन हो गया था जिसका ऊपरी भाग विभिन्नाकृतियों में छोटा तथा लुभावना होता है। इसके पीछे की ओर एक डंडी रहती है जिसमें पेंच लगा रहता है तथा पीछे की ओर पतला तार लगा रहता है जिसे कान के छेद में डालने के बाद मोड़कर दबा दिया जाता है। ऊपर के फूल या ठप्पा के नीचे एक कुन्दा होता है इस कुन्दे में चपटा, पानाकृति, या विभिन्न डिजायनों में बना हुआ, जड़ाऊ या सादा पीस पड़ा रहता है इसमें भी एक कुन्दा नीचे की ओर होता है। इस कुन्दे में सोने की पतली केरी या एक–दो–तीन छोटे–छोटे बोरे डले रहते हैं। ऐंरन झूलादार भी होते हैं। पुराने समय में महिलायें कान के सबसे ऊपरी भाग में कई छेद कराकर बारी तीतरी, लौंग आदि पहनती थी। कान में कई बारियाँ पहिनने का रिवाज मुसलमान महिलाओं में अधिक था।

गले के आभूषण :–

महिलाओं के सुहागवती होने के प्रतीक स्वरूप माँग के सिन्दूर, माथे पर बिन्दी, आँखों में काजल, गले में काले पोत की छुटिया, हाथों में काँच की चूड़ियाँ तथा पैरों की अँगुलियों में बिछिया छला का रिवाज था। इनमें से अब काली पौत की छुटिया का स्थान मंगल–सूत्र ने ले लिया है शेष चीजें ज्यों की त्यों हैं।

हमने अपनी दादी, नानी को कहते सुना है कि भैया वाली बहिन नंगे गले पानी भी नहीं पीती। अभिप्राय यह कि नंगा गला रखना अशुभ माना जाता था। इसलिये गले में पहिने जाने वाले आभूषणों की संख्या एवं प्रकार भी कम नहीं थे – नौलखाहार, चन्द्रहार, सीतारामी, सेली, हमेल, साँकल (चेन–जंजीर) टकयावर, मोरन का कठला, छुटिया, छूटा, एक खंगौरिया, चम्पौ, सतलरी, पचलरी, मोहनमाला, सर, लल्लरी बिचौली, विदानों, ठुसी, हसली, कुंठी, गुलूबन्द, अनेक लड़ियों से बनी दुलरी, तिलरी, चौलरी, पचलरी, सतलरी तथा तबिजिया बीजासेन की पुतरिया, कठला (हा, चन्दा सूरज) आदि।

उस जमाने में नौलखाहार, चन्द्रहार की तो आज कल्पना

भी नहीं की जा सकती है। यह सब रानी–महारानी ही पहिनपाती थीं। सीतारामी हार सोने का होता था। इसमें तीन से सात इमरती डिजाइन की लरें होती हैं। लरों को बीच–बीच में इकट्ठाकर ठप्पों द्वारा जोड़ दिया जाता है जिससे कि वे फैलें नहीं। बीचों–बीच एक जड़ाऊ, मीनादार बड़ा ठप्पा लटकता रहता है। इसके दोनों सिरों पर कुन्दे बने रहते हैं जिनमें जंजीर फँसाकर इसे पहना जाता था। मुगलकालीन स्वर्ण के सिक्कों (अशरफी) या ब्रिटिश कालीन कलदारों के ऊपरी सिरे पर कुन्दा लगा दिया जाता था इन्हें पटवा द्वारा बरवा लिया जाता था इसे टकयावर कहते थे। सोने के छोटे–छोटे कई मनकों को एक–दूसरे से सटाकर कई पंक्तियों में जोड़ा जाता था यह तिदाना कहलाता था। एक्यूप्रेशर के समान उभरे हुए आभूषण को बिचौली कहते थे। तुसी का ऊपरी भाग तिदौना या बिचौली जैसा होता था इसके बीच में छोटे–छोटे बोरों के घने–घने गुच्छे डले रहते थे।

सोने के पत्ते को काट कर ढोलक के आकार के पोले मनके बनाये जाते थे जिनके अन्दर चमड़ा भरा जाता था इनके बीच में एक अशरफी लटकी रहती थी। जो लल्लरी कहलाती थी। इसी प्रकार गोल मनकों से बनी माला को कंठा कहते थे। इससे छोटे मनकों की बनी माला को मटरमाला कहते थे। एक जवा छः पाल जिसके दोनों तरफ कुन्दा लगा रहता था इसी प्रकार एक गोल गुरिया इसमें भी कुन्दा लगा रहता है इस प्रकार एक जवा, एक गोल गुरिया से बने आभूषण को चम्पौ कहते थे। इसके बीच में एक लौकट पड़ा रहता था तथा दोनों सिरों पर कुन्दा लगा रहता था जिसे फसाकर पहिना जाता था। खंगौरिया अधिकतर चाँदी की बनती थी। यह ठोस होती थी इसके बीच का भाग अनेक डिजाइनों में सुसज्जित रहता था दोनों सिरों पर कुन्दे लगे रहते थे पहिनने के बाद दोनों कुन्दों को धागा से बाँध दिया जाता था। खंगोरिया की तरह ही हसली भी बनती थी जो खंगौरिया की तुलना में बहुत पतली होती थी। ग्रामीणांचल में अभी भी इसका चलन शेष है।

जिन परिवारों में बीजासेन देवी ''पारौ'' की पूजा होती है उन परिवारों में नववधू को चढ़ाव में सोने या चाँदी की बनी बीजासेन की पुतरिया चढ़ाने की प्रथा थी जो आज भी यथावत है। नववधू को सबसे पहले बीजसेन की पुतरिया ही चढ़ाई जाती है। पुरुष का दूसरा विवाह होने पर पहली पत्नी की स्मृति में पुतरिया बनी हुई तबिजिया पहनाई जाती है इसे उसकी जेठी का रूप माना जाता है। नवजात शिशु को बुरी नजर से बचाने के लिए सोने या चाँदी से बनी हो पहनाते हैं। गोलाकार तबिजिया के बीच में ''हा'' बना रहता है। इसी के साथ बच्चों की सर्दी जुकाम से रक्षा के लिये चन्दा सूरज के आकार की तबिजिया ''हा'' के साथ ही पहनाई जाती है।

हाथ के आभूषण :–

जहाँ हथेलियों में रची लाल–लाल मेहंदी तथा दूसरी ओर कलाई में खनकती हुई लाल पीली चूड़ियां महिला की सुन्दरता में चार चाँद लगा देते हैं। अनादिकाल से चला यह चूड़ियों का प्रचलन कभी भी पुराना नहीं हुआ बल्कि महिलाओं के सुहाग चिन्ह को प्रदर्शित करता है। तभी तो दादी परदादी आर्शीवाद देते हुए कहती थीं ''हाथ–भर चूड़ी, मांग भर सिन्दूर सलामत रहे।'' अर्थात् चूड़ी अमर रहे। चूड़ियों का नाम एवं महत्व अवसर के अनुसार होता है। ब्याह में चढ़ाय के समय नववधु को सादी काली चूड़ी चढ़ाई जाती है। जिसे ''कचारा'' की संज्ञा दी जाती है। इसी प्रकार बालक के जन्म के दस दिन बाद (दस्ठौन के दिन) बालक की माँ (जच्चा) को सादा पीले–लाल रंग की दो–दो जोड़ा मिलाकर पहनाई जाने वाली काँच की चूड़ियों को ''अमरस'' कहा जाता है। जन्म के बाद दस्ठौन के समय बालक/बालिका को आभूषण पहिनाने की प्रथा आज भी है। ये धागे के बने हुए होते हैं जिनमें बीच–बीच में लाल–पीले फुदना लगे होते हैं। इन्हें ''डोरा पोचियाँ'' कहा जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं तीज त्योहार, व्रत पूजा, छठी दस्ठौन के समय पहिने जाने वाले हाथ के इन पारम्परिक गहनों की भूमिका निराली है। गो० तुलसीदास जी ने सीता जी के कंकन का बखान करते हुए लिखा है — ''राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाई''

वहीं दूसरी ओर चगेर (बधाबा) लाने पर नन्दरानी भाभी से कंगनवा माँगती है — ''कंगनवा माँगे ननदी लाल की बधाई में।'' इसी प्रकार रंगभरी चूड़ीं खेदार ककना। इन्हीं चूड़ियों के साथ में कलाई, हथेली, उँगली तथा बाजुओं में पहिने जाने वाले आभूषणों की शोभा अनूठी है। इनमें बखौरा, बरा, ककना, बधवा, बाजूबंद, बखौरियाँ, बजुल्ला, चूरा, पटेला, पोंचियाँ, चुरियाँ, बंगलियाँ (छन्नी) गजरा, नोंगरई, दोरीं, डारैं, ऐंठी, इमरती के चूरा, गजरियाँ, बेलचूड़ी, चरीबंद, हतपोश, गुस्ताने, दस्तवंद, गुंजे, सन्तान सप्तमी की चूड़ी तथा ऊगलियों में पहिने जाने वाले छला, छाप मुदरी पैंती आदि हैं।

वरा, बाजूबन्द, भुजबंद, अनन्त लखौरियों तथा बजुल्ला कुहनी के ऊपर पहिने जाने वाले आभूषण हैं। बाजूबंद सोने या चाँदी का होता है जिसे डोरा की सहायता से बाँधा जाता है। बरा–यह सोने या चांदी का सपाट तथा पोला होता है, इसके दोनों सिरों पर शेर जैसे मुंह बने रहते हैं। पहले बरा फिर बाजूबंद पहिनने का रिवाज था। चांदी के नीचट तार जिसे ऽ घुमावदार तथा गोलाकार मोड़ते हैं, इसके बीच में जोड़ के पास फूल बना होता है, जिसके नीचे दोनों तरफ कील लगाने के लिए सुराख रहते हैं, इसे बरबौरियाँ कहा जाता है। बजुल्ला–यह चटाई की गुथी हुई बनती है। इसमें एक सादा तार तथा एक

जंजीरदार तार रहता है। यह भी कील तथा पेंचदार होता है। अनन्त चतुर्दशी के दिन पहिन जाने वाले आभूषण को अनन्त कहते हैं। यह सोने का ठोस होता है।

हथेली के पीछे पहिने जाने वाला गहना है हथफूल या हाथ पोस। जिसमें पाँच लरें होती हैं, बीच का भाग गोलाकार अथवा पानाकृति का एवं जड़ाऊ होता है। इसके ऊपरी सिरे पर बेलबूटेदार डिजाइन होती है। कलाई में बाँधने के लिए कुन्दा या कीलदार पेंच लगा रहता है, जिसकी सहायता से कलाई में पहिनकर कुन्दा को दबा देते हैं या कील पेंच लगा देते हैं। इसी के नीचे की ओर पांच लरें (सांकर) छोटी–छोटी विभिन्न डिजाइन की होती है जिनमें पाँचों ऊँगलियों में पहिनने के लिये अंगूठियाँ लगी रहती है। इसे पहिनने से हथेली का ऊपरी भाग पूरा भरा हुआ सुन्दर दिखाई देता है।

सोने–चाँदी के घुमावदार चूरा (इमरती मिठाई के आकार के बने चूरा) को इमरती के चूरा कहते हैं, जो ठोस होते हैं। इनके दोनों सिरों पर बाघ की आकृति बनी रहती हैं। कलाई में पहिनने के बाद इन सिरों को कसकर दबा देते हैं। कुछ चूरा चिकने व गोल भी बनते हैं, जो चाँदी या ताँबे के होते हैं, इनके ऊपर सोने का पत्ता चढ़ाया जाता है। ककना (कंगन) चाँदी के छोटे–छोटे छेद वाले होते हैं। सोने के रबादार ककना भी होते हैं। गजरा सोने या चाँदी के तारों को गूंथकर बनते हैं, इनके बीच–बीच में सोने या चाँदी के घुंघरुयों के गुच्छा लगे रहते हैं। बेलचूड़ी, छन्नी आदि बेलबूटे एवं जालीदार बनती हैं। सन्तान सप्तमी की चूड़ी ठोस, सोने, चांदी या तांबे की बनती है। भादों माह के शुक्ल पक्ष की सप्तमी को इसकी पूजा होती है। इसे पुत्रवती माताएं ही अपनी सन्तान की सुख समृद्धि हेतु पहिनती है। इसके दोनों सिरों पर एक ओर ३ तथा दूसरे सिरे पर ४ गड़रा (धारी, लाईन) होती है। इसे बनवाते समय तौल का विशेष ध्यान दिया जाता है। यह सवा पाँप आना, दस आना, सवा तोला, ढाई तोला की बनती है। किन्हीं २ परिवारों में माघ माह के शुक्ल पक्ष की सप्तमी के दिन भी पूजा होती है, इस प्रकार वर्ष में दो बार सन्तान सप्तमी मनाई जाती है। कलाई में पहिनने वाले चौड़ी पट्टी के बने आभूषण को पटेली या पटेला कहा जाता था। दोनों बाजुओं की ओर नुकीली कलसादार बने आभूषण को नौगरई कहा जाता था।

उंगलियों में मुदरी, अंगूठी, छला पैंती, छाप आदि पहिनने का रिवाज था। ये सोने, चाँदी, ताँबा, पीतल लोहा, सातधातु आदि से बनती है। सोने, तांबे, चांदी के बने मिश्रण से बनी मुदरी को ''त्रिलौह'' की मुदरी कहते हैं। सादा, पान, चिड़ी के ठप्पादार, किन्ही ये ''राम'' या नाम लिखा हुआ, लम्बी, गोलाकार विभिन्न डिजाइनों में बनती है। नग (रत्न) जड़ी होने पर ककरादार मुदरी कहलाती है। सोने, चाँदी, ताँबे के पतले तार से ३–४ घेरों से भी छला बनाया जाता है। अंगूठी पहिनने से उंगलियों की शोभा बढ़ जाती है। अब तो मुदरी, छला पैंती आदि के स्थान पर अंगूठी का ही चलन गया है।

कमर के आभूषण :–

एक गीत के बोल हैं – 'पाँव पैजनियाँ कम्मर करधनियाँ दादी के घर खेलन कब लाल जे हैं।' नवजात शिशु को कमर में काला नीला धागा बाँधने का रिवाज था। थोड़ा बड़ा होने पर पतली सी करधनी उसे पहिना दी जाती थी। विभिन्नाकृतियों में बने हुए महिलाओं के कमर के आभूषण है – करदौना (करधनी) कछौरा, चील पेटी, डोरा, डुलनियाँ, छूद्र घुण्टी, कम्मरपेटी तथा गुच्छी से आभूषण सोने चांदी के बनते हैं। करदौना में इमरती डिजाइन की कई लरें लगी रहती हैं। इनको साधने के लिए बीच–बीच में फूलपत्ता, बेलबूटेदार छोटे–छोटे ठप्पे लगे रहते हैं। इसके दोनों सिरों के ठप्पों का आकार बीच के ठप्पे से थोड़ा बड़ा एवं बजनी होता है, जिसके एक सिरे पर बीच में एक कुन्दा तथा दूसरे सिरे पर ऊपर नीचे दो कुन्दे रहते हैं। करदौना को पहिनकर कील लगाकर बंद किया जाता है। करधनी सांट की डिजाइन की भी बनती है यह एक ही लर की होती है इसके नीचे कलसा बने रहते हैं इन्हीं कलसों में छोटे–छोटे दो रवा तथा इन्हीं के बीच में एक रवा और होता है। किसी करधनी में एक दो लर में चिड़ी पान के ठप्पा या चाँदी के गुरिया लगे रहते हैं जिन्हें ''बाजरा'' कहते हैं। एक लर की करधनी को कटोरा कहते हैं। इसमें सुन्दरता लाने के लिए सांकल की झालर लगी रहती है जो झलरया कछोरा कहलाता है। चौड़ी पट्टी के बने आभूषण को कमरपट्टा कहते हैं। सोने की एकलर की पतली रबादार करधनी भी होती है। जहां एक ओर करधौनी कमर की सुन्दरता बढ़ाती है वहीं दूसरी ओर कमर पर बंधी, धोती, लहंगा आदि को सम्हाले रहती है किन्तु इसका चलन भी समाप्तप्राय है कभी कभार शादी विवाह के अवसरों पर महिलायें इन्हें पहिने मिल जाती हैं, परन्तु नववधु को चढ़ाय में अवश्य जाती हैं।

पैर के आभूषण :–

''ठुमुक चलत रामचन्द्र बाजत पैजनियाँ'' तुलसीदास जी की इस पंक्ति से ही आभास होता है कि पैर के आभूषण अपनी मधुर ध्वनि से दूसरों को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं तभी तो रामचन्द्र जी ने पुष्पवाटिका में ''कंगन किंकिनी नूपुर धुनि सुनि.......'' लखन से सीता जी के आगमन का वर्णन किया था। इस प्राकर आवाज करने वाले महिलाओं के पैर के आभूषण बहुतायत में अनेक नामों के हैं जिन में हैं – पैजना, घुंघरियाँ, झांझें, लच्छा, जेरे, पायजेब, गुलसन पट्टे, तोड़ा, गुजरी, बेलचूड़ी, छैलचूड़ी, घुंसी या चूरा, पंखी, छागलें,

अनौखा, बाँके, पायल, छला, छिगनियाँ, मछली, कटीला, बिरमिदी, चनौटा, बिछिया, जोडुवा, पाँवपोस, माडर कडे छड़े, टालें जंजीर, पाहिल, बोरा बिंदली आदि हैं। पैर में पहिनने के लिये ये आभूषण चाँदी तथा गिलट के बनते हैं। सोने के आभूषण पैर में पहिनना शुभ नहीं माना जाता था केवल राजघराने में रानी महारानी सोने के आभूषण धारण करती है।

चाँदी के तार में उमेठे हुए गोल कड़े को लच्छा कहते थे जिन्हें ८–१०–१२ की संख्या में पहना जाता था। ठोस चाँदी के बने गोलाकार चूरा को कड़ा कहते थे। पैंजना गोलाकार अन्दर से पोले रहते थे। इनके अन्दर लोहे के गोल–गोल कुछ छर्रे डाल दिये जाते थे जिनसे आवाज आया करती थी। यह खजरियादार तथा छीताफली डिजाइन में बनते थे। चाँदी के ठोस घुमावदार गोल कड़ों के किनारों पर फूल बने रहते थे जिन्हें तोड़ा कहते थे। यह टूटदार होता था इसके बीच में कील रहती थी जिसके सहारे यह खुलता था जिस प्रकार ककना बनता था उसी प्रकार यह भी बनता था। गोल पट्टीदार तथा धुंधरू पड़ी रहती थी इन्हें छागलें कहते थे। छैल चूड़ी यह चौड़ी पट्टी की तरह होती थी इनमें विभिन्न डिजाइन बनी रहती थी। अनौखा इमरती के डिजाइन के बनते थे इनमें चाँदी के घने बोरा गसे जाते थे। ठोस गोल चूड़ी की भांति बनी हुई तथा लहरिया वाली डिजाइनदार बने आभूषण को बाँके कहते थे। चौड़ी पट्टी पर डिजाइन बनी गोल पोली जिनके दोनों सिरों पर गुट्टे बने रहते थे इन्हें झांझे कहते थे। चाँदी की बेलबूटेदार पट्टी में चाँदी के ही बने बोरा लगे हुए आभूषण को पायजेब कहते थे। पायल विभिन्न प्रकार की पतली मोटी, चिड़ी, पान, साँट आदि की बनती थी। घुंघरियाँ यह बादाम के आकार की बनती थी इनके मुंह खुले रहते थे। इनके अन्दर लोहे का एक–एक कंकड़ पड़ा रहता था, जो आवाज करता था। इनके ऊपर कुन्दा रहता था, इस कुन्दा के ऊपर सिरखा रहता था जिससे इनकी सुन्दरता बढ़ती थी, यह पटवा द्वारा बरवा कर पहिना जाता था। इसे पहिनकर चलने से मधुर रुनझुन की आवाज निकलती थी।

पैर के आभूषण पहिनने का ढंग विचित्र है। कोई महिलाएं लच्छा ही पहिनती हैं तों कोई ३–३ या ४–४ लच्छा फिर २–२ बाँकें फिर छैलचूड़ी, इनके बाद पुनः बाँके, ३–३ लच्छा अन्त में अनौखा पहिनती है। कोई–कोई महिलाएं केवल लच्छा और झाँझें ही पहिनती हैं। किन्तु आज के समय में ये सब चीजें, दुर्लभ हैं इनके नाम ही किसी को नहीं मालूम।

पैर की उंगलियों में पहिने जाने वाले आभूषण निराले होते थे, जिन्हें शादी के बाद ही पहिना जाता था। ये हैं — बिछिया, मछरी, छल्ली छिंगटी आदि। पैर के अंगूठे में चुटली, छला, छिगरी में पहिने जाने वाले को छिगटी कहते थे। शेष तीन उंगलियों के लिए बिछिया, छल्ला, मछरी की संज्ञा दी जाती थी। बिछिया डिजाइन के आधार पर विभिन्न नामों से जाने जाते थे जैसे — कलसादार, बाजरावाले, बतशया आदि। सादा तथा गोलाकार छल्ले को छला कहते थे। पैर के पंजे में पहिनने के लिए पान की आकृति के बने हुए आभूषण को पाँवपोश कहते हैं। यह हथफूल जैसा ही होता था। बिछिया सधवा महिलाओं के ही आभूषण माने जाते हैं। आधुनिक विचारधारा से प्रभावित होकर कुछ–कुछ नववधुओं और महिलाओं ने तो 'सुहागचिन्ह' बिछिया का ही त्याग कर दिया है किन्तु अब भी अधिसंख्या सधवा महिलाएं पैर की उंगलियों में बिछिया अवश्य ही पहिनती हैं उनके सधवा होने का यह मुख्य प्रमाण माना जाता है।

—पुरानी नजाई, टीकमगढ़ म.प्र.

□

बुन्देली गीत

— डॉ. डी.पी. खरे 'प्रसाद'

अमरीका के पिट्ठू बन गए, फिर भी तुमरौ छल नईं छूटो।
रस्सी जल गई बल नईं टूटो।
अमरीका में तुम मिमयाए।
चीन से कौरा लै कें आए।
देस विदेश में बखिया उघड़ी,
कितै कितै न तुम गिगयाए।
कपटी बन कें हाँथ मिला रय, काश्मीर पै छल नईं छूटो।
रस्सी जल गई बल नईं टूटो।
तालिबान खौं पालो पोसो।
लरका बिटियन तक ने कोसो।
मुल्ला उमर और ओसामा,
लगें तुमें जैसें हों ओसो।
कबलौं इने छुपा कें राखौ, इक दिन सबखों दिखें अंगूठो।
रस्सी जल गई बल नईं टूटो।
बन्द करौ जा आँख मिचौनी।
नईतर हुइये अब अनहोंनी।
बरसन से समझा रए तुमखौं,
हमरी बात लगत नईं नौनी।
अबकी बेर जो आँख उठाई, गटा काड़ कें ठोकें खूँटो।
रस्सी जल गई बल नईं टूटो।

— टीकमगढ़ □

ओरछा—इतिहास में अनूठा चरित्र :

राय प्रवीण यथार्थ के आईने में

— पं. गुणसागर 'सत्यार्थी'

मांडू में रानी रूपमती का महल हो, आगरा में फतेहपुर—सीकरी का मुगलकालीन 'पचमहला' हो अथवा ग्वालियर के किले में स्थित राजा मानसिंह तोमर द्वारा निर्मित 'गूजरीमहल' हो। इन सभी पुरावशेषों की दीवारों, द्वार, गवाक्षों से अतीत की स्वर लहरियाँ आज भी प्रतिध्वनित हैं, जिनमें उस युग के स्वर्णिम इतिहास की सुगंध महकती है। ठीक इसी प्रकार बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक नगर ओरछा जो आज मध्यप्रदेश के प्रमुख पर्यटन स्थलों की इकाई है, जहाँ नित्य अनगिनत देशी और विदेशी पर्यटक आते हैं और यहां के पुरावशेषों के खण्डहर देख अपनी सुध—बुध भूल जाते हैं। राजप्रासाद (किला) परिसर में ही ग्वालियर के 'गूजरी महल' के ही समान ''रायप्रवीण—महल'' भी कुछ गुनगुना रहा होता है, दीवारों के आधे—अधूरे बने भित्ति चित्र उन कुशल हाथों की कहानी कहते हैं, जो हाथ, नृत्य की भाव भंगिमाएं भी दर्शाते थे और लेखिनी लेकर काव्य सृजन भी करते थे। घुँघरुओं की झनकार हम सुन तो रहे हैं, परन्तु नहीं समझ पा रहे हैं कि वह घुँघरू असली सोने के थे अथवा पीतल—काँसे के? बस इतना ही काफी, कि वे घुँघरू थे। इतनी सी जानकारी लेकर हम तरह—तरह के पंख लगा कर हवा में उड़ने लगते हैं और राय प्रवीण कहाँ जन्मी उसके माता पिता कौन थे? उसकी पृष्ठभूमि वगैरह कुछ भी जाने बगैर मात्र उसके घुँघरुओं के कारण कल्पना कर बैठे कि वह एक 'नर्तकी' थी। वैसे नृत्य भी एक कला है, आज भी बड़े—बड़े घरों की कुलीन स्त्रियाँ चाहे वह सोनल मानसिंह हों, मल्लिका साराभाई हों या रश्मि बाजपेई आदि कोई भी नृत्यांगनाएँ हैं। पर 'नर्तकी' का शब्दार्थ हमारे समाज में गणिका, रंडी, बेड़िनी, जैसे घोर असम्मानसूचक अर्थ में ही रूढ़ हो जाने से रायप्रवीण को नर्तकी या राज नर्तकी कहना इसलिए गले नहीं उतरता कि रायप्रवीण के समय में रहे ओरछा राज्य के राजकवि आचार्य केशव के शब्दों में 'नर्तकी' की छाया भी कहीं दूर तक नहीं दीखती। केशव ने स्पष्ट लिखा कि —

''रत्नाकर लालित सदा, परमानन्दहिं लीन,
अमल, कमल, कमनीय कर, रमा कि राय प्रवीन?
राय प्रवीन की सारदा? सुचि, रुचि, रंजित अंग,
वीणा—पुस्तक धारिणी, राजहंस सुत—संग।।
वृषभ वाहिनी अंग उर, वासुकि लसत प्रवीन,
सिव सँग सोहै सर्वदा, सिवा कि राय प्रवीन?''

मात्र इतना ही नहीं, केशव आगे यह भी स्पष्ट शब्दों में बेवाक् कह देते हैं कि —

''सविता जू कविता दई, तो कँह परम प्रकास,
ता के काज 'कविप्रिया', कीन्हीं केसौ दास।

'कविप्रिया' केशव प्रणीत रीति—काव्य का प्रमुख लक्षण ग्रन्थ है जो श्रृंगार रस से ओत् प्रोत् है। अतः इन पंक्तियों को पढ़कर हमने यह भी मान लिया कि वह राय प्रवीण नाम की कथित नर्तकी इतनी सुन्दर थी कि कवि हृदय केशव की वह काव्य कामिनी भी थी। राजा इन्द्रजीत तो उसके रूप लावण्य पर आसक्त थे ही .... वगैरह। परन्तु हमने यह विचार क्यों नहीं किया कि एक मियान में दो तलवारें कभी संभव नहीं होती, तो रायप्रवीन एक साथ राजा इन्द्रजीत एवं कवीन्द्र केशव की प्रिया कैसे हो सकती है? यदि वह जन्मजात नर्तकी थी, तो आचार्य केशव क्या पागल थे? जो उसकी तुलना, रमा, शारदा और शिवा जैसी महादेवियों से कर बैठे? यह सब पढ़कर मन नहीं मानता राय प्रवीण को नर्तकी कहने के लिए। केशव की काव्य—कामिनी कहने से पूर्व हमें स्वयं केशव की पृष्ठभूमि एवं उनका धरातल भी तो समझ लेना चाहिए था। अपने बारे में केशव ने स्वयं लिखा है कि —

''भाखा बोल न जानहिं, जिनके कुल के दास,
भाखा कवि भौ मन्दमति, तिहि कुल केसौदास''

केशव के घर में नौकर—चाकर तक भाषा (हिन्दी) में बात—चीत नहीं करते अर्थात् संस्कृत में बतयाते थे। उस समय राय प्रवीण को हिन्दी में काव्यशास्त्र का शिक्षण देने हेतु पाठ्य पुस्तक केशव कहां से लाते? अतः राय प्रवीण को ही काव्य शास्त्र पढ़ाने हेतु 'कविप्रिया' नाम का लक्षण ग्रन्थ उन्हें उस समय लिखना पड़ा था— ''ताके काज कविप्रिया, कीन्हीं केसौदास।'' अर्थात् उसके लिए कविप्रिया तैयार की गई, न कि उसके ऊपर या उससे संबंधित। आश्चर्य है कि 'कविप्रिया' में रायप्रवीण की छवि हमने कैसे और किस आधार पर देख ली? और यह भ्रम फैला दिया कि राय प्रवीण तो केशव की काव्य कामिनी थी...वगैरह।

ऐसी एक दो नहीं अनेक बातें हैं जो विवेक—बुद्धि की कसौटी पर सोचने को बाध्य करती है। अतः सुधी जनों के समक्ष कुछेक प्रश्न भी हैं, जिनका उत्तर प्रकाशित साहित्य में तो शायद ही मिले, बुद्धि—विवेक से ही इन प्रश्नों का उत्तर तर्क संगत और सटीक खोजना होगा । अस्तु— पहला प्रश्न तो यही है कि अब तक रायप्रवीण के सन्दर्भ में जो भी लिखा

गया, उसमें एक घटना प्रमुख रूप से उभारी जाती है कि शहंशाह अकबर ने राय प्रवीण को अपने यहाँ बुलवाया था ... वगैरह। विनम्र प्रश्न यह कि कला प्रेमी अकबर जिसके दरबार में तानसेन जैसे महान कलाकार 'रत्न' के रूप में विद्यमान थे। तो क्या रायप्रवीण को भी एक कलाकार की ही हैसियत से शाही दरबार में तलब किया गया था? यदि हाँ, तो इस पर गहराई से सोचकर बतावें कि वहां पहुंच कर राय प्रवीण ने वह ''जूठी पातर'' वाली पंक्तियां क्यों सुनाईं? कला तो समुद्र की भांति अथाह होती है, कितना ही उलीचो, न खाली होगी, न जूठी। फिर राय प्रवीण को यह पंक्तियाँ क्यों सुनानी पड़ी?

इस घटना से जुड़ा दूसरा प्रश्न यह कि – राजा इन्द्रजीत ने बादशाह के हुक्म की अवहेलना करके राय प्रवीण को न भेजने का निश्चय किया और इस अपराध में अकबर ने जब ओरछा राज्य की हैसियत से अधिक जुर्माना कर दिया। तो ऐसी स्थिति में किसी और बड़े अनर्थ की संभावना को देखते हुए राय प्रवीण ने राजा इन्द्रजीत से यह क्यों कहा कि –

''आई हों बूझन मंत्र तुमें, निज सासन सों सिगरी मति गोई,
प्रान तजों कि तजों कुलकानि, हिये ने लजो लजिहै सब कोई।
स्वारथ और परमारथ कौ पथ – चित्त विचारि कहौ अब कोई,
जामें रहै प्रभु की प्रभुता, अरु मोर पतिव्रत भंग न होई।।''

क्या पत्नी के अलावा कोई नर्तकी ऐसी बात कहेगी? क्या यह गले उतरने वाली बात है? और तीसरा प्रश्न यह कि – 'राजकवि' की पदवी की सनद से सम्मानित और भारत में विख्यात महाकवि ही नहीं, राजा इन्द्रजीत के अत्यन्त आत्मीय मित्र केशवदास को राज प्रासाद (किला) परिसर से कितनी दूरी पर बसाया गया? उनका आवास गृह भी विशेष नहीं साधारण प्रजाजनों के समान ही था। लेकिन जिसे हम कथित रूप में नर्तकी कह रहे हैं? उसके लिए राजप्रासाद परिसर के भीतर रानी–महारानियों जैसे आलीशान महल ठीक वैसा ही बनवाया गया जैसे ग्वालियर के किले में राजा मानसिंह तोमर द्वारा बनवाया गया गूजरी महल? ऐसा क्यों हुआ? क्या एक नर्तकी का मान–सम्मान देश के महान हस्ताक्षरों – मित्र मिश्र, कवीन्द्र केशव, और भक्त कवि हरिराम व्यास की तुलना में श्रेष्ठ था? ... ऐसे अनगिनत प्रश्न पत्ता गोभी की तरह उभरते चले जाते हैं। और हम आप उलझन में ठीक ऐसे फंस जाते हैं कि पूर्ववर्ती लेखक हमारी मदद करने में अक्षम सिद्ध होते हैं? लेखकों की बात आई तो आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी की पुस्तक – ''हिन्दी साहित्य का इतिहास'' हमें और भी परेशानी की स्थिति में पहुंचा देती है। पृष्ठ क्र. १२३ पर आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी ने महाकवि केशव के सन्दर्भ में लिखा है – ''....... पतुरियों का आचार्यत्व उन्हें सोंपा था।........'' मानो केशव रीतिकाल के प्रवर्तक हिन्दी के प्रथमाचार्य महाकवि न होकर रंडियों को नाच–गान की तालीम देने वाले उस्ताद जी हों? परन्तु इसी बात को कुछ दूसरी तरह से भी सेंवड़ा (दतिया) निवासी स्व. प्रधान स्वरूप कानूनगोह 'कायथ' के द्वारा पौष सुदी १४ भोम संवत् १९१४ वि. को लिखी इतिहास विषयक पाण्डुलिपि में भी पढ़ा। यह पांडुलिपि डॉ. सीताकिशोर खरे के पासे सेंवढ़ा (दतिया) में सुरक्षित है। राजा मधुकर साह के पुत्रों का प्रकरण लिखते हुए स्व. कानूनगोह साहब लिखते हैं कि – ''....पांचवाँ बेटा इन्द्रजीत हुआ, उसने कछौआ–पिछोर का राज पाया और उसी राजा ने माधौ लुहार की लड़की जो बहुत खूबसूरत थी उसको अपने घर में डारली और उसका नाम प्रवीन राय रखा, उसके पढ़ाने के वास्ते केसौदास को नौकर रखा....।'' इस उलझन की बात को पढ़कर कुछ ऐसा ही लगा जैसे पत्ता गोभी में एक के बाद एक नया पत्ता निकल आया हो। अतः अब उचित नहीं है कि आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी और कानूनगोह की भाषा को गौण करके उस समय की परिस्थितियों के मद्देनजर ऐसे उलझाऊ कथनों के आशय को समझें, तभी शोध की दिशा में हम आगे बढ़ सकेंगे। तो यह बात भी बिल्कुल स्पष्ट है कि केशव महाकवि, काव्याचार्य एवं विद्वान पंडित तो थे, परन्तु गायन, वादन और नृत्य जैसी ललित कलाओं के जानकार नहीं थे। लेकिन वह ओरछा राज्य के मात्र 'राजकवि' ही नहीं, वरन राजा इन्द्रजीत के अन्तरंग घनिष्ठ मित्र अर्थात् एक मात्र विश्वास पात्र भी अवश्य थे। अतएव पाण्डुलिपि के अनुसार कछौआ–पिछोर में जिस रूप की साम्राज्ञी से वे जुड़े उसे अपने राजमहलों में लेकर आए, तो राजमहलों की तहजीब एवं ललित कलाओं में उसे पारंगत करके महलों की संस्कृति से संस्कार देना भी तो आवश्यक था। परन्तु ऐसी रुपसी को वे प्रशिक्षण हेतु हर किसी की सुपुर्दगी में भी तो नहीं दे सकते थे। आत्मीय मित्र अर्थात् विश्वासपात्र होने के नाते मात्र केशव ही एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें ऐसे प्रशिक्षण विशेष की सु–व्यवस्था का दायित्व यदि सौंपा गया; तो वह एकदम स्वाभाविक है। स्वयं केशव का आचार्यत्व संस्कृत काव्य शास्त्रों से प्रकाशित था, अतः राय प्रवीण को भाषा (हिन्दी) में काव्य शास्त्र का ज्ञान सर्वप्रथम केशव ने ही कराया। काव्यशास्त्र में निष्णात करने हेतु उसके लिए लक्षण ग्रन्थ स्वयं प्रणेत किये। इस प्रकार यह बात तर्कसंगत हो जाती है कि वह केशव की काव्य कामिनी नहीं, शिष्या थी और केशव पितृतुल्य गुरुदेव। अन्य ललित कलाओं के प्रशिक्षण की व्यवस्था केशव की देखरेख में सुचारू रूप से सम्पन्न हुई।

मजे की बात तो यह है कि अब तक के लेखकों ने राजमहलों में आने के पूर्व राय प्रवीण की जानकारी खोजने का प्रयास ही नहीं किया। मात्र अकबर और राय प्रवीण संवाद की

घटना से महिमा मंडित कर उसे नर्तकी के रूप में जग जाहिर कर बैठे। इस दृष्टि से श्री कानूनगोह की पाण्डुलिपि स्वयं में एक महत्वपूर्ण दस्तावेज अवश्य है। जिसकी पुष्टि ५ दिसम्बर १९६४ को 'मध्यप्रदेश संदेश' में प्रकाशित स्व. लोकनाथ शिलाकारी का आलेख भी करता है। शिलाकारी जी तो यह भी मानते हैं कि राजा इन्द्रजीत केशव के मित्र होने के नाते स्वयं भी कवि हृदय एवं सौन्दर्य के परम उपासक थे। उनके आलेख में तो राजा इन्द्रजीत और राय प्रवीण का गन्धर्व विवाह सम्पन्न होना भी बताया गया है। गन्धर्व विवाह की पुष्टि डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त ने भी अपने आलेख में की है। शिलाकारी जी ने भी राय प्रवीण को लुहार की कन्या ही माना है। उनके अनुसार एक समय वह कन्या अपने पिता के साथ मरसान खींच रही थी कि सहसा राजा इन्द्रजीत ने उसे मरसान खींचने की मुद्रा में देख लिया। देखते ही कवि हृदय राजा इन्द्रजीत के मुख से यह पंक्तियाँ फूट पड़ी –

''वह हेरनि अरु वह हँसनि, वह मधुरी मुसकानि,
वह खेंचनि मरसान की, हिय में खटकति आनि।''

पढ़कर एक पुराना दोहा याद आया कि –

''सरब ढके सोहें नहीं, उघरें होत कुवेस,
अध उघरे नीके लगें, कवि – आखर, कुच, केस।''

कौन जाने मरसान खींचते समय ऐसी ही कुछ भाव भंगिमा उस लुहार बाला की, राजा ने उस समय देखी हो और उनके हिय में खटका हो कि ऐसा सौन्दर्य तो राजमहलों में होना चाहिए यह यहां कहाँ? तब निश्चय ही उस कन्या के अध उघरे अंगों की ही भांति राजा के ''कवि–आखर'' भी अध उघरे रूप में इस प्रेम–प्रसंग की गंगोत्री, गन्धर्व विवाह रूपी अथाह समुद्र तक पहुँचाने का महाकाव्य अवश्य है। राजा किसी नर्तकी की कला पर नहीं एक रूप राशि पर ही मोहित हुए। उस सम्मोहन के क्षण तक वह नर्तकी–वर्तकी नहीं, केवल लुहार की कन्या है। जिसे राजमहलों में लाकर तराशा गया, ललित कलाओं और काव्य शास्त्रों द्वारा आभा प्रदान की गई।

कवि केशव की देखरेख में ललित कलाओं के प्रशिक्षण हेतु एक कक्षा बनाई गई जिसमें रायप्रवीण के अलावा भले घरों की अन्य बेटियों को भी प्रशिक्षण दिया गया। प्रशिक्षण के दौरान उन्हें नृत्य करता देख केशव हर्ष विभोर हो जाते और लिखते कि –

'राय प्रवीन' प्रवीन अति, 'नवरँगराय' सुवेस,
अति 'विचित्रनयना' निपुण, लोचन ललित, सुकेस।
सोहति सागर राग की, 'तानतरंग' तरंग,
'रंगराय' रंग चलति गति, 'रँगमूरति' अँग–अंग ।।

कक्षा के इस समूह को पतुरियों का समूह मान यह लिखना न्यायोचित नहीं कि – ''पतुरियों को आचार्यत्व उन्हें सौंपा था।''

इस मंथन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि राय प्रवीण कोई पेशेवर जन्मजात नर्तकी किंचित नहीं थी। वह तो अपने अद्भुत सौन्दर्य विशेष की धनी रही होगी, तभी राजा इन्द्रजीत उसके रूप सौन्दर्य पर मोहित हुए और मरसान खींचने वाले लुहार की झोपड़ी से उसे अपने राजप्रासाद में ले आए। अलवत्ता उन्होंने ग्वालियर के इतिहास प्रसिद्ध राजा मानसिंह तोमर द्वारा ऐसी ही एक रूपसी गूजरी वाला से विधिवत फेरे लेकर समाज में मान्यता प्राप्त विवाह रचाने की घटना का ज्यों का त्यों अनुकरण नहीं कर पाया। उस लुहार बाला को रानी के रूप में समाज के सम्मुख भले ही प्रस्तुत करने में वह चूके हों, परन्तु अपनी हृदय की साम्राज्ञी उन्होंने रायप्रवीण को अवश्य बना लिया था। दो दिलों का आत्मा से एकाकार हो जाना भी स्वयं में बहुत बड़ी बात होती है। उसके लिए जरूरी नहीं कि सामाजिक मान्यता की मुहर लगाने हेतु विधिवत सात फेरे ही लिए जाएं। बहुत से विवाहित जोड़े जिन्होंने फेरे लेकर पति–पत्नी होने की सामाजिक मान्यता भी प्राप्त की, परन्तु वे जीवनभर एकाकार होने में प्रायः असफल सिद्ध हुए और बहुत से अविवाहित जोड़े भी एक प्राण दो देह के रूप में एकाकार हुए हैं। जबकि राजा इन्द्रजीत और राय प्रवीण के बीच गन्धर्व विवाह होने की बात विद्वानों की कलम से उभरी है। कुल मिलाकर वे परस्पर एकाकार अवश्य हो चुके थे और एक दूसरे के प्रति परस्पर इतने समर्पित थे कि फेरे लेकर सामाजिक मान्यता वाली बात उसके लिए बहुत बौनी थी। राय प्रवीण ने जो बेवाक् अभिव्यक्ति दी है कि – *''प्राणतजों के तजों कुल कानि हिये न लजों लजि है सब कोई।''* अथवा *''जा में रहे प्रभु की प्रभुता अरु मोर पतिव्रत भंग न होई।''* उसका समूचा आचरण ही उसे राजा इन्द्रजीत की प्राणप्रिया अर्थात् पत्नी सिद्ध करता है। नर्तकी के आचारण की तो हवा ने भी राय प्रवीण को नहीं छुआ है। अतः यह जरूरी हो जाता है कि भ्रामक मान्यताओं से पर्दा उठाया जावे। अस्तु– ऐसी रूपसी के रूप सौन्दर्य की खबरें हवा में जब खुशबू की तरह उड़ी होंगी तो मुगल सम्राट के मुह में पानी आ जाना भी कोई आश्चर्य की बात नहीं। यदि अकबर राय प्रवीण की नृत्य–कला का गाहक होता और राय प्रवीण भी यथार्थ में नर्तकी ही होती तो झंझट की कहीं कोई सम्भावना ही न थी। प्रत्येक कलाकार अपनी कला के प्रदर्शन हेतु ऊँचे से ऊँचे गरिमाशाली मंच की आकांक्षा रखता है, फिर पेशेवर नर्तकी के लिए भारत–सम्राट अकबर का यह दरबार जहाँ तानसेन जैसे संगीत सम्राट सहित अकबर के जग विख्यात नवरत्न पहले से मौजूद थे, बेशक वह

ऐसा स्वर्ण अवसर मिला था, जिसे कोई भी समझदार नर्तकी गवाना नहीं चाहती। लेकिन ऐसा यदि नहीं हुआ तो क्यों? इस बिन्दु पर कोई भी संवेदनशील व्यक्ति यदि गम्भीरता से विचार करे तो उसकी समझ में यह बात आसानी से आ जाएगी कि राय प्रवीण की जीवनी के किसी भी पृष्ठ पर इन्द्रजीत के सम्पर्क में आने के पूर्व नृत्य करने का उल्लेख पढ़ने को नहीं मिला। वह नर्तकी नहीं, राजा इन्द्रजीत की प्राणप्रिया थी, जिसे महलों के संस्कारों के तहत काव्यशास्त्र, ललितकला में गायन, वादन और नृत्य के अलावा चित्रकला का कौशल राजा इन्द्रजीत के द्वारा सौगात रूप में बाद में ही प्राप्त हुआ था। राज महलों की संस्कृति को सजीव करते यदि उसने अपने महल में नृत्य किया भी तो इस कारण उसको नर्तकी या राजनर्तकी कहना न्याय संगत नहीं है। एक मामूली से मामूली आदमी भी अपनी प्रेयसी को पर पुरुष के समक्ष नाचता देखना बर्दाश्त जब नहीं कर सकता है। तो भला राजा इतना गया बीता नहीं हो सकता कि वह अपनी प्राण-प्रिया को राजनर्तकी के रूप में सरे आम दरवार में सभासदों के समक्ष नाचता हुआ देखकर प्रसन्न होता। जिसने शहंशाह के हुक्म तक को दोटूक ठुकरा दिया, जिसके परिणामस्वरूप अकबर ने ओरछा राज्य पर उसकी हैसियत से भी ज्यादा जुर्माना तक कर दिया। परन्तु शहंशाह और राजा दोनों ही अपनी—अपनी टेक पर अडिग थे। उस देश काल परिस्थिति में ओरछा राज्य पर जो संकट के बादल मडरा रहे थे, उन्हें देख किसी और बड़े अनर्थ की संभावना से वही राय प्रवीण मछली की तरह छटपटा रही थी, जिसकी स्वांस—स्वांस से यही स्वर फूट रहे थे कि ''मोर पतिव्रत भंग न होई।'' बेशक वह एक साहसी, धैर्यवान और असाधारण नारी थी। ''सांप मरे न लाठी टूटे'' की कहावत को चरितार्थ करने की उसने ठान ली। इसके लिए उसके पास था क्या? मात्र दृढ़ आत्म विश्वास, वाक्चातुर्य और प्रभावशाली काव्य कौशल......। अतः उसने अपने पितृ तुल्य गुरुदेव केशव को साथ लेकर अकबर के दरबार के लिए स्वतः कूच किया। वहां जाकर अपने वाक्क्चातुर्य से अकबर जैसे सूझ—बूझ के धनी की बोलती बंद कर दी। काव्य कौशल का परिचय देते हुए आशुप्रवृति से यह पंक्तियां मुगल सम्राट को सुना दी कि—

सुवर्ण गाहक तीन है, कवि, व्यभिचारी, चोर;
पग न धरत, संसय करत, तनक न चाहत, शोर।
विप्र, वैद, नाई, नृपति, स्वान, सौत, मंजार;
जुगल जुरें इस ठौर पर, होय विरोध अपार।
स्वेत रंग सबसें भलौ, स्वेत भले ना केस;
रमनी रमत, न रिपु बदत, सुनो सुजान नरेश।''

मात्र इतने पर ही रायप्रवीण सन्तुष्ट न हुई तो अन्त में दोटूक दो पंक्तियां और सुना दी —

''विनती रायप्रवीण की, सुनियो शाह सुजान;
जूठी पातर भरवत है — बारी, वायस, स्वान।''

सुनकर बकबर निरुत्तर हो गया। उसने अपनी हार मान, रायप्रवीण को वा—इज्जत ओरछा के लिए विदा कर दिया। रायप्रवीण ने जो कहा, वह करके दिखाया। भारत की इतनी बड़ी हस्ती को इस प्रकार शिकस्त देना किसी नर्तकी—वर्तकी के वश की बात न थी।

इन्हीं सब बातों से प्रतीत होता है कि बुन्देलखण्ड के ओरछा राज्य में मध्य युग का जो स्वर्णिम इतिहास है, उसमें राय प्रवीण का चरित्र स्वयं में एक अनूठा और स्वर्णिम पृष्ठ अवश्य है। यह विदुषी महिला चित्रकला, गायन, बादन और नृत्यकला के साथ काव्य सृजन के क्षेत्र में भी अपना महत्वपूर्ण स्थान यदि रखती थी तो निश्चिय ही वह राजमहलों एंव अन्तःपुरों की महती परम्परा का अंग है। नृत्यकला के कारण ही ऐसे चरित्र को नर्तकी कहना सर्वथा असंगत है क्योंकि यह शब्द अपने रुढ़ अर्थ में घोर असम्मानजनक है। सभी राज घरानों के अन्तःपुर इस बात की साक्ष्य है कि राजघरानों की कुलीन महिलायें नृत्य आदि ललित कलाओं में पारंगत होती थीं। तब मध्ययुग से लेकर अद्यतन ओरछा राज्य के वे अन्तःपुर इस परम्परा से अछूते नहीं रहे। केशव और राजा इन्द्रजीत की ही भांति ओरछा राज्य के अन्तिम यशस्वी राजकवि स्व. प्रेमबिहारी जी जिन्हें हिन्दी जगत मुंशी अजमेरी ''प्रेम'' नाम से जानता पहचानता है। वे महाराज वीरसिंह जू देव (द्वितीय) के अन्तरंग मित्र भी थे और उनकी अन्तःपुर तक सीधी पहुँच थी। उनके द्वारा राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के नाम टीकमगढ़ से दि. २० अक्टूबर १९३२ को लिखे एक लम्बे पत्र से यह अंश उल्लेखनीय है — ''.... भीतर महाराज और जनरल साहब (महाराज के अनुज) खड़े थे और खड़ी थीं कई स्त्रियाँ। महाराज ने सबका परिचय कराया — 'आप महारानी है, आप मंझली बहू हैं, आप संझली बहू हैं, आप मेरी भगिनी हैं. .... वगैरह। मैंने बारी—बारी से सबको प्रणाम किया, फिर बैठ गए। महाराज बोले 'अब सुनाईये' मैंने कविताएं सुनाई। फिर और और बातें हुई — गाना—बजाना आदि, मैंने भी गाया, जनरल साहब ने बाजा बजाया और उन्हीं में से एक स्त्री ने तबला। .... कर्नल साहब (महाराज के संझले अनुज) ने इधर—उधर देखकर कहा — ''होने दो रासड़ा' महाराज ने भी कहा — 'हाँ', सब स्त्रियाँ नाचने को खड़ी हो गई, महारानी समेत सबने गाया और नाचा....। ऐसा अपूर्व रास देखने में आया कि क्या कहूँ....?

मात्र इतना ही नहीं इस ऐतिहासिक पत्र में उल्लिखित संस्मरण के अलावा शिवानी के साहित्य में ओरछा राज्य के अन्तिम शासक वीर सिंह जू देव (द्वितीय) के अन्तःपुर के ऐसे

ही राग–रंग से आपूरित रेखाचित्र पढ़ने को मिलते हैं। एक उद्धरण – ''.... किले में आज विशेष गोठ अर्थात् गोष्ठी है। राज परिवार की राजकन्या सुधाराजा और उनकी सखियां गोष्ठी में अपना नाटक प्रस्तुत कर रही हैं।.... नाटक प्रारम्भ होता है। समवेत नृत्य में सखियों से घिरी किशनगढ़ शैली में राधिका के चित्र सी लगती सुधाराजा राधिका वेश में प्रवेश करती है। पैरों में असली सोने के वे भारी घुंघरू छनक उठते हैं जिन्हें उसी दिन रनिवास के अंधेरे तहखाने से निकाल कर चमकाया गया था। उन्हें शायद बुन्देला वीर–वीर सिंह जू देव (प्रथम) की महारानी के चरण स्पर्श का सौभाग्य प्राप्त हो रहा हो या मधुकर शाह जू की सुन्दरी महारानी के चरण भी चूम चुके हैं। ..'' (शिवानी का आलेख – ''वे अन्तःपुर'' जो ग्वालियर से प्रकाशित 'मंगल प्रभात' के टीकमगढ़ दर्शन विशेषांक में १६ अप्रैल १९७८ में प्रकाशित पृष्ठ सं. ५९–६०)

इन दोनों संस्मरणों में ओरछा राज्य के अन्तःपुरों की वही जीवन्त तस्वीरें हैं जो राजा इन्द्रजीत की प्राण प्रिया रायप्रवीण के जीवन में भी इसी महती परम्परा के तहत देखी गई। परन्तु हमने जब उन रानी–महारानियों एवं राज कन्या को 'नर्तकी' नहीं कहा, तो सिर्फ रायप्रवीण ही 'नर्तकी' क्यों और कैसे हो गई? यह प्रश्न आज तक अनुत्तरित बना हुआ है। रायप्रवीण महल में सैकड़ों वर्ष पूर्व जिन घुंघरुओं की झनकार गूंजी थी उनकी अनूगुंज आज भी गूंज रही है। परन्तु जरूरत इस बात की है कि वे घुंघरू असली सोने के थे अथवा पीतल के? इस बात को यदि हम जान पायें, तो परम्पराएँ दूध का दूध और पानी का पानी स्पष्ट कर देंगी। इसी निवेदन के साथ।

— कुण्डेश्वर, जिला टीकमगढ़ म.प्र. □

'भूख' पर बुन्देली चौकड़ियाँ

— एल. एम. चौरसिया

भइया भूख बड़ी दइमारी, हार गई संसारी।
अनुचित उचित करावै सबकुछ, नीत अनीत बिसारी।
पेट पालवै नचै बंदरिया, जैसो चाय मदारी।
तैसइ धनवारन के सामू, नाचै भूंख विचारी।।

सबसें बड़ी भूख बीमारी, सुरसा की अवतारी।
मारत रोज सबेरे संजा, ठांडी रात अंगारी।
जी कें लगै जौंक सी चिपकै, चूसै लहू खरारी।
मारत मारत भूखें मर गये, भूंख मरी न मारी।।

निर्दयी भूंख तरस न खावै, पक्षपात दिखलावै।
मालदार के ऐंगर बैरन, जातन में सकुचावै।
जिनकें दानो नइयाँ उनखाँ, बेरइँ बेर सतावै।
इतै मिलै वस सखी सूखी, उतै मलाई न खावै।।

जग में भूंख बड़ी दुखदाई, सबसें बड़ी कसाई।
किस्तन में मारै जिन्दा जी, मुरदा देत बनाई।
रूखी सूखी दो रोटिन में, सब ईमान नसाई।
ई सैं भलौ एक दिन मारै, बिन तड़पायें कसाई।

देखौ भूंख कछू न जाने, बस रोटी पहचाने।
जात पांत मजहब व कुनवा, ऊँच नीच न माने।
देश विदेश गांव की सीमा, अर्थहीन पैमाने।
धरम करम पूजा भूंखन की, सब रोटी के लाने।।

तोरे रूप भूंख बहुतेरे, सब में करत बसेरे।
बालक, युवा, वृद्ध उर ज्ञानी, सबइ भूंख के चेरे।
अपनी अपनी भूख मिटावे, करैं उपाय घनेरे।
जिने कछु की भूख नहीं वे, मूढ़ परमगति पेरे।।

होवै एक भूंख तो सैलें, छाती गतकौ दैलें।
तन की भूख मिटाबे उनबिन, तकैं पिया की गैलें।
मन की भूंख मसकरी चाहै, कीसैं करिये चैलें।
भूंख पेट की खैबे मांगे, दानों न का जैलें।
अब तौ लगै भूंख के मारें, जहर फरा सौ लैलें।।

लगवै भूंख प्यार की नौनी, हौनी का अनहौनी।
बैठत उठत जगत सोवत में, हिय में हूँक सजौनी।
वशीभूत वाणी वाचाली, बने बांझ हो मौनी।
पल भर में पाखान हिया को, बना देत है पानी।।

जिनखां भूंख काम की लागी, गिने न पानी आगी।
जप तप छोड़ नरक में उतरें, बड़े बड़े बैरागी।
छिन में बना देत है बैरन, नीतिवान खां बागी।
ज्यों ज्यों सुरत करौ त्यों बाड़ै, सुरत बिसारें भागी।।

मनकी भूंख बड़ी सैलानी, सबकी जानी मानी।
तन तन चखै भखै न ठिकधर, फिरवै सदा छुछानी।
जल थल नभ में विचरण करवै, तऊँ न कबहुँ अघानी
शान्त समाधि सैंकर लेबैं, जानत हैं जो ज्ञानी।।

सीमित भूंख बड़ी हितकारी, जग की सिरजनहारी।
तन की भूंख सृष्टि की वाहक, रचना करै प्यारी।।
मन की भूंख मनन कर खोले, अनुपम ज्ञान पिटारी।
धन की भूंख करम की शिक्षा, छुड़ा देय मक्कारी।।
सीमा में नौनी सीमा सें, बाहर प्रलंयकारी।

— सीताराम कॉलोनी, छतरपुर म.प्र. □

बुंदेली विवाह गीतों में राम

— डॉ. कुंजीलाल पटेल 'मनोहर'

बुन्देलखण्ड के लोकजीवन में प्रातः स्मरणीय प्रभु राम के चरित्र गायन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। यहां के ग्रामीण लोकमानस में 'रामनाम' की महिमा का पूर्ण समन्वय हो जाने के फलस्वरूप ही, संभवतः इस जनपद में अनेक रामनगर, रामपुर, रामगढ़, रामटौरिया, जनकपुर और जनकगंज जैसे ग्राम स्थापित किये गये होंगे। यहाँ की पावन धरा में स्थित कतिपय घाट, कुण्ड, कूप, बावरी, वन और बाग मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की तत्कालीन जीवनयात्रा के मूक साक्षी प्रतीत होते हैं। इतना ही नहीं, राम—जानकी, लक्ष्मण—भरत आदि नाम तथा उनके पर्यायवाची शब्दों के आगे प्रसाद, प्रताप, दास, लाल, दयाल, पाल, सेवक, शरण, सिहं, सखी, लली, दुलारी, देवी, बाई शब्द जोड़कर नामकरण की परम्परा के पीछे रामनाम की महिमा लोकजीवन में फलीभूत होकर बुन्देलखण्ड के ग्रामीण समाज में आज भी पल्लवित हो रही है।

विवाह मानवीय जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार माना गया है। जन्मोत्सव के आकांक्षीय लोकगीतों से ही, यहाँ का प्रत्येक मातापिता राम जैसा पुत्र तथा सीता जैसी पुत्रवधू की चाहना करने लगता है। इसीलिये हमारे लोकजीवन के मांगलिक कार्यों में 'राम जानकी विवाह' की परम्परा का सर्वाधिक प्रभाव लोकाचारों में देखने को मिलता है। बुंदेली के वैवाहिक लोकगीतों में राम, जानकी, लक्ष्मण, भरत, जनक सुनयना, दशरथ, कौशल्या के नाम बड़े आदर से गाये जाते हैं। हमारी लोक मान्यताओं के अनुसार वैवाहिक लोकगीतों में उक्त नामों का गायन किये बिना विवाह संस्कार निंविघ्न सम्पन्न होना कुछ असंभव सा प्रतीत होता है।

बुन्देलखण्ड में 'ओली—पक्यात' से ही 'वर—वधू' पक्षों में मांगलिक लोकगीतों की सरस, सुरीली और सुमधुर ताने गूंजने लगती हैं। वरपक्ष में पक्यात हो जाने के कुछ दिन बाद 'कन्यापक्ष' में 'लगुन' की तैयारी होने लगती है, जिससे कि 'वरपक्ष' वालों के यहाँ जल्दी लगुन भेजी जा सके। 'लगुन' चाहे जिसकी भी बेटी की लिखी जा रही हो, हमारे लोकमानस का लोकगीत अपनी पुत्री को भगवती 'सियाजू' के अनुरूप मान्यता प्रदान कर गाने के लिए प्रेरित करता है। लगुन लिखते समय जो लोकगीत गाया जाता है, उसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं —

सो आज मोरी सिया जू की लगुन लिखत है।
लगुन लिखत है ढिग चौंक पुरत है।
सो आज मोरी सिया जू..........
चौंक पुरत है शुभ कलसा सजत है।
सो सोने के कलसा पै दियाला जलत है।।
सो आज मोरी सिया जू..........
दियाला जलत है शुभ व्याव सुधत है।
सो आज मोरे अंगना में रंग बरसत है।
सो आज मोरी सिया जू.........

लगुन लिखने के बाद पंडित जी तिथिवार विवाह के पूरे कार्यक्रम बांच के सुनाते हैं। फिर बिटिया वाले की श्रद्धानुसार लगुन में सोने—चांदी से मढ़े या सादा हल्दी, सुपारी, नारियल, चावल आदि के साथ ऊने अंक में रुपये डाले जाते हैं साथ ही वस्त्राभूषण के साथ जो सामान लगुन में जाना है, वह सभी को दिखाया जाता है। पूरी तैयारी के साथ निर्धारित तिथि के लगुन जाती है। इसमें जाने वालों को हमारे यहाँ 'लगुनियाँ' कहते हैं।

बुंदेली समाज में चाहे किसी भी जाति के 'वर' की लगुन चढ़े, वर या दूल्हा को 'राम' के रूप में ही मान्यता प्रदान की जाती है। 'लगुनोत्सव' पर वैसे तो अनेक लोकगीत स्त्रियों द्वारा गाये जाते हैं। लेकिन सर्वाधिक गाया जाने वाला एक पारम्परिक लोकगीत यहाँ प्रस्तुत है—

सो आज मोरे राम जू को लगुन चढ़त है।
लगुन चढ़त है मन मोद बढ़त है।।
सो आज मोरे राम जू............
कानन कुण्डल मोरे राम जू को सोहै।
सो गलुवन बिच मुतियन लर उरमत है।।
सो आज मोरे राम जू............
केसर खोरे मोरे राम जू को सो हैं।
सो गरे बिच गोप जंजीर लसत है।।
सो आज मोरे राम जू............
कंचन चूरा मोरे राम जू को सो हैं।
सो हांतन बिच मुदरीं दरसत हैं।।
सो आज मोरे रामजू ....
राम जू के दरसन को जिया ललचत है।
सो आज मोरे अंगना में रस बरसत है।।
सो आज मोरे राम जू............

लगुन के साथ ससुराल से दूल्हा के लिये जो वस्त्राभूषण आते हैं 'बुलौवा' में आई गाँवपुरा की स्त्रियां प्रत्येक वस्तु का नाम से लेकर एक और लोकगीत 'लगुनोत्सव' पर बड़े चाव

से गाती हैं जिसमें दूल्हा को रघुवर एवं उनके ससुर को जनक शब्द से सम्बोधित किया जाता है। लोकगीत की कुछ पंक्तियां उदाहरण स्वरूप देखिये —

सो बना छवि लख मोरौ जिया हुलसत है।
हिया हुलसत है उमंग बढ़त है।।
सो बना छवि लख मोरौ............
रघुवर बसन लसत कुसुमानी।
सो मुदरी जंजिरन पै हिया हुलसत है।।
सो बना छवि लख मोरौं...........
जनक भवन से जो आई लगुनियां।
सो सुन सुन सखी मोरौ हिय हुलसत है।।
सो बना छवि लख मोरौ............
देखौ सखी राजा दसरथ के घर।
सो कंचन कलसा पै दियाला जलत है।।
सो बना छवि लख मोरौ..........

लगुनोपरान्त अनेक लोकाचार क्षेत्रीय रीति—रिवाजों के अनुसार बुंदेली लोकगीतों की गायकी परम्परा के साथ सम्पन्न होते हैं। अनेक प्रसंगों में भगवान के आदर्श रूप को लोकगीतों में स्त्रियों द्वारा गाया जाता है। 'मैर' या मायने की ''करैयां'' चढ़ाते समय वर—वधु दोनों पक्षों में अपने मूल मुल्क के देवी—देवताओं के साथ भगवान के अद्वितीय भक्त हनुमान जी को प्राकृतिक आपदाओं से निजात पाने के लिये लोकगीत के माध्यम से स्मरण करते हुए उन्हें कैसे आमंत्रित किया जाता है, एक लोकगीत की निम्नलिखित पंक्तियों में देखिये —

हनुमत हैं रखवारे पवन जू के,
हनुमत हैं रखवारे।
आंदी बैहर के बंधा बंधत हैं।
बाजत हैं ढोल नगारे।।
पवन जू के हनुमत हैं रखवारे।
हनुमान बाबा ऐंसें गरजत हैं।
जैसें हौ इन्द्र नगारे।।
पवन जू के हनुमत हैं रखवारे।

'मायने' के दूसरे दिन बारात की तैयारी की जाती है। बारात प्रस्थान के पहले दूल्हा को सजा—संवार कर पालकी या घोड़े पर बैठाकर गाँव—खेरे के सभी देवी—देवताओं को पान—बतासा चढ़ाकर उन्हें बरात के लिये आमंत्रित कर वैवाहिक कार्यक्रम निर्विघ्न सम्पन्न होने की 'मनौती' के निमित्त 'राछ' फिराई जाती है। इस अवसर पर जो लोकगीत गाये जाते हैं वे 'बनरा' कहलाते हैं। इन बनरा गीतों में दूल्हा को भगवान से तथा उसके भाइयों को लक्ष्मण—भरत के समान रूप देकर गाया जाता है। बनरा लोकगीत की कुछ पंक्तियां यहां उदाहरणीय हैं —

बना मोरौ पूनौ कैसौ चाँद, बना सब जग उजियारे री।
ऐंसें सज गये जैसें लक्ष्मन राम, भरत को मांगें करलये री।।
मोरे दो गोरे दो स्याम, बना कुल के उजियारे री।
मोरे राम लखन से बनरा, आली को बिलमा लये री।
बना के आजुल ने बिलमा लये, आजी कंठ लगा लयेरी।
बना के काका ने बिलमा लये, काकी कंठ लगा लये री।।
बना की जनकपुरी ससुरार, अकेले हमना जावैं री।
बना की बनरी हेरें वाट, बना मौरौ कब घर आवैरी।।

इधर गाँव—कुल के रीति—रिवाजों का निर्वहन करते हुए ''दुल्हा निकास'' होता है, उधर कन्यापक्ष में बारात आगमन की प्रतीक्षा होने लगती है। बारात के स्वागत् में कन्यापक्षीय महिलायें 'ऊबनी' के अवसर पर जो मांगलिक लोकगीत गाती हैं, उसमें रघुपति रूपी दूल्हा के आगमन से कन्यापक्ष के प्रदेश की सूखी प्रकृति पूर्णतः हरीभरी दिखतीं हैं। एक लोकगीत की कुछ कड़ियाँ अवलोकनार्थ यहाँ प्रस्तुत हैं —

जब रघुपत दूला 'मेड़े' में आये,
सो दूब रई हरआय, भले जू। दूब रई हरआय।।
जिब रघुपत दूला तालौं पै आये,
सो ताल हिलोरें लेय, भले जू।। ताल हिलोरें लेय।।
जब रघुपत दूला बागों में आये,
फूल रहे मुसकाये, भले जू। फूल रहे मुसकाय।
बेला जो फूले चमेली जो फूली,
केवड़े की वास सुहाय, भलो जू। केवड़े की वास सुहाय।
जब रघुपत दूला कुअला पै आये,
मोह लई पनिहारी, भलें जू। मोह लई पनिहारी।।

बुन्देलखण्ड में कहीं—कहीं पुष्पवाटिका एवं गौरीपूजन के प्रसंग पर आधारित एक वैवाहिक लोकगीत कन्यापक्षीय नारियों द्वारा बड़े हाव—भाव और चाव के साथ गाया जाता है। इस लोकगीत की बानगी प्रस्तुत है —

खोरन—खोरन पूछें जनक दुलारी जू,
कौन बाबुल जू के बाग, भलें जू।
हरी हरी दूबां बेटी फूली जां चमेली,
वेई बाबुल जू के बाग, भलें जू।
चुन चुंन फुलवा बेटी डलिया में धर लये,
धरगई घरई की गैल, भलें जू।
मांय से आ कहें रघुपत दूल्हा,
जे फूल हमें दयें जाव, भलें जूं।
जे फुलवा हमरे बाबुल मँगाये सो,
पूजत गौरि गनेस, भलें जू।

ऊबनी अथवा द्वारचार के अवसर पर 'शिव—गौरा' विवाह से संबंधित हास—परिहास पूर्ण अनेक लोकगीत तो गाये

ही जाते हैं, लेकिन हमारे यहाँ प्रत्येक विवाह में इस अवसर एक पारम्परिक लोकगीत अनिवार्यत: गाया ही जाता है, जिसमें मिथिला तथा अयोध्या के संबंधों को नकारा नहीं जा सकता। 'ऊबनी' के लोकगीत की लोकप्रसिद्ध कुछ पंक्तियां देखिए –

राम–राम–राम चढ़ व्याहन आये।
कौना के भले मालिया जिनने बाग लगाये।
कौना की बेटी कोकिला जिनने फूल मगाये।।
राम राम राम चढ़ व्याहन आये।
मिथिला के भले मालिया जिनने बाग लगाये।
जनक जू की बेटी कोकिला जिनने फूल मगाये।
राम राम राम चढ़ व्याहन आये।
कौना के भले कोटिया, जिनने कोट उठाये।
कौना के बड़े तापसी, चढ़ ब्याहन आये।।
राम राम राम चढ़ ब्याहन आये।
मिथला के बड़े कोटिया, जिनने कोट उठाये।
अयोध्या के बड़े तापसी, चढ़ व्याहन आये।।
राम राम राम चढ़ ब्याहन आये।
कोट नबैं परबत नवैं, सिर नबत नबायें।
जनक जू कौ माथौ जब नबे, राम व्याहव आयें।
राम राम राम चढ़ व्याहन आये।।

'ऊबनी' के बाद 'चढ़ाव चढ़ना' महत्वपूर्ण ही नहीं एक अनिवार्य रिवाज है। इसमें सर्वप्रथम कन्या को मण्डप के नीचे बिल्कुल साधारण रूप में लाया जाता है। वरपक्ष वाले इस समय कन्या को बिल्कुल कन्या के रूप में ही देखते हैं। फिर कन्या को 'मैर' या भण्डार वाले घर में लेजाकर ससुराल से आये 'वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर मंडप के नीचे लाया जाता है। इस अवसर पर हमारे यहाँ के लोकगीतों में कन्या को सीता के समान मान्यता दी जाती है। 'चड़ाये' के समय बुन्देलखण्ड की अनुभवी रमणियाँ सुरीली, भावुक तथा मनोहारी लय में जो लोकगीत गातीं हैं, उसकी कुछ पंक्तियाँ अवलोकनीय हैं –

सीता बेटी के चढ़त चड़ाये, तौ सीता बेटी राम कौ रची।
उनके ससुरे कौ सुघर सुनार, सो बेंदी उनकी अजब बनी।
उनके ससुरे कौ सुनार, करदौनी उनकी अजब बनी।
सीता बेटी के चढ़त चड़ाये..........
उनके ससुरे को सुधर सुनार, सो कटमा उनकौ अजब बनौ।
उनके ससुरे कौ सुधर सुनार, सौ बिछुआ उनकौ अजब बनों।
सीता बेटी के चढ़त चड़ाये.............
उनके ससुरे कौ सुधर सुनार, सो ककना उनके अजब बने।
उनके ससुरे कौ सुधर सुनार, सो चूरा उनके अजब बने।
सीता बेटी के चढ़त चड़ाये............
उनके ससुरे को सुधर सुनार, पैजनियां उनकी अजब बनी।
उनके ससुरे कौ सुधर सुनार, सो गहने उनके अजब बनें।
सीता बेटी के चढ़त चड़ाये...............

इसी प्रकार बुन्देलखण्ड में प्रचलित सभी आभूषणों के नाम जोड़कर चड़ाय पर्यन्त यह लोकगीत गाया जाता है। इसी अवसर पर ''सीता बेंठी चड़ाय के चौक, औसर नौनौ लगै।'' लोकगीत महिलाओं द्वारा तन्मयता के साथ गाया जाता है।

चड़ाये के बाद बारातियों को भोजन जिमानें के लिये पंगत कराई जाती है। पंगत या ज्यौंनार के अवसर पर गाये जाने वाले अनेक लोकगीत पूरे बुंदेलखण्ड में प्रचलित हैं। पंगत के अधिकांश लोकगीत स्वागतात्मक, परिचयात्मक, रसात्मक, हास्यात्मक, विवरणात्मक तथा व्यंजनात्मक होते हैं। जिस समय बारात पंगत के लिये पंडप के नीचे आती है, उसी समय बुन्देली बालायें बारातियों से मार्ग में आने वाली अड़चनों तथा 'गलियों की स्थिति एवं कठिनाइयों के बारे में सुरीली तानों में इस स्वागतात्मक लोकगीत के माध्यम से कैसे पूछतीं हैं। आप भी देखिए –

जौन गलियाँ तुम आये, अजुध्या वाले,
बे गलियाँ कहौ कैसीं, अहौरे लाला।।
वे गलियां कहौ कैसीं।
डांगा डंगीली उर पथरीली,
उरझत सुरझत आये, अहौरे लाला।।
वे गलियाँ कहौ कैसीं।।
माई की गंगा बहिन की जमना,
उखरत बूड़त आये, अहौरे लाला।
वे गलियां कहौ कैसी।

इस लोकगति के बाद पंगत की व्यंजन प्रधान अनेक गारियाँ गाई जातीं हैं। जिनमें बारातियों को पंगत में जिमाये जाने वाले खट्टे, मीठे एवं नमकीन व्यंजनों के नाम गिनाये जाते हैं। पक्की पंगत के एक प्रसिद्ध लोकगीत की कुछ पंक्तियां देखिए –

मोरे राम से करौ ना ररियाँ, जनकपुर की सखियाँ।
आतर परसी सो, पातर परसी।
झट परस दई दुनियां, जनकपुर की सखियाँ।
नौन परस दओ, मैचें परस दईं।
परस दई अमियाँ, जनकपुर की सखियाँ।
आलू परसे, रतालू परसे।
सो परस दई घुइयाँ, जनकपुर की सखियां।
पापर परसे सो पूरीं परसीं।
झट परस दई गुजियाँ, जनकपुर की सखियाँ।
लडुआ परसे, जलेबी परसी।
सो परस दई बुंदियां, जनकपुर की सखियाँ।

बुन्देलखण्ड में कहीं–कहीं पंगत के ही अवसर एक और लम्बा लोकगीत गारी की शैली में गाया जाता है जिसकी

कुछ पंक्तियां उदाहरण स्वरूप यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं —

मोरें आये राम मँहमान हो, जैंबन आये हरी''
सबको परस दये पनवारे, दौना दो–दो ठइया डारे
पानू के परसैया न्यारे,
नौंन मिरचा है पैलौ समान हो, जैवन आये हरी।।
इमली औंरा आम खटाई, चटनी कैंथा की परसाई,
पौदीना के संग सुहाई,
आली परसे करौंदा बखान लो, जैंबन आये हरी।
पापर पुरी पपरिया प्यारी, पूड़ी और कचौरी न्यारी,
जोड़ी गुजियन की संभारी,
परस दीन्हे हैं मालपुआ छान लौ, जैबन आये हरी।।
आलू बैंगन सैम तुरैयां, परबल भिण्डी गोभी घुइयाँ,
मूली ककरी गाजर छुइयां,
भुंजी लौकी कुम्हणा की छन जान दौ, जैवन आये हरी।।
लड्डुआ बूंदी इमरती आई, मोहन पपड़ी बालूसाई,
बरफी पेड़ा संग मलाई,
रसघुल्लन की है ऊँची शान हो, जैंवन आये हरी।।
परसे बिंजन और तमाम, जिनके जानत नइयाँ नाम,
शक्कर सन्नाटे से काम,
सिया सखियन ने गाये हैं गान हो, जैंवन आये हरी''

हमारे यहाँ जब तीन दिन के विवाह होते थे तब ''लाकौर'' का प्रचलन था। भाँवरन के दिन सुबह दस–ग्यारह बजे के लगभग कन्यापक्षीय महिलायें इस दस्तूर को सम्पन्न कराने के लिये ''जनवासे'' में जातीं थीं। लाकौर के इस रिवाज में दूल्हाराजा तथा उसके भाइयों को हास–परिहास में जो ताने मारे जाते थे, उनमें भगवान राम तथा उनके भाइयों पर यथार्थभरे सीधे मजाकिया व्यंग्य प्रहार किये जाते थे। लाकोर में गाये जाने वाले लोकगीत की निम्नलिखित पंक्तियां दृष्टव्य हैं —

चलौ सखी लाकौरी लैकें, जाँ प्रभु राम बिराजे वे।
हाँ हाँ बे, हूँ–हूँ बे।
दो भइया हैं स्याम सलौने, दो हैं गोरेनारे बे।
हाँ हाँ बे हूँ हूँ बे।।
मिथलापुर में राम बिराजे, छवि निरखत नरनारी बे।
हाँ हाँ बे हूँ हूँ बे।।
खीर खाय सुत पैदा करतीं अवधपुरी की नारी वे।
हाँ हाँ बे हूँ हूँ वे।।
नसा दई रेसम की अँगिया रनबन हो गई सारी वे।
हाँ हाँ बे हूँ हूँ बे।।

'लाकौर' का नैंग मात्र एक दस्तूर नहीं बल्कि भाँवरों के लिये कन्या पक्षीय महिलाओं की ओर से आमंत्रण होता था। विवाह में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्यक्रम भांवरों का होता है। इसमें गाये जाने वाले अभिकांश लोकगीत 'राम जानकी' विवाह से सम्बन्धित ही होते हैं। भांवरों में जो लोकगीत सर्वाधिक गाया जाता है, उसकी निम्नांकित पंक्तियां उल्लेखनीय है —

बने दूला छबि देखौ भगवान की, दुलहन बनी सिया जानकी।।
जैसई दूला अवध बिहारी, बैसई दुलहन जनक दुलारी,
जाऊँ तनमन से बलिहारी,
मंसा पूरन भई सबके अरमान की, दुलहन बनी सिया
आये राज जनक के द्वार संग में चारउ राजकुमार,
दरसन करते सब नर नार,
धूम छाई है डंका निसान की दुलहन बनी सिया०
सिरपै मौर मुकट कौ धारें, बागौ बरम्बार समारें
होरई फूलन की बौछारें,
शोभा बरनी ना जाय धनुस बान की, दुलहन बनी सिया०

इसी समय 'रामसिया की परतीं भाँवरें सुख उपजत हिये में भारी, मगन होत हैं नर नारी' नामक लोकगीत भी मनोमुग्धकारी स्वर में गाया जाता है। इसके अलावा और भी अनेक लोकगीत भांवरों में गाये जाते हैं। साथ ही और भी अनेक लोकाचार सम्पन्न कराये जाते हैं जिनमें कई प्रकार के लोकगीत गाने की परम्परा बुन्देलखण्ड में प्रचलित है।

'भावरें' के बाद बहुत ही महत्वपूर्ण कार्यक्रम 'कुँवरकलेवा' का होता है जो 'सारी–सरजों' को दूल्हा तथा उसके भाइयों से हँसी–मज़ाक, हास परिहास का भरपूर अवसर प्रदान करता है। कुँवर कलेवा के लिये जब दूल्हा का आगमन होता है तब जो लोकगीत गाया जाता है उसकी कुछ पंक्तियां देखिए —

गलन गलन में घोड़ा नचत हैं,
बाजत हैं ढोल नगारे, ललन जू करन कलेऊ पधारे।
माता सुनैना ने आरती उतारी,
रुच–रुच चरन पखारे, ललन जू करन कलेऊ पधारे।
मड़वा के नैचें आसन बिछा दये,
जिनपै कुँवर बिठारे, ललन जू करन कलेवा पधारे।

'कुँवर कलेवा' में सारी सरजों की ओर से अनेक लोकगीतों के साथ एक अन्य लोकगीत भी सभी जगह गाया जाता है जिसकी कुछ पंक्तियां यहां प्रस्तुत हैं —

लगत रहो नीकौ लाला, आये इतै जी दिन सें।
नार ताड़का तुमें देखकें, दौरी आई बन से।
लाला दौरी आई बनसें।
कछु करतूत बनी ना तुमसें, छेद दई बानन सें।
लगत रओ नीकौ लाला, आये इतै जी दिन सें।।
हमने सुनी अवध की नारी, दूर रहें पुरसन सें।
लाला दूर रहें पुरसन सें,
खीर खाय सुत पैदाँ करतीं, लाला बड़े जतन सें।
लगत रहौ नीकौ लाला, आये इतै जी दिन सें।।

बुरओ मानना जइयौ लाल, इन साँसी बातन सें।
लाला इन साँसी बातन सें,
साँसी झूंठी तुम सब जानों, का कै सकत बड़न सें।
लगत रओ नीकौ लाल, आये इतै जी दिन सें।।

कुँवर कलेवा में ही ''दसरथ कुँवर कन्हैया, तुम करौ कलेवा, दूल्हा पूछै मइया, हम किनके जाये'' लोकगीत भी गाया जाता है। 'कलेऊ' के बाद विदाई की तैयारी होने लगती है। सारी सरजें 'कुँवर कलेवा'' की अन्तिम घड़ियों में, एक लोकगीत के माध्यम से, बड़े विनम्र शब्दों मे, अगली मुलाकात के सम्बन्ध में सही–सही कहने के लिये पूछती हैं –

'साँसी कहौ मोरे लाला लखन जू।
अबके मिलन कब होंय मोरे लाल।।

'सारी सरजों' द्वारा अगली मुलाकात का जबाब बुन्देली लोकगीतों में अवतारवाद में अनुरूप लोकमानस में प्रचलित है। कब होगी यह अगली मिलन या मुलाकात एक लोकगीत की सिर्फ दो पंक्तियों में देखिये है –

बनरी चलियो हमारे साथ,
कलजुग में रैवी दोऊ जने''

'कुँवर कलेवा' के बाद कुलकुटुम्ब की कुछ औपचारिकताओं का निर्वहन करते हुए 'विदाई' का अवसर आ ही जाता है। दुल्हिन विदा होकर मायके से ससुराल आ जाती है। अनेक आँचलिक दस्तूरों के बाद 'कंकन छोरने' का कार्यक्रम सम्पन्न कराया जाता है। इस समय ''कंकन छूटे नहीं रघुनाथ से' सिया जू के आज हाथ से'' लोकगीत गाया जात है। इतना ही नहीं कहीं–कहीं 'कंकन छोरबे' की एक गारी भी गाई जाती है। जिसकी कुछ पंक्तियां उदाहरित हैं –

जौना होबै धनुष कौ टोरबो, कठिन कंकन गांठ छोरबौ।।
तुमने जनकपुरी पगधारे, शिव के धनुष टोरकें डारे,
जौ ना होबै मारीच मद मोरबो, कठिन कंकन गाँठ छोरबौ।
जितकी जनकपुरी की नारी, सारी सरजें लगें तुमारीं।
अबतौ सीखौ सिया सें कर जोरबो, कठिन कंकन गाँठ छोरबो।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बुन्देलखण्ड के अधिकांश वैवाहिक लोकगीतों में 'ओली–पक्यात' से लेकर 'कंकन छोरवे' तक प्रत्येक वर–वधु के विवाह में 'बने दूल्हा छवि देखौ भगवान की, दुलहन बनी सिया जानकी का स्वरूप सर्वत्र दिखाई देता है।' अतः स्पष्ट है बुन्देलखण्ड में भगवान राम तथा भगवती सीता के आदर्शों ने जनमानस को बहुत ही गहराइ से प्रभावित किया।

–३/४ प्रोफेसर्स कॉलोनी, छतरपुर (म.प्र.) □

दादरौ

— डॉ. लोकेन्द्र सिंह नागर

काये पै गरब हौ करतीं धना।
खस–खस डुला रई बीजना।

बैठीं टिकीं लगाकैं मसनद।
चार–चार खिजमित में सबतर।।
धान दान सौने कीं विरियाँ।
सिजियन चौसर रीझना।।

मायके के छैला सब छैरें।
अपने रस बस करवे फैरें।।
नेवन लगीं कटा करबे खों।
धार नई हेरन की बना।।

भूली कौल मदार पिया के।
लूटन लागीं चैन जिया के।।
पेटै समाई जात तुम की के।
उनकी सुद कर हौं की दिना।।

जब उतै के आँय लिवउआ।
संगै आहैं वामन नउआ।।
टारैं टरैं न वे दैरी से।
का कर लैहो तुम ती दिना।।

कुटुम कबीला का करतौ है।
मैडे नो पौचाउन जै है।।
सबरौइ डरो उतै रै जानें।
पालकी चढ़ जानैं जी दिना।।

नजर मिलौनौ जिदना होनै।
चिपक गरे सै पर है शैने।।
नागर बक नई होठन फूटै।
हू है बोनी हिसाबी दिना।।

— एस.ए.एफ. कार्यालय दतिया म.प्र. □

बुन्देली का संस्कृत से अन्तःसम्बन्ध

— डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी

उत्तर भारत की समस्त आधुनिक आर्य भाषाएँ उस बहुरंगी पुष्प माला के समान हैं, जो प्राकृतों और अपभ्रंशों के माध्यमों से आई हुई वैदिक भाषा (छन्दस) तथा परिनिष्ठित संस्कृत के बँटे हुए सबल अन्तःसूत्र में पिरोई हुई है। दक्षिण भारतीय भाषाएँ तमिल, तेलगू, कन्नड़ तथा मलयालम जो कि द्रविड़ मूल की मानी जाती हैं इस माला के दोलक के रूप में उसी सूत्र से गुथीं हुई हैं।

उत्तर भारत की आधुनिक आर्य भाषाएं तो संस्कृत की प्रपौत्रियाँ हैं ही। दक्षिण भारत में उत्तर भारतीय संस्कृति के प्रचार—प्रसार के साथ ही संस्कृत के संघात से दक्षिण भारतीय भाषाओं में भी संस्कृत शब्दावली प्रभूत मात्रा में सन्निविष्ट हो गयी है।

समस्त आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के शब्द समूह का प्रमुख स्रोत तो वैदिक भाषा ही है, जो कई सोपानों को पार करता हुआ इन्हें प्राप्त हुआ है।

प्रथम सोपान वैदिक भाषा का वह लौकिक रूप है जो जन साधारण के वाणी व्यवहार में चलता रहा होगा। इसमें वेदों की भाषा से इतनी ही भिन्नता रही होगी, जितनी मुख सौकर्य आदि कारणों से साहित्यिक भाषा और लोक भाषा में होती है।

द्वितीय सोपान है दूसरी प्राकृत, इसमें कुछ क्षेत्रीय रूप भी विकसित हो गये थे। परवर्ती दिनों में इसके कई रूपों ने साहित्यिक भाषा का रूप ग्रहण कर लिया था जैसे शौरसैनी, महाराष्ट्री, मागध आदि। यद्यपि इसमें बहुत कम भिन्नता होगी। इसलिए आचार्य वररुचि ने 'प्राकृत प्रकाश' में महाराष्ट्री प्राकृत का विशद् विवेचन करते हुए भी सबकी मूल प्रकृति लगभग एक ही निरूपित की है। इसी काल में बौद्धों ने एक सार्वदेशिक सम्पर्क भाषा के रूप में पाली भाषा का विकास किया, जो बौद्ध साहित्य की प्रमुख भाषा बनी। लगभग इसी समय जैन साहित्य का प्रणयन प्राकृत भाषा में होता रहा।

तृतीय सोपान है तीसरी प्राकृत या अपभ्रंश। इसके कुछ और अधिक क्षेत्रीय रूप विकसित हो गये थे। बाद के दिनों में उसके कुछ रूपों ने साहित्यिक भाषाओं का रूप ग्रहण कर लिया था, और उन्हें संस्कृत और प्राकृत की तुलना में अधिक मधुर माना जा रहा था, जो विद्यापति के कथन —

''देसिल बअना सब जन मिट्ठा
ते तैसन जंपओं अवहट्ठा।'' से स्पष्ट है।

इन्हीं अपभ्रंशों के शौरसेनी रूप से बुन्देली, का विकास हुआ है। अपभ्रंशों से वैदिक भाषा का घिसापिटा या विकसित शब्द भण्डार आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को प्राप्त हुआ है।

बुन्देली को भी शौरसेनी प्राकृत और अपभ्रंश के माध्यम से वैदिक भाषा की सहज विकसित शब्द सम्पदा प्राप्त हुई है।

एक ओर भाषा—विकास की यह स्वाभाविक प्रक्रिया चल रही थी। दूसरी ओर पाँचवी शताब्दी ई. पूर्व वैदिक भाषा को अधिक विकसित होते देख महर्षि पाणिनि ने उसके लौकिक रूप को परिमार्जित करके उसे विकास क्रम से हटा कर उसके स्वरूप को स्थायित्व प्रदान करने के लिए ''अष्टाध्यायी'' की रचना की, और उसे व्याकरण के सूत्रों में बाँध दिया। इसी परिमार्जन और परिनिष्ठीकरण के कारण वैदिक भाषा के इस पुष्ट व्याकरणबद्ध रूप का नाम संस्कार की हुई भाषा अर्थात संस्कृत पड़ा। समीचीनता और व्यावहारिकता की दृष्टि से महर्षि कात्यायन और पतंजलि ने इसका और अधिक परिष्कार किया। यह साहित्यिक भाषा के रूप में पण्डितों में सर्वमान्य होकर प्रतिष्ठित हो गयी। अतएव उच्चकोटि के साहित्य की रचना का माध्यम अपभ्रंश काल तक तथा अंशतः हिन्दी के उद्‌भव से लेकर आज तक संस्कृत का रचना के क्षेत्र में प्रयोग हो रहा है। इसके साथ ही विकसित प्राकृतों तथा अपभ्रंशों में भी सम्पर्क भाषा एवं परिनिष्ठित भाषा का कार्य संस्कृत के माध्यम से ही सम्पन्न हुआ।

इस प्रकार वैदिक भाषा की शब्दावली प्राकृतों और अपभ्रंशों को पार करती हुई बोलियों सहित आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हुई। इस अन्तः सूत्र के सभी बोलियों में विद्यमान रहते हुए भी ध्वनि, रूप, अर्थ और प्राणत्व के अपसरण सम्बन्धी कुछ बोलीगत विभिन्नताए उत्पन्न हो गयी हैं।

दूसरी ओर साहित्य, कर्मकाण्ड, धर्म दर्शन, आयुर्वेद आदि के अतिरिक्त हिन्दू जीवन को सुसंस्कृत करने के लिए किये जाने वाले षोडस संस्कारों की भाषा संस्कृत रही है। इस कारण जन साधारण से इसका सदैव परिचय एवं निकट सम्पर्क बना रहा। धार्मिक कृत्यों, कर्म काण्ड तथा संस्कारों से सामान्य जन में, कम से कम समाज के उच्च वर्गों में, तो समय—समय पर उसकी उच्च शब्दावली का परिनिष्ठित रूप सुनाई पड़ता ही रहा है। पूर्व काल में शास्त्रीय शिक्षा का माध्यम भी संस्कृत

होने के कारण उच्च वर्गों में न्यूनाधिक संस्कृत शब्दों का व्यवहार होता रहा है। ऐसे शब्दों में कम विकास हुआ क्योंकि समय–समय पर उनके परिनिष्ठित रूपों का परिचय मिलता है। इस शब्दावली में एक ओर विकास की सहज प्रक्रिया का बल लगता रहा तो दूसरी ओर परिनिष्ठत प्रयोगों की बारम्बरिता की बल्गा का बल उनके मूल रूपों को सुरक्षित रखने की दिशा में लगता रहा। इस कारण इस माध्यम से बोलियों में आगत संस्कृत शब्दावली की ध्वनियों में अधिक विकास नहीं हुआ है।

इस विकास प्रक्रिया में कठिन और दो तीन से अधिक ध्वनियों वाले शब्दों में अधिक अन्तर आ गया। पण्डितों और सुसंस्कृत लोगों ने उनकी रक्षा का चाहे कितना ही प्रयास किया हो, किन्तु लोक व्यवहार में आने पर वे सामान्य लोगों की मुख–सुख और ध्वनि प्रवृत्तियों से नहीं बच सके। मातृस्वसा की मौसी, पितृस्वसा बुआ, फूफी, फुआ, उपाध्याय का झा, मत्स्येन्द्रनाथ के मछन्दरनाथ हो करके ही रहे।

छोटे शब्द अधिकांश तत्सम ही बने रहे जैसे – जल, फल, एक, मन, पाप, धूप, जन, लीन, कुल, बोध, अन्त, आशा, कन्या, इच्छा, कला, कोप, काल, गदा, घट, जाप, चित्त, चिन्ता, चिता, तप, ताप तुष, देश, धन, दीप, धूप, नाश, पानी, पूजा, महा, मान, माता, पिता, माला, मूल, रस, लीला, वर्ष, वन, वास (गंध), वास (रहना), सेवा, स्वाहा, माया, अमर, कलंक, सूतक, तुषार, रचना, ममता, धनुष, विकट, अनाथ, अन्तस, चन्दन, तर्पण, कुण्डल, महान, हवन, कुसर (ल), कपट आदि।

उपर्युक्त उदाहरणों में सामान्य बुन्देली भाषियों में ध्वनि प्रवृत्ति के अनुसार तालव्य और मूर्धन्य श,ष के स्थान पर केवल दन्त 'स' तथा ब, व के लिये 'ब' का प्रयोग होता है। शिक्षित लोगों में इन प्रवृत्तियों के विपरीत तत्सम ध्वनियों का प्रयोग भी पाया जाता है।

धातुएँ पर्याप्त मात्रा में ऐसी हैं जो बुन्देली शब्दों में अपने तत्सम रूपों में उपलब्ध हैं। लक्षणा, व्यंजना आदि के आधार पर कहीं कहीं इनके अर्थ में विकास भी हो गया है और उनसे निर्मित शब्दों में किंचित ध्वनि परिवर्तन भी हो गया है। लेखक ने मोटेश्वर रामचन्द्र काले कृत हायर संस्कृत ग्रामर के धातु पाठ से ९५ (पंचाउनवे) ऐसी धातुओं का चयन किया है। उदाहरणार्थ – अम्, उच्छ, उठ्, ऊन, ऋच्छ, कच, कण्ड, कल, किल, कील, कुच, कूड, खट्ट, खण्ड, खन, खेल, गर्ज, गल, गुण, गुप, गुफ, गे, घण्ट, घु, चण्ड, चर्च (निन्दा करना), चर्च (सन्देह करना), हन्, खल्, गर्व, घुट, गु, गुंज, चल, चित, चिन्त, चिल, चुर, चेष्ट, छिद्, छो, जन्ज, जट्, जन, जप, जूट, हुल, तन (फैलाना), तन् (विश्वास करना), तप, तर्क, तर्ज, तिल, तुल, तर, तुल, सूर, तेज, तृप (तृप्त होना), तृप (प्रसन्न होना), रिस, मघ, मिश, दम, दय, दुःख, सव, रिच, रै, लग, लंग, लच्छ, लज, लप, लष, लल, लिख, लिप, लुभ, विध, बीज, वीर, सिच, हस, हिल आदि।

विस्तार भय से उपर्युक्त सभी धातुओं से निर्मित बुन्देली शब्दों के उदाहरण और उनके अर्थ विस्तार और विश्लेषण को प्रस्तुत करना यहां संभव नहीं है। कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं –

अम् – रोग उत्पन्न होना – बुन्देली प्रयोग – आमबौ – चोट लगने के कुछ घण्टे बाद उसमें सूजन तथा पीड़ा होती है तब यह कहा जाता है कि चोट आम गयी।

उठ् – नष्ट होना – बुन्देली प्रयोग – उठ गये = मर गये, वस्तुओं के अर्थ में समाप्त होना।

कील – बाँधना – बु.प्र. – कीलबौ – प्रेतों या सर्पों को मन्त्रबद्ध करना, लोहे आदि की मत्थादार सलाई।

मिश् – हल्ला करना, क्रोध करना, बु.प्र. मिसमिसाबौ = क्रोध से दाँत पीसना।

हन् – मारना, अड़ाना – बुन्देली में इन्हीं दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है।

आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल ने अपने एक लेख ''सिंहासन से उतारे राजकुमार'' में (बुन्देली एक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन) कात्सकृत्सन, क्षीर स्वामी तथा चन्नवीर के धातु पाठों के आध ार पर पच्चीस तीस धातुओं का उल्लेख किया है जो आज भी बुन्देली में यथारूप प्रचलित है। इन्हें वे संस्कृत की मूल धातुएँ मानते हैं। जैसे – खट्ट, सण्डा, पक्क, घर, जुग, खोट, भाव (वस्तु का मौद्रिक मूल्य), तुर्त, मच्छ, गार (ईंटें, खपड़े, वर्तन आदि के लिए तैयार की गयी मिट्टी की खाँची), गार–गारबो (क्रि.) (पानी डालकर चन्दन आदि घिसना), जनी, चील, खल्ल, चप्, बी, चुटपुट, धीड़, गू, हूर्छा, तुज आदि।

ऐसा प्रतीत होता है कि पाणिनि के काल से ही मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं ने पृथक रूप ग्रहण करना प्रारम्भ कर दिया था। उपर्युक्त धातुएँ प्रथम प्राकृत के उत्तर काल की होंगी। भाषाओं को विकसित होते–होते और अपनी पृथक पहचान बनाने में सौ–दो सौ वर्ष तो लग ही जाते हैं। दूसरी बात यह भी ध्यान देने की है कि कात्सकृत्स्न व्याकरण ऐन्द्र सम्प्रदाय का व्याकरण है। ऐन्द्र वैयाकरण लोक भाषा के वैयाकरण थे। संस्कारयुक्त भाषा अर्थात् संस्कृत के वैयाकरण माहेश्वर सम्प्रदाय के अन्तर्गत आते हैं।

कुछ भी हो परिनिष्ठित भाषा संस्कृत की न सही लौकिक आर्य भाषा की ही सही, बुन्देली में आज भी अपनी ध्वनि और अर्थ के साथ संस्कृत धातुएं विद्यमान हैं। बुन्देली के अतिरिक्त मध्यप्रदेश की अन्य बोलियों में भी संस्कृत और

लौकिक संस्कृत का यह अवदान अवश्य ही सुरक्षित है, जिसका पृथक से अध्ययन अपेक्षित है।

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा की द्विधा विभक्त विरासत की आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं तक की यात्रा को पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने "स्वाभाविक गति से बहने वाली नदी और उससे निकाली गयी हरयाली युक्त सम किनारों वाली नहर जिसमें अनेक छोटी बड़ी रेतीली पथरीली नदियों का पानी मोड़कर उसको आच्छोद नहर बनाया गया।" के रूपक से जहां संस्कृत के संस्कार की बात कही है, वहीं इस पर आर्येत्तर भाषाओं के प्रवाह को भी रेखांकित किया है। (पुरानी हिन्दी)

इस आ.भा.आ. भाषाओं के द्विविध और समानान्तर विकास के कारण ही एक ही शब्द ने दो या दो से अधिक विकसित रूप धारण कर लिए हैं। इनकी अर्थ प्रकृति चाहे भले ही एक हो वे दो अर्थों में रूढ़ हो गये हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं –

कर्म से – करम वर्ण व्यवस्था अथवा धर्मानुसार निश्चित आचरण, पूर्व जन्म के आचरण के अनुसार निर्धारित भाग्य लेख।

करम – सामान्य कार्य।

धर्म से – धरम–नीति विहित आचरण।

धाम – कर्तव्य (काम–धाम शब्द युग्म में सुरक्षित) धार्मिक स्थान के लिए भी प्रयुक्त।

गर्भ से – गरब या गरभ – गोपन भावना के कारण इसके लिए पेट से होना, आधान से होना, हमल होना आदि भी चल पड़े हैं।

गाबो, गाभो –केला, पपीता या खजूर के पेड़ के ऊपरी भाग के अन्दर का कोमल भाग।

गबआरौ, गभवारौ – जन्म के बाद गर्भस्थ स्थिति की कोमलता धारण करने वाला (विशेषण)

इसी प्रकार –

पक्व से पकौ और पक्कौ (दृढ़, मजबूत)

कंकण से कंगन और ककना

दण्ड से डाँड़ (जुर्माना), डण्डा, डड़ा (चक्की की मुठिया)

डाँडो (होली की पताका लगाने का बाँस, नाक की पुँगरिया की डण्डी, डण्डे (चुगली), संभवत: दण्डनीय कार्य होने के कारण प्रचलित)

पिण्ड से पिण्ड – अन्तिम संस्कार के समय पिण्डदान में प्रयुक्त जबा के आटे के गोले

पेड़ पेड़ की शाखाओं वाला ऊपरी भाग। गच्छ–पिण्ड शब्द युग्म में इसका अर्थ यही था बाद में गच्छ के व्यवहार से निकल जाने पर इसका अर्थ तना हो गया है।

पींड – शहद की मक्खियों के छत्ते का वह भाग जहां शहद एकत्र रहती है।

पीड़नों – गुथे हुए आटे का बड़ा पिण्ड।

पिण्डा – लपेटी हुई रस्सी का गोला।

चूर्ण से चूरन – पिसी हुई औषधि

चून –आटा या कोई भी चूर्णित वस्तु

सभी हिन्दी बोलियों में तत्सम शब्दावली को पुन: ग्रहण करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। इसका कारण शिक्षा का प्रसार, दूसरी बोली वालों से बढ़ता हुआ सम्पर्क और गँवार न समझे जाने का प्रयास भी हो सकता है। एक अन्य कारण अपभ्रंशों की घिसावटी प्रकृति से ऊब भी संभव है।

इस प्रवृत्ति के कारण हिन्दी की सभी बोलियों में पारस्परिक निकटता स्थापित हो रही है तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं (जिनमें यह प्रवृत्ति क्रियाशील है) से पारस्परिक सुबोधता बढ़ रही है।

इस प्रवृत्ति से एक हानि भी है। अभिव्यक्ति की सूक्ष्म सामर्थ्य जो बोलियों के शब्दों में होती है वह उन शब्दों के प्रयोग को गँवारू समझे जाने के कारण छोड़े जाने से बोलियों की अभिव्यक्ति सामर्थ्य घट रही है। कुछ पाने, कुछ खोने का क्रम तो लगा ही रहता है।

अन्तत: यही बात महत्वपूर्ण है कि बोलियों को आवद्ध रखने वाला कोई भी सूत्र उनके बोलने वालों को भी किसी न किसी रूप में जोड़े रखता है। हमारी हिन्दी बोलियाँ संसार की उस महान और उच्च कोटि के साहित्य से सम्पन्न भाषा के शब्द समूह और धातुओं के रिक्थ को अपने अन्तर में सँजोये हुए हैं जिसके विषय में दो शताब्दी पूर्व सर विलियम जोन्स ने कहा था –

"The Sanskrit language, whatever be its antiquity, is of a wonderful structure; more perfect than the Greek, more copious than the latin and more exquisitely refined than either....."

(संस्कृत भाषा, चाहे इसकी प्राचीनता कुछ भी हो, इसका ढाँचा अद्‌भुत है, यह यूनानी से अधिक पूर्ण, लैटिन से अधिक समृद्ध तथा इन दोनों से श्रेष्ठ और परिष्कृत है।)

विलियम जोन्स के इस कथन से यूरोप के विद्वान इतने प्रभावित हुए कि उनमें संस्कृत के अध्ययन की एक होड़ सी लग गयी थी।

इन सभी तथ्यों से इस बात की पुष्टि होती है कि हमारी हिन्दी की सभी बोलियाँ देश के एक विशाल भाषाई तंत्र का महत्वपूर्ण अंग है और शिक्षा के प्रसार के संस्कृत का यह अन्त: सम्बन्ध आदिवासी बालियों तक विस्तृत हो रहा है।

– पुरानी नजाई, टीकमगढ़ (म.प्र.)

बुन्देलखण्डी कवि ठाकुर (ठाकुरदास कायस्थ) और उनका काव्य

— डॉ. गंगा प्रसाद बरसैंया

ठाकुर हिन्दी की रीतिमुक्त–धारा के सुपरिचित और प्रतिष्ठित कवि हैं परन्तु एक दिन हिन्दी के विद्यार्थियों और जिज्ञासुओं के बीच जब चर्चा हुई तब ज्ञात हुआ कि बुन्देलखण्ड की जिस प्रतिभा–प्रसविनी धरा पर उनका जन्म हुआ वहीं की नई पीढ़ी उनसे लगभग अपरिचित है। एक कारण यह भी है कि रीतिकाव्य में तीन–तीन ठाकुरों की चर्चा की गई है। ठाकुर शिवसिंह सेंगर, मिश्र बंधु, रामचन्द्र शुक्ल सहित अनेक विद्वानों ने साहित्येतिहास ग्रंथों में एक से अधिक ठाकुर नामधारी कवियों की चर्चा है। सेंगर ने दो कवियों का उल्लेख किया है[१] तो मिश्र बंधुओं ने चार नाम गिनाये हैं।[२] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तीन ठाकुरों की बात कही है[३] और सरोज सर्वेक्षण में शोधोपरांत दो ही ठाकुर रह गये।[४] श्री चन्द्रशेखर मिश्र व विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भी दो ही ठाकुरों की पुष्टि की है।[५] अन्य विद्वानों डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. नगेन्द्र तथा डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, डॉ. भावसार आदि ने भी इन्हीं पूर्ववर्ती विद्वानों का अनुसरण किया है। इन विद्वानों के विस्तृत विवेचन में न जाकर निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि हिन्दी रीति काव्य में ठाकुर नाम के दो कवि हुए — एक असनी के ठाकुर जो जाति के भट्ट ब्राम्हण थे और दूसरे ठाकुर बुन्देलखण्ड (ओरछा) के जो जाति के कायस्थ थे। असनी के ठाकुर के पिता का नाम ऋषिनाथ था। बुन्देलखण्ड ठाकुर (कायस्थ) का पूरा नाम ठाकुरदास था। पिता का नाम गुलाबराय और पितामह का नाम खंगराय था। दोनों कवि रीतिकालीन हैं और दोनों ने श्रृंगार प्रधान कवित्त–सवैया छंदों की मुख्यतः रचना की है। मेरा अभिप्रेत यहाँ बुन्देलखण्डी ठाकुर कवि का संक्षिप्त परिचय देना है अतः मेरी बात वहीं तक सीमित है। इनके जन्म और मृत्यु के संबंध में विद्वानों ने अलग–अलग मत व्यक्त किये हैं जिनमें अधिक अन्तर नहीं है। इन कवियों ने न तो अपना जीवन–परिचय दिया और न ही इनके कोई ग्रन्थ उपलब्ध हैं। केवल मिश्र बंधुओं ने अपने विनोद में तीन ग्रंथों का उल्लेख किया है। उन्होंने ठाकुर प्रसाद लाला (ओरछावासी) के नाम से प्रश्न चंद्रिका, माधव विलास एवं भाषेन्दु रश्मि तथा ठाकुर प्रसाद (पूरन) कायस्थ बिजावर के नाम से भागवत का पद्यानुवाद (दसम स्कंध) जानकी स्वयंवर व भक्त कवितावली ग्रंथों का उल्लेख किया है। उनके बारे में न विवरण है न अन्यत्र कहीं चर्चा अन्यथा 'दीन' जी उल्लेख अवश्य करते।[६अ] अतः अनुमान से ही काम लिया गया है जो सत्य के निकट है। असनी वाले कवि ठाकुर रीतिबद्ध कवि के नाम से और बुन्देलखण्डी कवि ठाकुर रीतिमुक्त कवि के नाम से जाने और अभिहित किये जाते हैं।

बुन्देलखण्डी कवि ठाकुर के बारे में पहलीबार प्रामाणिक विवरण लाला भगवानदीन 'दीन' ने लगभग ७५ वर्ष पूर्व (संवत १९८३) में प्रस्तुत किया था। उन्होंने इन दोनों ठाकुर नामधारी कवियों के छंदों का अध्ययन कर बुन्देलखंडी कवि ठाकुर के छंदों की पहचान कर 'ठाकुर ठसक' शीर्षक से प्रकाशित कराया था।[६ब] इन्होंने उन छंदों को विषयवार शीर्षक देकर वर्गीकृत किया था। इसके पूर्व 'ठाकुर शतक' शीर्षक से भी एक संग्रह श्री काशी प्रसाद जायसवाल ने निकाला था पर उसमें दोनों कवियों के छंद मिले हुए हैं।[७] वैसे नागरी प्रचारिणी सभा काशी के याज्ञिक संग्रह में भी इनके छंदों की पांडुलिपियाँ सुरक्षित हैं। परन्तु तमाम शोध और श्रम के बाद बुन्देलखण्डी कवि ठाकुर का जो प्रामाणिक जीवन–परिचय और छंद संकलन लाला भगवान दीन 'दीन' ने प्रस्तुत किया वैसा किसी अन्य ने प्रस्तुत नहीं किया बल्कि परवर्ती सभी विद्वानों ने तो लाला जी द्वारा प्रस्तुत तथ्यों को ही ज्यों का त्यों अपने ग्रंथों में दिया है। विडम्बना यह है कि कई लोगों ने अपने ग्रंथों में लाला जी का स्रोत के रूप में उल्लेख तक नहीं किया। कुछ लोगों ने तो 'ठाकुर शतक' 'ठाकुर ठसक' को देखे बिना ही अन्य परवर्ती लेखकों के आधार पर ही अपनी बात कही है। यहाँ उनका उल्लेख निरर्थक ही होगा। उल्लेखनीय है कि लाला भगवानदीन 'दीन' अनेक वर्षों तक सपत्नीक छतरपुर में रहे हैं। वे तत्कालीन महाराजा हाई स्कूल छतरपुर में अध्यापक थे। उन्हें बुन्देली और बुन्देलखण्ड का अच्छा ज्ञान था। आचार्य केशवदास के ग्रंथों पर पहली टीका उन्होंने लिखी थी।

कायस्थ कवि माला नामक ग्रंथ तैयार करते समय लाला जी की दृष्टि में ठाकुर नामधारी कवियों के छंद सामने आये और तब उन्होंने पूर्वोल्लिखित तीनों ठाकुर के बारे में जाना। तभी उन्होंने बुन्देलखण्डी कवि ठाकुर (ठाकुरदास कायस्थ) की जीवनी लिखने व छंद संकलित करने का निश्चय किया। वे लिखते हैं — ''ठाकुर कवि के मध्ये शिवसिंह, मिस्टर ग्रियर्सन और बाबू हरिश्चन्द्र जी ने संदेह तो किया परन्तु निश्चय करने का कष्ट किसी ने नहीं उठाया।... ठाकुर उपनामधारी कई एक कवि हुए हैं जिनमें से तीन ठाकुर बहुत प्रख्यात हुए हैं। एक प्राचीन ठाकुर कवि असनी जिला फतेहपुर निवासी जो संवत् १७०० के लगभग हुए। दूसरे नरहरिवंशी असनी निवासी ठाकुर कवि जिनके पिता का नाम ऋषिनाथ था... तीसरे

बुन्देलखण्डान्तर्गत जैतपुर निवासी ठाकुर कवि हुए...। अब यह प्रश्न पैदा हो सकता है कि कौन कवित्त या सवैया किस ठाकुर का है।''[९] उन्होंने लिखा कि असनी वाले ठाकुर कवियों की भाषा अन्तर्वेदीय तथा छंद नायिका भेद अलंकार, नखशिख, षटऋतु, आदि से संबंधित है जबकि बुन्देलखण्डी कवि ठाकुर (जिसे उन्होंने जैतपुरी ठाकुर कहा है) की कविता में बहुधा कोई न कोई लोकोक्ति अवश्य पाई जाती है और उनकी भाषा में ऐसे–ऐसे बुन्देलखण्डी शब्द और मुहावरे पाये जाते हैं कि अन्य देशीय कवि बिना कठिनता के उनका प्रयोग नहीं कर सकते।[१०]

लाला जी के अनुसार बुन्देलखण्डी ठाकुर का पूरा नाम ठाकुरदास कायस्थ था। इनके पिता गुलाबराय और पितामह लाला खंगराय के पूर्वज काकोरी के निवासी थे। खंगराय अकबर के समय आगरे की फौज में साठ हजार फौज के अफसर थे। गुलाबराय का विवाह ओरछा के रावराजा की पुत्री से हुआ था जो महाराज ओरछा के मुसाहिब थे। बारात में १२ हजार शाही सवार थे। बाद में गुलाबराय जी अपनी ससुराल ओरछा में रहने लगे। वहीं ओरछा में संवत् १८२३ में ठाकुर का जन्म हुआ। ठाकुर काव्य प्रतिभा सम्पन्न थे। वह युवाकाल में जैतपुर नरेश महाराज केशरीसिंह के दरबार में आ गये। केशरी सिंह का उन पर बड़ा स्नेह था। उन्होंने करैया परगना का एक गाँव भी ठाकुर को देकर दरबारी कवि की मान्यता दी थी। उसी समय बिजावर में भी केशरी सिंह नाम के राजा था। ठाकुर बिजावर राजदरबार में भी जाते थे। बिजावर में रोरा नामक गाँव ठाकुर कवि को देकर सम्मानित किया गया था। बाद में कवि ठाकुर महाराज पारीक्षित के दरबार में भी रहे और बांदा के हिम्मत बहादुर गोसाई से भी संबंधित थे। ठाकुर कवि पद्माकर के समकालिक थे। लाला जी ने इनकी निधन तिथि संवत् १८८० मानी है।[११]

दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार जैतपुर में गजसिंह के बाद महाराज केशरी सिंह को संवत् १८६९ में अंग्रेजों से सनद मिली। केशरीसिंह के बाद महाराज पारीक्षत गद्दी पर बैठे। उनके मारे जाने पर संवत् १८९९ खेतसिंह जैतपुर के जागीरदार बने। इधर बिजावर में संवत १८५९ में केशरीसिंह को अलीबहादुर से सनद मिली। उनकी मृत्यु संवत् १८६७ में हुई और रतन सिंह अधिकारी बने। उन्हें संवत् १८६८ में विधिवत गद्दी मिली और संवत् १८९० उनकी मृत्यु हुई।[१२] यही समय कवि ठाकुर का रचनाकाल कहा जा सकता है। आश्चर्य की बात है कि दीवान प्रतिपाल सिंह ने अपने इतिहास ग्रंथ में बुन्देलखण्ड के ३८५ कवियों की सूची दी है। पर उसमें ठाकुर का नाम नहीं है। जबकि उनके पुत्र दरयाव सिंह (क्रमांक ३२२) व पौत्र शंकर प्रसाद (क्र. ३२७) का उल्लेख है।[१३] बुन्देलवैभव भाग–३ में गौरीशंकर द्विवेदी ने इनका जन्म संवत् १८२३ ही माना है औ उनके पुत्र दरयाव सिंह व पौत्र शंकर प्रसाद का भी उल्लेख किया है। वे भी निधन सम्वत् १८८० स्वीकार करते हैं।[१४] रामचन्द्र शुक्ल[१५], सरोज सर्वेक्षण[१६], विद्वन्मोदतरंगणी[१७], डॉ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र[१८], डॉ. भगीरथ मिश्र[१९], डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी[२०], डॉ. रामप्रताप भावसार[२१], आदि अनेक विद्वानों ने भी लालाजी द्वारा दी गयी तिथि जन्मकाल संवत १८२३ व निधनकाल संवत् १८८० ही स्वीकार किया है। लाला जी ने ठाकुर कवि के वंशधर बिजावर के लाला हरसेवक लाल जी से जो ठाकुर कवि का वंश वृक्ष प्राप्त किया था वह इस प्रकार है।

खंगराय

रोशनलाल	गुलाबराय	
नंदलाल	ठाकुरदास	मानिकलाल
जयबिहारी	(ठाकुर)	(इनकी पुत्री के
युगलशरण	दरियाबसिंह	प्रपौत्र बक्सी
हरसेवक लाल	(चातुर)	गुलाब सिंह लाला
(जिन्होंने लाला	शंकर प्रसाद	जी के समय
जी को वंशवृक्ष	(शंकर)	बिजावर में
दिया)	(इनकी विधवा पत्नी लाला जी के समय विद्यमान थीं)	विद्यमान थे)

ठाकुर कवि के पुत्र का नाम दरयाव सिंह था जो 'चातुर' नाम से कविता करते थे और पौत्र शंकर प्रसाद भी कवि थे दोनों बिजावर के निवासी थे। उनके परिवार से लाला जी ने सम्पर्क किया था। लाला जी ने ठाकुर कवि की प्रतिभा, हाजिर जवाबी व साहस के कई प्रसंगों का उल्लेख किया है। यहा उनके विस्तार का अवसर नहीं है। कुछ दिनों पूर्व मैंने जैतपुर और बिजावर जाकर जब जानकारी लेनी चाही तो किसी ने भी ठाकुर कवि के बारे में कुछ भी नहीं बताया। सभी ने अपनी अनभिज्ञता व्यक्त की। अलबत्ता जैतपुर के एक बुजुर्ग पंडित जी ने डॉ. ओमप्रकाश अरजरिया के निवास पर ठाकुर के दो छंद अपनी लड़खड़ाती वाणी से सुनाये थे। एक छन्द श्रृंगारपरक है और दूसरा पारीक्षत की प्रशंसा में है। लेकिन दूसरा छंद खण्डित है। उन्हें उस समय उस पंक्ति का अंश स्मरण नहीं हो पाया था। साथ ही उसमें ठाकुर नाम की छाप भी नहीं है। हो सकता है कि खंडित अंश में छूट गया हो। प्रथम छन्द में ठाकुर की छाप है। उन्होंने दूसरे छंद को भी ठाकुर का ही बताया था कुछ दिनों बाद ही पंडित जी दिवंगत हो गये। नाम छाप के

अभाव में वह छंद संदिग्ध हो गया। पहला छंद देखिये —

धन वे तात अरु मात जनौ जिहि देह धरी सो धरी धन है।
धन है कवि ठाकुर धाम वही जंह डोल लली सो गली धन है।
धन है जो तुम्हें दरसै हरसै परसै कर से सो महा धन है।
धन मैं धन तू धन तेरो हितू धना जाकी हो सो धन ही धन है।

दूसरा छन्द इस प्रकार है —

कारी सपील देख पीठ पानीपत देश...... दिल्ली दरात है।
कालपी कनार कोंच कनवज लौ हुरदंग,
सबलगढ़ साहन सतारी लों सतात है।
आगरो नजीमगढ़ मेरठ मस्तूलाबाद
तेरो धाक सुन कलकत्ता भय खात है।
राजन कौ राज भूप पारीछत
महाराज हिन्दुवान राज तेरे हाथ ही दिखात है।

ये छन्द किसी संकलन में नहीं है। इससे लगता है कि यदि बुन्देलखण्ड क्षेत्र में इस प्रकार की खोज की जाये तो पुराने लोगों से कई छन्द मिल सकते हैं। कवि 'ठाकुर' बड़े लोकप्रिय थे। दरबारों में ही नहीं, अपितु आम जनता में और सम्पूर्ण साहित्य जगत् में। प्राचीन कवियों के सैकड़ों संग्रह पुराने संग्रहालयों, ग्रंथालयों में देखे जा सकते हैं। शतक और हजारा की परम्परा भी इसी प्रकार की है। ठाकुर के छन्द प्रायः सभी संग्रहों में देखे जा सकते हैं। यह उनकी श्रेष्ठता और लोकप्रियता का प्रमाण है। उदाहरणार्थ — विद्वन्मोदतरंगणी में एक[२१], षटऋतु हजारा में सात[२२], नखशिख हजारा में दो[२३], पावस कवित्त रत्नाकर में चार[२४], हफीजुल्लाखां के हजारा में ग्यारह[२५], सुन्दरी तिलक में छत्तीस[२६], बुन्देलवैभव में चार[२७], रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास में सात[२८], दिग्विजय भूषण में पन्द्रह[२९], छंद संग्रहीत हैं। ऐसा कोई प्राचीन संग्रह नहीं है जिसमें ठाकुर न हों। परन्तु ठाकुर द्वारा रचित किसी ग्रन्थ की जानकारी हिन्दी जगत् को नहीं है। राजघरानों में भी उनकी कोई पाण्डुलिपि देखने में नहीं आयी। स्फुट छन्द ही मिलते हैं। ठाकुर (बुन्देलखण्डी) के छन्दों का संकलन स्वतंत्र रूप से 'ठाकुर ठसक' के नाम से लाला भगवानदीन 'दीन' ने ही सर्वप्रथम किया था। उसके बाद स्वर्गीय चन्द्रशेखर मिश्र ने ठाकुर शीर्षक से संग्रह सम्पादित किया था। जिसे बाद में पूरा कर डॉ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने प्रकाशित कराया। 'ठाकुर ठसक' का प्रकाशन सम्वत १९८३ (सन १९२८) में साहित्य सेवक कार्यालय काशी से हुआ था। उस समय लाला जी हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी के हिन्दी विभाग में प्रोफेसर थे। इसमें ठाकुर के कुल १९२ छंद संग्रहीत हैं।[३०] जबकि पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के संग्रह में रीतिमुक्त ठाकुर (बुन्देलखण्डी) के २१९ छंद संकलित हैं।[३१] इसी में रीतिबद्ध ठाकुर (असनी) के कुल ५१ छंद दिये गये हैं। इसके पूर्व ''ठाकुर शतक'' शीर्षक से भी संग्रह निकला था। जाहिर है कि कोई भी संकलन निर्विवाद नहीं है। 'दीन' जी का संकलन सर्वाधिक प्रामाणिक है। क्योंकि उन्हें बुन्देलखण्ड की भाषा और प्रकृति का अच्छा ज्ञान था। उन्होंने इसी भाषा रूप को ही आधार बनाया है। नये शोधार्थियों का दायित्व है कि वे इस दिशा में और भी प्रयास करें।

ठाकुर रीतिमुक्त धारा के कुशल कवि हैं। उनका नाम घनानन्द, आलम, बोधा, आदि के साथ लिया जाता है। ठाकुर के अधिकांश छन्द श्रृंगारिक हैं किन्तु भक्ति, नीति, रूपवर्णन, संयोग—वियोग, प्रेम—अनुराग, ऋतुपर्व चित्रण, प्रकृति वर्णन, लोकजीवन, तत्कालीन सामाजिक स्थिति आदि से सम्बन्धित अनेक छन्दों की उन्होंने रचना की। ठाकुर सौन्दर्य के पारखी और कुशल चितेरे थे। अनीति के समर्थक नहीं थे पर श्रृंगार के सरोवर में अवगाहन उनका स्वभाव था। सौन्दर्य कहीं का हो, उनकी तूलिका से बाहर नहीं है। वे सहज और भावपूर्ण श्रेष्ठ कविता के पक्षधर थे। पेट के लिए अथवा राजाओं की स्तुति कोरी प्रशंसा मात्र के लिए काव्य रचना को अनुचित और निकृष्ट मानते थे। वे कविता के बारे में अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए लिखते हैं —

मोतिन कैसी मनोहर माल गुहै तुक अच्छर जोरि बनावै।
प्रेम को पंथ कथा हरिनाम को बात अनूठी बनाइ सुनावै।
ठाकुर सो कवि भावत मोहिं जो राजसभा में बड़प्पन पावै।
पंडित लोकप्रवीनन को जोइ चित्त हरै सो कवित्त कहावै।

यदि इस छंद में प्रयुक्त शब्दों पर ध्यान दिया जाय तो कविता के बारे में कवि ठाकुर की धारणा को भली प्रकार समझा जा सकता है। वे नीरस तुक्कड़ों को कवि मानने को तैयार नहीं थे। प्रतिभा, कला हीन कवियों को फटकारते हुए उन्होंने किया —

सीख लीनो मीन मृग खंजन कमल नैन,
सीख लीनों यश औ प्रताप को कहानो है।
सीख लीनों कल्पवृक्ष कामधेनु चिन्तामणि,
सीख लीनो मेर औ कुबेर गिर आनो है।
ठाकुर कहत याकी बड़ी है कठिन बात,
वाको नहीं भूलि कहूँ बांधियत बानो है।
डेल सो चलाय आय मेलत सभा के बीच,
लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानो है।

काव्य—रचना खिलवाड़ नहीं, गहरी साधना है। यह कठिन कार्य है। ठाकुर प्रतिभाशाली कवि ही नहीं, नीति और न्याय के पक्षधर, साहसी, स्वाभिमानी—खानदानी व्यक्ति थे। अपना परिचय देते हुए वे लिखते हैं —

सेवक सिपाही हम उन रजपूतन के,
दान युद्ध जुरिबे में नेकु जे न मुरके।
नीति देन वारे हैं मही के महिपालन को,
कवि उनहीं के जे सनेही सांचे उर के।
ठाकुर कहत हम बैरी बेवकूफन के,
जालिम दामाद हैं अदानियाँ ससुर के।
चोजन के चोज रस मौजन के पातसाहि
ठाकुर कहावत पै चाकर चतुर के।

उपर्युक्त पंक्तियां कवि के व्यक्तित्व और सोच का परिचय भली प्रकार देती हैं। ठाकुर कवि के काव्य–वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालने के लिए कुछ छंदों को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत करना आवश्यक है। एक बात ध्यान देने की है कि ठाकुर ने भी राधा–कृष्ण को प्रायः माध्यम बनाया है और इस उक्ति की पुष्टि की है कि 'आगे के कवि बूझहैं तो कविताई न तु राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है।' ठाकुर के द्वारा प्रयुक्त बिम्ब, प्रतीक, हाव–भाव व्यंजनायें बनी अनूठी बन पड़ी है। मादक सौंदर्य का एक दृश्य देखिये –

लहरें उठें अंग उमंगन की मद यौवन की बहराती फिरै।
बढरी अंखियान चितै तिरछी चित लोगन के लहराती फिरै।
कहि ठाकुर है तन ओप खरी छिनहू न थिरै चहराती घिरै।
सिर ओढे उठौनी कसे छतिया फरिया फहरे फहरानी फिरै।

ठाकुर ने अन्य अनेक रीतिकालीन कवियों की भांति अमर्यादित अशिष्ट और फूहड़ चित्रण नहीं किया। बुन्देलखण्ड की ऐसी शब्दावली का प्रायः प्रयोग किया है जिससे अर्थ विशिष्ट बनकर व्यक्त होता है। प्रीति की अनुभूति की बात कवि ने कितने कौशल से कही है –

यह प्रेमकथा कहिबे की नहीं कहबोई करौ कोउ मानत है।
पुनि ऊपरि धीर धरायो चहै तन रोग नहीं पहचानत है।
कहि ठाकुर जाहि लगी कसकैं नहिं सो कस कैं उर आनत है।
बिन आपने पाय बिबाई भये कोउ पीर पराई न जानत है।

संयोग–वियोग की सभी दशाओं तथा नखशिख एवं प्रकृति सौंदर्य का अनूठा चित्रण रीतिकालीन कवियों की प्रमुख विशेषता रही है। ठाकुर ने भी सौंदर्य और प्रेम–श्रृंगार के सभी पक्षों का सुन्दर चित्रण किया है। उल्लेखनीय बात यह है कि कवि कहीं तटस्थ नहीं लगता। वह स्वयं सम्मिलित होता है। वियोगदशा का एक छन्द देखिये –

बरुनीन में नैन झुकैं उझकैं मनो खंजन प्रेम के जाले परे।
दिन औध के कैसे गनौं सजनी, अंगुरीन के पोरन छाले परे।
कवि ठाकुर ऐसी कहा कहिये, निज प्रीत करे के कसाले परे।
जिन लालन चाह करी इतनी तिन्हैं देखिबे के अब लाले परे।

नखशिख चित्रण में कई बार कवि–प्रतिभा का परीक्षण सा हो जाता है। जब तक चित्रण में नई व्यंजना न हो तब तक उसका गहरा प्रभाव नहीं पड़ता। ठाकुर इस दृष्टि से कहीं कमजोर नहीं है। उनके नेत्र–वर्णन का एक छंद इस प्रकार है–

डीलदार सीलदार लाज को अहार जिन्हैं
तीछन मृगा से देख देख रहियत हैं।
मीन और खंजन से अलसे अनोखे देखे
कंजदलह ते ये विशेष चहियत हैं।
ललित ललौंहैं, कसकौहें चसकौहैं जन
ठाकुर कहत सुख पाइ रहियत हैं।
औरन के नैन कहा नैनन के लेखे आवैं
ऐसे नैन होइ तब नैन कहियत हैं।

ऋतु और पर्वों के वर्णन भी बड़े जीवंत हैं। पावस, बसन्त, ग्रीष्म, होली, अखती, दशहरा आदि के अनेक दृश्य उनके छंदों में अंकित है। पावस का एक छंद इस प्रकार है –

दौरि दौरि दमकि दमकि दुरि दामिनि यों,
दुन्द देत दसहूँ दिसान दरसतु है।
धूमि धूमि घहरि घहरि घन घहरात,
घेरि घेरि घोर घनो सोर सरसतु है।
ठाकुर कहत पिक पीकि पीकि पी को रटैं,
प्यारो परदेश पापी प्रान तरसतु है।
झूमि झूमि झुकि झुकि झुमकि झमकि आली
रिमझिम झिमिक असाढ बरसतु है।

इसी प्रकार होली के वर्णन में जब ठाकुर की ऐसी पंक्तिया सामने आती हैं – 'दौरी लै गुलाल ब्रजबाल चारो ओरन तैं, होरी लाल होरी लाल होरीहै' तो पढकर होली खेलने वालों का झुंड साकार हो जाता है। जहाँ एक ओर सौंदर्य–श्रृंगार है, वहीं भक्ति–नीति के साथ सामाजिक जीवन से संबंधित छंद भी है। ठाकुर अपनी बात बेलिहाज कहने के लिए जाने जाते हैं। युगीन मानसिकता का दिग्दर्शन कराने वाला उनका एक छंद प्रस्तुत है –

दंभी दगा बाजन की बाढ़ी है अधिक थाप,
ज्ञान ध्यान वोरन की बात बे प्रमाना है।
पूछत न कोऊ कबि कोबिद प्रवीनन कों,
नमक हरामी को हजारन खजाना है।
ठाकुर कहत कलिकाल को प्रभाव देखो,
झूठन की बातन पै जगत दिवाना है।
बड़े बड़े सूबा तेऊ जात पाप डूबा देखि,
जीव अति डूबा या अजूबा करखाना है।

उन्होंने बुन्देली या बुन्देलखण्ड में प्रचलित शब्दावली और कहावतों मुहावरों का पर्याप्त प्रयोग किया। कई बार ऐसे

लगता है कि उनके हर छंद की अंतिम पंक्ति किसी कहावत से ही समाप्त होती है। बुन्देलखण्ड में इन्हें 'कहनावत' कहते हैं। ठाकुर ने भी कहनावत शब्द का प्रयोग किया है कुछ उदाहरण देखिये –

१. आंधरे साइब के घर में दमरी को हिसाब हजारा को जोलो।
२. खाई कछु बगराई कछु हरि गोपी गुलाम की गाजर कीनी।
३. ऊधो जु दोष तुम्हैं न उन्हें हम लीनी है आपने हाथ ही बीछी।
४. जैसे को तैसे ही जाय मिलै उतै फूटी मसीत को आंधरौ मुल्ला।
५. नीच परसंगी जात पाँत के न अंगी ऐसे ठाकुर दोरंगी सदातें होत आये हैं।
६. चाह करिबे को तौ उमाह सबही को, पै निबाह करिबे की बेर सबकी फटत है।
७. ऐसे ही सोच के सोच परे अब ऊमर फोरि को जीव उड़ावै।

इसी प्रकार अबै सैर में पोनी कती नहियाँ, ऐसी लोंद घालिहौं कि चौवर उपटहै, होय लला मोहि लील को टीको, ना विष खाऊँ न प्रान तजौं गुर खाईं न काहू सों कान छिदाऊँ, माल जमा पर दाम लगावने हैं, प्रीति भई मोहन की गुर भरी हंसिया, मूसर चोट की भीत कहा बजिकै जब मूड़ दियो ओखरी में पटवा की बहू बटवा सी नचावै, खेत की कहें ते खरियान की समझतीं, बारी खेत खाय तो उपाय कहा कीजिये, मेरु को हलाइ कै उखारैं तो उखरि जाय – जैसे सैकड़ों प्रयोग कवि ठाकुर के छन्दों में स्थान–स्थान पर मिलते हैं। ठाकुर ने 'कहनावत' शब्द का प्रयोग इस प्रकार किया है –

ठाकुर या कहनावत और की साँचिये आजहुँ आन परी है।
मारै चिरी कूँ चिरी कहा वीर! पै मीर सिकार की कारीगरी है।

इस प्रकार भाव और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से कवि ठाकुर रीतिकाल की रीति मुक्त धारा के समर्थ कवि हैं जिन्होंने अपनी प्रतिभा से हिन्दी साहित्य जगत में सम्मानित होकर बुन्देलखण्ड को गौरवान्वित किया है। दरबारों में रहकर भी उन्होंने आश्रयदाताओं की थोथी प्रशंसा नहीं की और न श्रृंगार चित्रण में मर्यादाओं का उल्लंघन किया। उन्हें बुन्देलखंड की भाषा व शब्दावली तथा लोकजीवन का गहरा ज्ञान था। अपनी धरती के ऐसे अमूल्य प्रतिभा–रत्नों से अपरिचित रहना बड़ा दुखद है। इस लेख का उद्देश्य अपने उस कवि से परिचित कराना ही है जिसे हमारी नई पीढ़ी भूलती जा रही है।

– १२–एम.आई.जी.,
चौबे कॉलोनी, छतरपुर (म.प्र.) □

संदर्भ संकेत :

१. शिवसिंह सरोज – ठाकुर शिवसिंह सेंगर पृ.७०८
२. मिश्रबंधु विनोद – मिश्र बंधु पृ.१२२ क्र. २५७२,२८६३, २९३०,२९३१
३. हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामचन्द्र शुक्ल पृ.३४१
४. सरोज सर्वेक्षण – डॉ. किशोरी लाल गुप्त ७०८–९
५. ठाकुर –चन्द्रशेखर मिश्र – विश्वनाथ प्रसाद मिश्र पृ.२
६अ. मिश्र बंधु विनोद भाग ३–४, मिश्र बंधु पृ. १२२
६ब. ठाकुर ठसक – लाला भगवानदीन 'दीन' संवत १९८३
७. ठाकुर शतक–काशीप्रसाद जायसवाल – संवत १९६१
८. याज्ञिक संग्रह – नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
९–१०–११. ठाकुर ठसक – लाला भगवानदीन 'दीन' पृ. १
१२. बुन्देलखण्ड का इतिहास – दीवान प्रतिपाल सिंह पृ. ३८७–८८
१३. वही पृ. २५६–३१०
१४. बुन्देल वैभव, भाग–३ गौरीशंकर द्विवेदी पृ. ३४५–४७
१५. हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामचन्द्र शुक्ल– पृ.३५०–५१
१६. सरोज सर्वेक्षण – डॉ. किशोरी लाल गुप्त – पृ.७०८–९
१७. विद्वन्मोदतरंगिणी –सम्पादक–डॉ. किशोरीलाल (नैनी) पृ. ४८
१८. ठाकुर – विश्वनाथ प्रसाद मिश्र – पृ. २–५
१९. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास (रीतिकाल) – डॉ. भगीरथ मिश्र पृ. ५२
२०. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी पृ. १६८
२१. विद्वन्मोदतरंगिणी – संग्रहकर्ता – सुब्बाराव श्रीधर–संवत १८८८
२२. षटऋतु हजारा – परमानन्द सुहाने – संवत् १९५१
२३. नखशिख हजारा – परमानन्द सुहाने – संवत् १९५०
२४. पावस कवित्त रत्नाकर–परमानन्द सुहाने–संवत १९५०
२५. हफीजुल्ला खां का हज़ारा–हफीजुल्ला खाँ–सं. १९६२
२६. सुन्दरी तिलक – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सं. १९२६–३१
२७. बुन्देल वैभव – भाग – ३, गौरीशंकर द्विवेदी,सं. २०१०
२८. हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामचन्द्र शुक्ल
२९. दिग्विजय भूषण – संकलन – गोकल प्रसाद – सम्पादक डॉ. भगवती प्रसाद सिंह – सं. २०१६
३०. ठाकुर ठसक – लाला भगवानदीन
३१. ठाकुर – चन्द्रशेखर मिश्र व विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

□



बुन्देली लोक संस्कृति का बदलता स्वरूप

— डॉ. बहादुर सिंह परमार

आज वैश्वीकरण के कारण विश्व की अनेक संस्कृतियाँ आपसी संपर्क में आ रही हैं, जिससे वे एक दूसरे को प्रभावित कर रही हैं। इतना ही नहीं वैश्वीकरण–भूमण्डलीकरण तथा वैज्ञानिक आविष्कारों से लोक संस्कृतियों के स्वरूपों में भी परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है। काल के साथ संस्कृतियों के स्वरूपों में परिवर्तन आना 'प्रगति' का सूचक है। 'संस्कृति को किसी समय विशेष की सीमा में नहीं बांधा जा सकता, यह देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार निरन्तर विकसित होती है, अत: यह सामाजिक प्रभावों से निरन्तर विकासमान निर्देशिका है जो प्रकृतिजन्य है। इसे हम मानव की सम्पूर्ण जीवन शक्तियों और प्रगतिशील साधनाओं का सामूहिक प्रतिफलन कह सकते हैं। लौकिक, पारलौकिक, आर्थिक धार्मिक, राजनीतिक या सामाजिक अभ्युदय से प्रभावित होकर मन, बुद्धि आदि जो प्रभाव ग्रहण करते हैं, वही संस्कार किसी संस्कृति का निर्माण करते हैं।' (रामनारायण अग्रवाल, मध्यदेशीय लोक संस्कृति, पृ. ११) आज संस्कार लौकिक, आर्थिक तथा राजनीतिक दबावों के कारण बदल रहे हैं। धार्मिक मूल्य और सामाजिक मान्यताओं में परिवर्तन आने के कारण लोक मानस बदल रहा है। लोक मानस बदलने से लोक आचार में परिवर्तन होकर लोक संस्कृति का स्वरूप परिवर्तित हो रहा है। 'प्रत्येक युग के बदले परिवेश में बदले हुए मूल्यों के कारण लोक संस्कृति का परिवर्तन सहज स्वाभाविक है।' (डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त, मध्यदेशीय लोक संस्कृति, पृ. ४१) लेकिन यह स्वाभाविक दिखने वाला परिवर्तन बड़ा महत्वपूर्ण होता है।

आज बुन्देली लोक संस्कृति के स्वरूप में आ रहे परिवर्तन को देखने के पूर्व हम लोक संस्कृति के तत्वों पर दृष्टि डालते हैं तो पाते हैं कि लोक संस्कृति के तहत सम्बंधित भू–भाग पर प्रचलित आचार–विचार, रीति–रिवाज, मूल्य–आदर्श, पर्व–त्यौहार, साहित्य–संस्कृति आदि समाहित रहते हैं। बुन्देलखण्ड अंचल में आज भौतिकता के दबाव तथा शिक्षा के प्रसार के कारण लोक आचरण बदल रहा है। आज संध्या के समय पूर्व की तरह गाँवों की चौपालों पर सावन–भांदों की महीने में अल्हैत आल्हा गाते नहीं मिलेंगे। मुहल्लों–टोलों में रामचरितमानस का सामूहिक पाठ होता नहीं मिलेगा। कातिक–अगहन में कड़ाके की सर्दी मिटाने के लिए कोंड़ा[1] (आग जलाने का स्थल) पर तापते हुए वृद्ध लोक–कथायें सुनाते नहीं मिलेंगे। अब बारह महीनों संध्या का पूरा समय अधिकांश गांवों में टेलीविजन के चित्रहारों, फिल्मों, सीरियलों और रेडियो के फूहड़ गानों ने ले किया है। अब रामलीलाओं और रास के स्थान पर टी.व्ही. पर आ रहे रामायण, जय हनुमान, ऊँ नम: शिवाय, महाभारत आदि सीरियल देखे जा रहे हैं। पहले की तरह प्रात: चार बजे से जगकर चक्की पीसती महिलायें जो लोकगीत गाती थीं वह नहीं मिलेंगी। अब न घर में चक्कियाँ और जांते[2] बचे हैं और बचे भी हैं तो पीसने वाली नहीं हैं। तीज–त्यौहारों में वह 'सामूहिकता' और आपसी सद्भाव, का भाव विलुप्त होता जा रहा है। बुन्देलखण्ड की दीवारी और फाग पूरे देश में प्रसिद्ध हैं परन्तु आज मौनिया की टोलियों और फगवारों के वह उत्साह देखने को नहीं मिलता है। पहले प्रत्येक गांव में एक ही मौनिया की टोली होती थी जो सामूहिक रूप से भ्रमण कर दिवारी गाती थी परन्तु आज बढ़ते ईर्ष्या–द्वेष के कारण प्रत्येक गांव में राजनैतिक–सामाजिक गुटबंदियों के कारण तीन–तीन या चार–चार टोलियाँ निर्मित हो गई हैं। यह देखा गया है कि अब दिवारी टोली द्वारा मौनिया नाच मात्र व्यावसायिक रूप से नाचा जाता है। इसके पीछे हमने जब व्यक्तिगत बातचीत कलाकारों से की तो पता चला कि अधिकांश कलाकार पिछड़ी और दलित वर्ग से होते हैं जो अब नाचने से इसलिए कतराते हैं क्यों कि वह कहते हैं कि हम ही क्यों नाचें, उच्च जातियों के लोग क्यों नहीं? पहले सवर्ण और अवर्ण की राजनीति नहीं थी। अब कलाकारों के मन में जातिगत द्वेष–भावना कायम हो गयी है जिससे आपसी सद्भाव और उत्साह कम हो रहा है। लगभग यही हाल फाग का है। अब सामूहिक फाग के कार्यक्रम बहुत कम हो गये हैं। फाग पर अब झगड़े–फसाद इसलिए हो रहे हैं क्योंकि लोकचिन्तन में वही अगड़े–पिछड़े का विचार घुस गया है। उच्च और दलित जातियों की विकसित मानसिकता से आज अहम् टकरा रहे हैं। सवर्ण अपनी ऐंठ छोड़ने को तैयार नहीं है परन्तु दलित स्वाभिमानी रक्षा हेतु कला छोड़ने को तत्पर है। रक्षाबंधन पर्व के स्वरूप में बदलाव भी देखने को मिल रहा है। पहले मुहल्ले में आई ससुराल से एक लड़की पूरे गांव के भाइयों को राखी बांधती थी। राखी बांधते समय खड़पुरी[3] खिलाती थी, अब खड़पुरी का स्थान मिठाई ने ले लिया है। दशहरा, जवारे आदि पर्वों की सामूहिकता भी दलों और गुटों में विखंडित हो रही है। नवरात्रि में अब गांव–गांव में देवी के भजनों के गायन के स्थान पर देवी प्रतिमा स्थापित करने का चलन हो गया है। देवी प्रतिमा के पास ध्वनि–विस्तारक यंत्रों के द्वारा भजन आदि ऊँची आवाज में बजाने की होड़ सी लग गई है। ध्वनि

विस्तारक यंत्रों द्वारा परंपरागत भजनों की कैसिटें नहीं बजाई जातीं बल्कि बाजारीकरण के कारण लोकगीत की फिल्मी धुनों पर आधारित पैरोडियां बजाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त अन्य पर्व मनाये तो बराबर जा रहे हैं परन्तु उनके सम्बन्ध में मान्यतायें लगातार शिथिल पड़ रही हैं। इसके पीछे लगातार बदल रहा लोक चिन्तन ही है। आज ''लोकदर्शन संक्रमण की स्थिति में है। लोक की आस्थायें और मान्यतायें बदल रही हैं। बौद्धिकता और भौतिकता के प्रति अतिरिक्त लगाव के कारण ब्रह्म–जीव, जीव–जगत, जीव–माया आदि के पूर्व स्थिर सम्बन्ध काफी ढीले पड़े हैं।....'' जागतिक सुख सुविधाओं के अभाव के परिणामस्वरूप लोक में उनके प्रति चिन्ता बढ़ी है, जिससे लोक मन वैराग्य की भावना को बिल्कुल भूल गया है। मनुष्य व्यक्तिधर्मी होने के कारण लोकधर्मी चिन्तन को त्याग रहा है और वैयक्तिक स्तर पर उभरते लोक दर्शन में एक खतरनाक स्थिति यह है कि चिन्तन की गंभीरता ही नहीं है।'' (डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त, बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति का इतिहास, पृ. ८५–८६)। वैज्ञानिक और नवीन आविष्कारों के युग में पुराने उत्सव आज भी लोक में मनाये जाते हैं किन्तु थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ। हमारा लोक भाव और हमारा भाव लोक उन्हें आज भी परम्परा और संस्कृति के रूप में उन्हें जीवित रखे हुए हैं। इन उत्सवों के प्रति मानव व्यवहार आत्मीयपूर्ण न होकर अब धीरे–धीरे औपचारिक या प्रदर्शनपूर्ण होता जा रहा है।

लोक मान्यतायें भी परिवर्तित हो रही हैं। संस्कार संबंधी मान्यताओं में शैथिल्यीकरण देखने को मिल रहा है। पुंसवन सम्बन्धी संस्कार विलुप्त ही हैं और आगन्ना[४] बहुत कम घरों में मनाया जाता है। जन्मोत्सव के संस्कार जरूर यथावत हैं। चरुआ से लेकर दस्टौन तक यथावत हैं परन्तु लोकगीतों की गमक पहले जैसी नहीं रह गई है। मुंडन संस्कार लगभग वैसे ही चल रहे हैं लेकिन विवाह संस्कार सर्वाधिक बदला हुआ नजर आता है। समय के दबाव के चलते अब नाई और पंडित वर नहीं ढूंढ़ते बल्कि कन्या का पिता क्षेत्र में स्वयं वर खोज करता है। दहेज दानव ने लोक में पैठ कर ली है जिससे अर्थ का विवाह में महत्व बढ़ गया है। तिलक, फलदान और लगुन आदि संस्कार अब एक ही दिन में होने लगे हैं। तीन दिन तक बारात ठहरने के स्थान पर अब मात्र आठ–दस घण्टे ही लड़की वाले को बारात ठहराना मुश्किल पड़ जाता है। देखने में तो आ रहा है कि टीका कराया और आधी बारात सुबह हर हाल में वापस। अब बैलगाड़ियों का स्थान ट्रैक्टरों और बसों ने ले लिया है। वर की वेशभूषा में भी परिवर्तन आया है। अब अधिकांशत: पेंट–बुशर्ट ही वर की वेशभूषा बन गई है। विवाह अवसर पर दलदल घोड़ी, नौटंगी सहित अन्य नाच गाने देखने को नहीं मिलते। इस अवसर के विभिन्न संस्कारों का अब संक्षिप्तीकरण कर दिया गया है जैसे राछ बंधाया और कुंवर कलेऊ नाम के मात्र के रह गये हैं। विवाह के समय लड़की की विदा पहले मात्र उच्च जातियों में होती थी परन्तु अब कुछ अपवादों को छोड़कर विवाह को ही कन्या की विदा होने लगी है। इसका कारण बाल विवाह में कमी आना है। लोक देवताओं सम्बन्धी मान्यताओं में भी कमी आ रही है। खेरापति[५] और कारशदेव[६] पहले बराबर आदर के पात्र आज नहीं रह गये हैं। प्रकृति संबंधी मान्यतायें बदल रही हैं। पहले पीपल और वट वृक्ष को पवित्र माना जाता था परन्तु अब इन्हें काटा और जलाया जाने लगा है। अब लोग चेचक निकलने पर पूजा रचा न करके दबा दारू कराने लगे हैं।

बच्चे भावी पीढ़ी होते हैं जो मानव संस्कृति और सभ्यता के रक्षक बनते हैं। बच्चों के लोक में भी परिवर्तन के आयाम स्पष्ट दिखाई देने लगे हैं। अब गाँवों में कबड्डी के स्थान पर क्रिकेट ने पैर जमा लिये हैं और आइस–पाइस, काना–दुआ, लुका–छिपी, और कंचा–गोली का खेल विलुप्तता की कगार पर है। अब गांवों में बच्चे माचिस और बीड़ी बन्डलों की छापों को इकट्ठा करके खेलते हुए आपको मिल जायेंगे। गांव की लड़कियां मामुलिया भूल रहीं हैं किन्तु नौरता अभी बदस्तूर जारी है। लोक कलाओं के सृजन में महत्वपूर्ण स्थान रखने वाली रंगोली आदि कम हो रही है। अब झूला और चपेटा गायब होने की स्थिति में आ गये हैं।

आर्थिक स्थिति बदलने से रहन–सहन में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। अब 'महुआ–मेवा', बेर–कलेवा, गुलगुच बड़ी मिठाई' वाली उक्ति अप्रासंगिक हो गयी है। महुआ पर शराब माफियाओं का कब्जा हो गया है। महुआ और चरवा[७] वन माफिया मवा बनने के पहले ही ऊँचे दामों में खरीद लेते हैं। बेर भी अब कोकाकोला तथा अन्य पेय कंपनियों द्वारा खरीदे जाने लगे हैं, बची गुलगुच[८] तो वह पक ही नहीं पाती और गुलेंदे पहले कच्चे ही गुली के लालच में तोड़ लिये जाते हैं। अब पुराने खाद्यान्न समा[९], लठारा[१०], कोदों[११], कुटकी[१२], के दर्शन दुर्लभ हो गये हैं। समा के चावल और कोदों की कुदई अब रोगियों को भी मिलना दूभर हो गये हैं। इनके स्थान पर सोयाबीन, मूंग, उड़द तथा मूंगफली आ गई है। देशी कटिया गेहूं भी अब कम पैदा हो रहा है। अब गांवों में आर्थिक प्रगति से सोना और उन्नत गेहूं की पैदावार बढ़ गई है परिणामस्वरूप गरीब घरों में भी कोदों और समा की रोटी के स्थान पर गेहूं खाया जाने लगा है। परम्परागत व्यंजन डुबरी, कौरी, कुदई, मुरका, गुलगुला तथा चीला विलुप्त हाने की कगार पर हैं। लोक वेशभूषा भी बदल रही है। स्त्रियां पहले दो कांछ की धोती पहनती थीं और लड़कियां अंगोछा तथा पोलका। अब

स्त्रियां साधारण धोती तथा लड़कियां पेटीकोट, बिलाउज या फ्राक, सल्वार सूट पहनने लगीं हैं। पुरुष वर्ग में पुरानी पीढ़ी ही मात्र धोती कमीज पहन रही हैं। वहां से भी पंचा, बन्डी गायब है। अब अन्डरवियर, बनियान, पैंट, पजामा, बुशर्ट तथा कुर्ता इनके स्थान पर आ गये हैं। स्त्रियों के श्रृंगार प्रसाधन और आभूषणों में भी बदलाव आ रहा है। अब कांच की बिन्दी के स्थान पर बैलवेट की बिन्दी, लाली की टिकिया के स्थान पर लिपिस्टिक आ गई है। पैजना, लच्छा, बाजूबन्द और पांवपोस जैसे आभूषण देखने को नहीं मिल रहे हैं। खंगौरिया के स्थान पर हर स्त्री अब मंगलसूत्र धारण किये दिखाई देती है। अब गंबई जवान साईकिल से चलकर कंधे पर रेडियो टांगे खेत पर हल हांकने जाता है। मैंने स्वयं कंधे पर रेडियो टांगे और हल हांकते किसानों को देखा है। रेडियो के गीत सुनकर अंब बैल पूर्व की भांति बिचकते नहीं हैं बल्कि वह भी मस्त होकर सुनते प्रतीत होते हैं।

इन तमाम परिवर्तनों के पीछे आज की बदलती दुनिया है। आज बुन्देलखण्ड का लोक मन संचार माध्यमों और शिक्षा के कारण परिविर्तित हो रहा है। आज भौतिकता के बढ़ते प्रभाव से व्यक्ति वैज्ञानिक सोच का पक्षधर होकर कर्मकाण्ड और रूढ़ियों का विरोधी हो रहा है इसी के साथ व्यक्तिवादी बढ़ते चिन्तन के कारण लोक संस्कृति के सामूहिक मानव कल्याण पक्ष पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। लोक संस्कृतियां संक्रमण काल से गुजर रहीं हैं, आवश्यकता आज अच्छी परम्पराओं के संरक्षण की है। कहीं भौतिकता और पश्चिमी संस्कृतियों के बढ़ते प्रभाव में हमारे लोक विरासत की अच्छाईयां मद्धिम न पड़ जायें। ,

— ४/२ प्रोफसर्स कॉलोनी,
छतरपुर (म.प्र.) ४७१००१ □

संदर्भ :

१. चौपाल पर आग जलाने का गड्ढा, इसके चारों ओर बैठकर लोग सामूहिक रूप से तापते हैं।
२. दलिया दलने का देशी यंत्र, चक्की के भिन्न।
३. खांड के बने बड़े आकार के बताशे।
४. गर्भवती के आठवें माह में आयोजित होने वाला संस्कार
५. गांव की सीमा पर स्थित लोक देवता
६. पशुपालक जातियों के देवता
७. चिरौंजी का फल
८. महुआ का पका फल
९ से १२ तक अनाजों के नाम

□

बुन्देली अहाने

— श्रीमती दीप्ती मिश्रा

हमाये ई बुन्देलखण्ड में जोन बात—चीत आपस में होत, ऊ में अहाने (लोकोक्तियां) भी खूबई बोली जांती, और जै लोकोक्तियाँ आज लौ गांव—खेड़न में सुनबे मिलती। कछु जने भलाई शहरन में जाकें रान लगे लेकिन अहाने तो ऊसई बोलत जैसई गांवन में बोलत्ते। ई सैं हमें तो ऐसो लगत कै बुन्देलखण्ड के जिलन एवं कसबन में सोई इन अहानन कौ बोलबे में उपयोग होत। जै अहाने जो कोउ नई जानत और ऊहां बुन्देली बोलबे कौ शौक है। ऊके लाने कछु अहाने हम इतै दै रये जीके अर्थ हमने अपनी समझ सें लिखे हैं —

१. *मम्मा के आंगू ममयारे की न हाँकौ* — सर्व ज्ञाता को ज्ञान देना

२. *गनेश जू हाँ चौक पूरो, मैंदरे जू आन बिराजे* — सम्मान के लिये आना किसी को था लेकिन आकर आसन पर दूसरे का बैठ जाना।

३. *मूड़ में खट्टे, गुदाल हां आगें—आगें* — अयोग्य होने पर भी योग्य बनना

४. *नन्हें भूत बड़न हाँ डरवाबें* — बच्चों द्वारा बड़ों जैसा व्यवहार कर धमकाना

५. *हाथ भर लड़ैया, नौ गज पूंछ* — आवश्यकता से बहुत अधिक पहनावे का उपयोग।

६. *देशी गदईया, मराठी चाल* — जानकारी न होने पर भी प्रदर्शन या समाज में रहकर दूसरे समाज में रहने जैसा व्यवहार करना।

७. *पड़—पड़ के पड़वा भये, पड़े बाप के हाड़, पंडित जी ने गिनती पूछी, सोरा दूनी आठ* — ठीक से शिक्षा ग्रहण न करना या शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात मूर्ख रहना

८. *करम लिखन्ते सरसठे, मेंटन हारे कौन* — किस्मत में लिखी बात को कोई नहीं मिटा सकता

९. *बिलैया की दौर मंगरे लौ* — सीमित क्षेत्र में पहुंच

१०. *आलसी निगईया, कुसगन की बाट हेरें* — अकर्मन्य व्यक्ति को काम न करने का बहाना चाहिये।

११. *दुबधा में दोउ गये, माया मिली न राम* — भ्रम की स्थिति में निर्णय शीघ्र न लेने पर नुकसान होना।

१२. *घर के घर न समायें, लठंगर पावने कहायें* — घर में इज्जत न होने पर भी बाहर इज्जत पाने की लालसा

१३. *तीन लुचन में तेरा कौ नेंवतौ* — कम भोजन में अधिक का आमंत्रण।

— अम्बेडकर भवन के पीछे, किशोर सागर, छतरपुर म.प्र. □

मधुकर शाह बुन्देला नारहट

— जयेन्द्र सिंह परमार

मधुकर शाह बुन्देला नारहट के जागीरदार थे। अपनी जागीर की व्यवस्था अपने हिसाब से करते थे। वह किसी के अनुशासन मे कभी नहीं रहे। स्वतंत्र रूप से कार्य कर अपनी प्रजा के सुख दुख में शामिल रहकर अपना जीवन चला रहे थे।

मराठों को पराजित कर अंग्रेजों ने मराठी भूभाग लेकर अपनी शक्ति के आधार पर जिस भूमि को महाबली छत्रशाल ने बाजीराव पेशवा को अपना दत्तक पुत्र मानकर बुन्देलखण्ड में तीसरा भाग दिया था, उस भूमि पर अब अंग्रेज शासक हो गये। इन विदेशी शासकों की नीति हमारी नीति के विपरीत रही। हमारी नीति महाराज छत्रसाल के शब्दों में इस प्रकार है—

राजी सब प्रजा रहे ताजी रहे सिपाह,
छत्रसाल के राज को वार न वाको जाय।

विदेशी आये और इस नीति के विरुद्ध नीति अपनाकर शासन चलाया। उनकी नीति थी कि प्रजा को इतना तंग करो—मारो कि वे दबे रहें सिर न उठा सके। मुगलों के बाद संन १८०२ में मराठों और अंग्रेजों की बेसिन की सन्धि के आधार पर अंग्रेज आ गये। अंग्रेजों ने अपनी सेना को विभिन्न क्षेत्रों में भेजा। इस सेनाओं के सिपाहियों ने अपने अटाले में खाना खाया और अपने घोड़ों को किसानों की फसल में चराया। जिस किसान ने रोका उसकी मार पीट कर दी। किसान को मजबूर होकर अपने जागीरदार जमीदार को अपनी फसल के नुकसान की बात कहना पड़ी। इसी से अब अंग्रेजों के विरुद्ध कई जागीरदारों को विद्रोह करना पड़ा।

इन्हीं विद्रोहियों में नारहट के मधुकर शाह, चन्दापुर के जवाहर सिंह, गुना के गनेशजू, हीरापुर के हृदयशाह लोधी, ढिल्लनशाह गोंड़ राजा, जैतपुर के राजा पारीक्षत के साथ चिरगांव के राजा बखत सिंह अपनी अपनी जगह अंग्रेजों की इस मारो, लूटो नीति के विरोधी हो गये। जो अंग्रेजी सेना जाये या मालूम पड़े तो जो अपनी जागीर में आने पर लड़ने लगे। अंग्रेजों ने राठ, पनवाड़ी के पास कैंथा में अपनी छावनी बनाई। जब छावनी की सेना कैंथा में रहने लगी तब जैतपुर के राज्य में चारो तरफ अत्याचार होने लगे। अंग्रेजों ने भूमि लगान सबसे लेने का निर्णय लिया। मधुकर शाह नारहट अभी तक किसी के शासन में नहीं रहे थे और न किसी को उन्होंने लगान दिया था इसलिए उन्होंनें अंग्रेजों को भी लगान नहीं दिया। (बुन्देलखण्ड का बृहद इतिहास—काशीप्रसाद त्रिपाठी पृ. २७०) इस पर अंग्रेजों ने उनकी कुर्की कर लगान वसूल करने को एक सैनिक टुकड़ी भेजी। अब क्षेत्र में इसका प्रचार किया गया कि जो भी सम्पत्ति नारहट में मधुकर शाह की है उसे जो खरीदाना चाहे वह खरीदे। जब यह प्रचार मधुकर शाह ने नारहट में सुना तो इस अप्रत्याशित दृश्य को देखकर उन प्रचार करने वालों को घेरकर उन्होंने पिटायी कर दी। इसमें तीन आदमी मर गये। कुछ घायल हो गये और बाकी भाग गए। अंग्रेजों ने अपने कैंथा में एक उत्सव मनाया इसे उत्सव में मधुकर शाह के दरबार में नाचने वाली नर्तकी को जबरन पकड़ कर ले गये। यह खबर जब मधुकर शाह को मिली तब उन्हें गुस्सा आ गया यह खबर चारों तरफ पहुंची जिसने भी यह खबर सुनी वह घबड़ा उठे। सिपाहियों ने दूसरी जगह भी औरतों को पकड़ा और उनके साथ दुर्व्यवहार किया। अपनी जगह अंग्रेजी सेना से सभी लड़—झगड़ रहे थे। सन् १८३५ में बनारस के राजा ने बुढ़वामंगल का उत्सव किया और सभी राजाओं को आमंत्रित किया। सभी राजा जो विरोधी थे अपनी—अपनी बीती सबको सुनायी। सबने एकमत होकर बुन्देलखण्ड से अंग्रेजों को भगाने का निर्णय किया। जैतपुर महाराज परीक्षत को अपना सेनापति बनाया। सन् १८४० में कैथा की छावनी को लूट लिया गया। (रामसेवक रिछारिया बरुवासागर, झांसी पृ. ४५) सूपा में भी इन विद्रोही बुन्देलों ने एक सम्मेलन कर अपना लक्ष्य अंग्रेजों से लड़ने का बनाया। जासूसों द्वारा यह खबरें अंग्रेज अधिकारी लार्ड एडिनबरा, कर्नल वेलेजली, मेजर स्लीमैन, को मिल चुकी थी। सूपा सम्मेलन में मधुकर शाह नारहट शामिल हुए और एकमत होकर अंग्रेजों को बुन्देलखण्ड से बाहर करने के मत में आ गये। मेजर स्लीमैन और बैलेजली ने एक बड़ी फौज बिलगवां नामक ग्राम के पास एकत्र की। महाराज पारीक्षत को भी बिलगुवां गांव में अंग्रेजी सेना के आने की खबर मिल गयी। महाराज पारीक्षत के सहयोगी और मधुकर शाह नानहट अपनी सेना सहित आ गये।

जैतपुर महारानी ने महाराज पारीक्षत और सेना का तिलक कर विजयी होने की आकांक्षा व्यक्त की। घमासान युद्ध हुआ और कई दिन के युद्ध के उपरान्त अंग्रेजी सेना सैकड़ों सैनिकों को मुर्दा या घायल छोड़कर भाग गये। विजयी पारीक्षत अपने सहयोगी मधुकर शाह नारहट के साथ जैतपुर वापस आये। अंग्रेजी सेना का सेनापति पिछले समय में कई युद्धों में

छतरपुर अंचल में सैर साहित्य की परम्परा

— डॉ. (श्रीमती) गायत्री बाजपेयी

पुण्यधरा बुन्देलखण्ड के मध्य में अवस्थित छतरपुर नगर न केवल प्राकृतिक, ऐतिहासिक एवं साहित्य दृष्टि से सम्पन्न एवं समृद्ध है, अपितु अनेकानेक महान विभूतियों की जन्म एवं कर्मभूमि भी है। महाराज छत्रसाल के नाम पर बसे छतरपुर अंचल को १ अप्रैल सन् १९४८ को प्रशांसनिक मान्यता प्राप्त हुई थी। इस जिले में कई छोटी बड़ी रियासतों का विलय किया गया है, जिनमें छतरपुर, बिजावर, अलीपुरा, गरौली, गौरिहार, लुगासी रियासतें तथा चरखारी एवं पन्ना रियासतों का कुछ भाग भी सम्मिलित किया गया था। वर्तमान में छतरपुर जिले में बिजावर, नौगांव, लौड़ी, गौरिहार, राजनगर एवं छतरपुर छः तहसीलें हैं।

छतरपुर नगर की साहित्यिक यात्रा बहुमुखी एवं बहुआयामी है। आशुकवि गंगाधर व्यास एवं ईसुरी जैसी अनेक प्रज्ञासम्पन्न विभूतियों ने अपने काव्य सृजन से इस अंचल का नाम साहित्याकाश में स्वर्णाक्षरों में अंकित कर दिया है। इनके द्वारा रचित वीर काव्य, भक्ति काव्य, रीतिकाव्य एवं लोककाव्य के स्वरों की मधुरम अनुगूंज दिगदिगंत में गुंजायमान है। छतरपुर अंचल में सुप्राप्त लोककाव्य भारतीय संस्कृति का सच्चा एवं वास्तविक चित्र उपस्थित करता है। लोककाव्य का ही एक अंग है सैरसाहित्य जिसकी अमूल्य सम्पदा इस अँचल में बिखरी हुई है। यहां के लोक रचनाकारों ने अपनी प्रत्युपन्नमति की अद्भुत शक्ति से सैर साहित्य के भंडार को सुसमृद्ध किया है। यहां सैर साहित्य का प्रचलन लोक रागिनी के रूप में अत्यधिक पुरातन है। सैर शीभधर छन्द का अपभ्रंश रूप है। इसमें बारह और दस के विश्राम से बाइस मात्रायें होती हैं तथा चार चरण होते हैं। सैर प्रभाकर राधिका व कुण्डल छन्द से मिलता जुलता है। इसे दायरे एवं चंग पर सामूहिक रूप से गाया जाता है। सैर साहित्य को विषय एवं शिल्प से दृष्टि से परिमार्जित व सुव्यवस्थित कर पड़ बाजी का सुदृढ़ आधार प्रदान करने में पं. गंगाधर व्यास एवं पं. परमानन्द पाण्डे का विशिष्ट योगदान है।

छतरपुर में सैरों की फड़बाजी प्रारंभ करने का श्रेय सर्वप्रथम द्विज रामलाल पाण्डे को जाता है। कालान्तर में इनके

विजयी होने के बाद पराजित हुये थे। उनकी सेना भारत में कई जगह थी। स्लीमैन ने अपने अधिकारियों को इस पराजय की सूचना भेज दी। अब अंग्रेजों ने एक चाल चली। विद्रोही सेनापति महाराजा पारीक्षत के दीवान तोपची और अनेक अधिकारियों को सोना देकर अपनी तरफ मिला लिया और तब जैतपुर पर आक्रमण किया। पारीक्षत के अनेक सेनापति उनके साथ थे। दोनों तरफ से तोपें चलीं अंग्रेजों के तोपों के गोला यहां आ रहे थे। और उनका प्रभाव दिखाई पड़ता था। पर स्वयं के गोलन्दाज, जो अंग्रेजों पर गोला चला रहे थे। उन पर कोई प्रभाव दिखाई नहीं दे रहा था। काफी विचार विमर्श के बाद समझ में आया कि इन तोपों में गोला नहीं लगाये जा रहे हैं। चरखारी के राजा रतनसिंह से मदद के लिए पारीक्षत भागे तब तक पारीक्षत की सेना ने देखा कि महाराज नहीं है। सेना भी भाग गयी। तब अंग्रेजों ने जैतपुर किले पर आक्रमण कर दिया। महारानी जैतपुर ने अपनी तोपें चलवायीं पर कोई प्रभाव नहीं दिखाई दिया। तो महारानी जैतपुर अपने कुछ साथियों को लेकर महोबा तरफ भागीं दिवान देशपत, मधुकर शाह वगैरह रानी के साथ थे। कुछ अंग्रेज रानी का पीछा करते आ रहे थे। राजा के पिता जी रायबहादुर प्रान सिंह भी झूमर से अपनी सेना लेकर पहुंचे। महोबा और ज्योराहा के बीच दोनों सेनाओं का युद्ध हुआ अंग्रेज कम थे। उनमें कुछ मारे गये बाकी भाग गये अब अंग्रेजी सेना आयी और झूमर में अंग्रेजों से मधुकर शाह और प्रानसिंह का युद्ध हुआ। प्रान सिंह वहां मारे गये। अब रानी बारीगढ़ ज्योराहा तरफ भागीं। बारीगढ़ में घमासान युद्ध हुआ। जिसमें अंग्रेजों का सामान बारीगढ़ में रह गया। और जो अंग्रेज बचे वे भाग गये। मधुकर शाह दीवान देशपत तथा अन्य सेनापति महारानी जैतपुर तथा जैतपुर महाराज पारीक्षत मझगुवां बमीठा के पास एक दूसरे से मिल गये। अब मुधकर शाह नारहट गये। इस क्षेत्र में उनका प्रभाव था। अंग्रेजी सेना का सब जगह बहिष्कार हो रहा था। उसका सागर क्षेत्र में जाना कठिन था। अंग्रेजों को मालूम था कि यहां मधुकर शाह का प्रभाव है। अंग्रेज जासूस इनका पीछा कर रहे थे। एक दिन मुधकर शाह अपनी बहिन के घर कुलगुवां में थे। कैप्टन हैमिल्टन को यह खबर मिली। २४ जनवरी १८४४ को जब मधुकर शाह गहरी नींद में सो रहे थे। तब पकड़े गये। और २८ जनवरी को सागर जेल भेजे गये। इसी समय गढ़ा–पड़रिया के विद्रोही गनेश जू (महरौनी क्षेत्र) भी अंग्रेज सेनापति बैकमैन के कब्जे में आ गये। यह भी सागर जेल में रखे गये। वहीं इन दोनों विद्रोहियों को फांसी दी गयी। पुराने जेल के पीछे तालाब की अगोर में दोनों चबूतरा हैं। इनके नाम पर सागर में १९८० से मधुकर शाह चौराहा तथा मधुकर शाह नाम का एक मोहल्ला है।

— ग्राम पोस्ट बुड़रक (महाराजपुर) जिला छतरपुर म.प्र.

ही भतीजे पं. परमानन्द पाण्डे ने 'पाण्डेय दल' बनाया जो पं. गंगाधर व्यास के प्रतिद्वन्दी माने जाते हैं। पाण्डे दल के प्रमुख कवियों में श्री महादेवप्रसाद चौबे 'अनन्त', राम कृपाल मिश्र 'ज्योतिषी' तथा गायक कलाकारों में भगवानदास कुशवाहा, जानकी खरया, भगवानदास काछी एवं नन्हे शुक्ल आदि माने जाते हैं। व्यास दल के पगुख कवियों में स्व. रामदास नामदेव, स्व. श्री राजाराम शुक्ल 'रत्नेश', श्री रामनाथ, श्री रामलाल गुप्ता, मनभावन शुक्ल, स्व. कल्लू मैमार, श्री दशानन्द, स्व. शेख नत्थू, स्व. भवानी प्रसाद पटैरिया एवं गायक कलाकारों में भगवत सिंह घोष, घनश्याम धोबी, रमजान मुलसमान, गोकुल महाशय तथा दामोदर नामदेव व फत्तू मुसलमान, रोशन खां, रामदास लखेरे, मुन्ना ताम्रकार आदि की गणना की जाती है जो फड़बाजी की परम्परा को आज भी जीवंत बनाये हुये हैं। यह एक साहित्यिक प्रतियोगिता है, जो विशेष अवसरों पर आयोजित की जाती है। दोनों दलों में होने वाली यह प्रतिद्वन्दिता अत्यधिक रोचक एवं चिन्ताकर्षक होती है। सैरों के फड़ जब जमते हैं तो श्रोतागण मंत्रमुग्ध हो घण्टों बैठे रहते हैं। सैर के फड़ों में प्रतिद्वन्दिी गायक दलों के चार–चार सदस्य आमने सामने बैठते हैं। दोनों दलों के सदस्यों के पास ढोलक, मंजीरा, घेरा आदि वाद्य यंत्र रहते है, जो गम्मत की बौछार के साथ बारी–बारी से बजाये जाते हैं। सैर गायन ही गम्मत कहलाता है। दल के एक सदस्य द्वारा सैर गाई जाती है तथा अन्य सदस्यों द्वारा वाद्ययंत्र बजाये जाते हैं। प्रत्येक सैर के प्रारंभ में दोहा, सोरठा तथा छन्द गाये जाते हैं। तदुपरान्त सैर गायी जाती है। सैर की एक पंक्ति दल के किसी एक सदस्य द्वारा गाई जाती है। फिर शेष सदस्य सामूहिक रूप से उसे दुहराते हैं। जिसे शास्त्रीय आधार देते हुये दुगन तिगुन तक ले जाते हैं। यद्यपि सैर लोक संगीत में ही निबद्ध होती है। यह प्रतियोगिता प्रश्नोत्तरी है। जिसमें एक दल दूसरे दल से नायिका भेद, काव्य, पौराणिक प्रसंग आदि, किसी भी विषय पर प्रश्न करता है। दूसरा दल उत्तर देता है। उत्तर न दे पाने की स्थिति में उसे पराजय स्वीकार करनी पड़ती है। तथा विजयी दल विजयोल्लास से झूमता हुआ फड़ से उठकर गणेश पूजन करता हुआ फड़ विसर्जन की घोषणा करता है। सैर गायकी के इन दलों के पास विविध विषयों पर सैर साहित्य का भंडार है। सैरों की संख्या हजारों में है। एक–एक विषय पर सैकड़ों सैरें लिखी गई हैं। व्यास दल के पुरोधा पं. गंगाधर व्यास तथा पाण्डेय दल के शीर्ष पुरुष परमानन्द पाण्डे ने विविध गूढ़ातिगूढ़ विषयों पर हजारों सैरों की रचनाकर लोक साहित्य के कोष को समृद्ध बनाने में अतुलनीय योगदान दिया है। आशुकवि गंगाधर व्यास ने सैर को नूतन स्वरूप एवं नवीन दिशा प्रदान की है। उन्होंने सैर की विषय वस्तु एवं शिल्प दोनों में ही अभूतपूर्व परिवर्तन किया। व्यासजी से पूर्व चार चरण वाली सैर लिखी जाती थीं, परन्तु व्यासजी ने तीन चरण तथा एक टेक वाली सैरों की रचना की। प्रारंभ में दोहा, सोरठा तथा छन्द रखकर तीन चरण के चार छन्द मिलाकर झुमका बनाने की नवीन पद्धति का विकास किया। उक्त सन्दर्भ में एक उदाहरण दृष्टव्य है —

दोहा— *चित्र चुरायो चन्द का, जान लगो तिह ओर।*
मोर मुकुट की लहक पर, अटक रहो मन मोर।।

छन्द : *हो विमल मानस कलि कठिन कलमस सकल जाता रहे।*
व्यास होवे दास प्रभु का खास यह नाता रहे।
तब पाद पदम पराग मोरा मन मधुप पाता रहे।
झांकी झलक बांकी ललक भर चित्र नित ध्याता रहे।

सैर : *राधिका श्याम युगल नाम नित उचार ने।*
मूरत युगल मंजुल हिये विच पधारने।
नैनन से दरस कर कर जीवन सुधारने।
झांकी झलक ललक भर हरदम निहारने।टेक।।
नव जलद संग दामिन तन प्रभा सारने।
कोटन ससी सरद के मुख पै उनारने।
रति काम कोर कोरन छवि पै निसारने।
झांकी झलक ललक भर हरदम निहारने।टेक।।
वन माल रुचिर लागी प्रतिमा पसारने।
जिम इन्द्र धनुष नीरज नव विच विचारने।
जेवर जड़ाऊ रूचि रचे किधौं मारने।
झांकी झलक ललक भर हरदम निहारने।टेक।।
चढ़ विमान देव लगे सुमन ढारने
मन मोद भरे लागे जय जय पुकारने
कहै 'व्यास' सैर सुन्दर कई ढंग ढारने।
झांकी झलक ललक भर हर दम निहारने।टेक।।

व्यास जी रचित सैर साहित्य विविधवर्णी हैं। इन्होंने विभिन्न धार्मिक ग्रंथों एवं शास्त्रों का अध्ययन मनन कर पौराणिक प्रसंगों व विख्यात लोक कथाओं को रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। डॉ. राधावल्लभ शर्मा के मतानुसार "व्यासजी ने सैर के विषय और शिल्प दोनों क्षेत्रों में अभिनव प्रयोग किये। धार्मिक कथाओं तथा पौराणिक आख्यानों को संस्कृत साहित्य से ग्रहण कर बुन्देली में जन–साधारण के समक्ष प्रस्तुत किया। प्रख्यात लोक विषयक कथाओं में भरथरी, हरदौल आदि को लोकगायिकी के माध्यम से लोकरंजन का विषय बनाया। उन्होंने सैर शिल्प में भी पर्याप्त संशोधन किया। दोहा, सोरठा के साथ सैर की संख्या चार से लेकर पच्चीस तक रखी। कहीं कहीं सैरों के मध्य छन्द ख्याल और झोलना भी प्रयुक्त किये। इसे लोकप्रिय बनाने की दिशा में भी उन्होंने स्तुत्य प्रयास किया। बुन्देलखण्ड में प्रचलित फड़बाजी की परम्परा प्रारम्भ करने और उसे लोकप्रिय बनाने का श्रेय गंगाधर को ही है।"

सैर साहित्य में भगवान राम एवं कृष्ण विषयक लीला प्रसंगों का अत्यधिक सरस एवं मनोरम चित्रण मिलता है। जिसमें सभी रसों की सुन्दर अभिव्यंजना है। विप्रलम्भ श्रृंगार का एक उदाहरण दृष्टव्य है जिसमें कृष्ण के वियोग में राधा उन्माद ग्रसित हो सम्पूर्ण श्रृंगार का परित्याग कर देती है। उनकी स्थिति जल बिन मीन की भांति अत्यधिक दीन एवं करुण हो गयी है —

दोहा: *श्यामा की गति श्याम बिन, जैसे जल बिन मीन।*
जब हेरी वंशी बजा, अब हित कर तज दीन।।

सैर : तज दये तमोर दांतन मिस्सी ना धारी।
असुंआ प्रवाह नैनन सें बहत पनारी।
काजर दृगन बिसारौ बैनी न सभारी।
नंद लाल बिना ऊधौ जा दशा हमारी।।
भरतार प्रान प्यारे पत कुंज बिहारी।
तज दयौ हमें नाहक का बात बिचारी।
पहिरे कुचील तन पै तब सुन्दर सारी।
नन्द लाल बिना ऊधौ जा दसा हमारी।टेक।।
सुकुमार रसारस में बई विष की क्यारी।
है दगाबाज कपटी की ऐसी यारी।
दुविधा में परे बासर निशि खबर बिसारी।
नन्दलाल बिना ऊधौ जा दसा हमारी।टेक।।
दई अरज सुनै जौ पै मिल जाये मुरारी।
लै सुमन अकौआ कै पुजिहौ पुरारी।
कर कथन व्यास गंगाधर सैर उचारी।
नंद लाल बिना उधौ जा दसा हमारी।टेक।।

इस झूमका में वियोग की उद्वेग, जड़ता, व्याधि, स्मरण गुणकथन एवं अभिलाषा आदि मनोदशाओं की सुन्दर अभिव्यंजना दर्शनीय है। इसके अतिरिक्त अतुलित बलधाम हनुमान जी, शिव जी, वीणापाणि मां शारदे तथा विघ्न विनाशक गणपति जी की प्रार्थना से संबंधित सैरों की भी रचना हुई है। जिनमें रचनाकार ने आरोग्य, बल, बुद्धि ऐश्वर्य एवं विजय प्रदान करने की कामना प्रकट की है। श्री गणेश जी की वन्दना निम्न सैर में दृष्टव्य है। जिसमें शंकर सुअन भवानी नन्दन श्री गणपति जी के सिद्धि सदन, कष्ट हरन, सर्व मंगल करन रूप की स्तुति देखिये —

दोहा : *गन नायक गननाथ की, कर आज्ञा धर शीश।*
सिद्ध सकल कारज करें, धरे ध्यान तैतीस।।

सैर : ना करत देर जन के कारज सकल करन।
नर नार करत दरसन है कष्ट के हरन।
ना जानत जन ज्ञान लखा देत है धरन।
नासत क्लेश ध्यातन गनराज के चरन।टेक।।
नक शिक सिंगार करके आगे छत्र धरन।
नग जड़े रतन हीरा लागे जलज लरन।
नाचत है संग शारद निरतन लख तरन।
नासत क्लेश ध्यायन गनराज के चरन।टेक।।
ना रहत कष्ट ऐंगर अरि देखत न डरन।
ना चलत तेज जिनका कटंन लगे हरन।
निकसत है लेव दरसन जी की सकल जरन।
नासत क्लेश ध्यातन गनराज के चरन।टेक।।
निन्ता न कहीं करने जा कहत है नरन।
ना गलीदार शाया कई जात हये धरन।
नयै सैर कहत गंगाधर सांकरन हरन।
नासत क्लेश ध्यातन गनराज के चरन।टेक।।

श्री कृष्ण के बाल लीला प्रसंगों को सैर रचनाकारों ने अत्यधिक मनोरम रूप में प्रस्तुत किया है। श्रीकृष्ण की बालकोचित चेष्टाओं एवं क्रीड़ाओं का मनोरम चित्रण हृदय को आल्हादित कर देता है। वात्सल्य रस का सुन्दर परिपाक इस सैर में दृष्टव्य है। जिसमें श्री कृष्ण की शिशु लीलाएं व बाल हठ मां यशोदा के मन को मोहित कर लेती हैं —

दोहा : *बैठी जसुदा अंगन में, मन में होय निहाल।*
खेलत खेलत आ गए, जननी ढिग ततकाल।।

सोरठा:जननी ढिग ततकाल, पय पीवे के कारने।
कहत भए नंदलाल, क्षुधा सतावे मात मोय।

सैर : मोहन को तान हाथ उठा भय दिखावती।
बाबा को नाम लै लै के है डरावती।
जब मानत नई मोहन पुनः पुनः मनावती।
नभ से सुरन की बाला प्रसून गिरावती।टेक।।
सुर दारा दृश्य देख, देख मन को भावती।
कर रुदन नेक अखियां असुवा बहावती।
चुम्बत कपोल लालन को थपथपावती।
नभ से सुरन की बाला प्रसून गिरावती।टेक।।
पय पान करा प्यारे को है खिलावती।
लालन को पार पालन फिर फिर झुलावती।
सुकंठ मधुर गीत गाय के सुनावती।
नभ से सुरन की बाला प्रसून गिरावती।टेक।।
झीनों सो वस्त्र निरमल करके उड़ावती।
देवादिदेव महादेव को सुनावती।
दुज कुन्ज पुन्ज सुख के फिर फिर बुलावती।
नभ से सुरन की बाला प्रसून गिरावती।टेक।।

प्रस्तुत सैर में श्री कृष्ण आलम्बन हैं पय पान हेतु क्षुधातुर श्रीकृष्ण का मचलना उद्दीपन है। माता यशोदा का श्रीकृष्ण को मनाने हेतु हाथ उठाकर भय दिखाना, बाबा का

नाम ले डरवाना, चुम्बन लेना, रुदन करना, पालना में श्रीव ग्र को झुलाना, गीत गाना आदि अनुभाव है तथा प्रेम व हर्ष आदि संचारी भाव हैं। अतएव उक्त सैर में वात्सल्य रस अपने समस्त अंग प्रत्यंगों के साथ चित्रित हुआ है।

वर्ण्य विषय की दृष्टि से सैरों में श्रृंगार, शांत, करुण, वीर आदि सभी रसों की सुन्दर सजीव अभिव्यंजना हुई है। भारत पाकिस्तान के मध्य चल रहे काश्मीर विवाद पर भी सैर गायकों ने अपनी ओजपूर्ण, भावाभिव्यक्ति की है। वीर रस अपने समस्त अवयवों के साथ इस सैर में चित्रित हुआ है —

दोहा : दिल दिमाग से दूर कर, काश्मीर को ख्याल।
हो जाओ नोमूढ़ के, मिलेना सुनलो हाल।।

सैर: सुन लेव हाल छोड़ो जा हठ हमीर है।
दुरदसा भई जैसी वह बेनजीर है।
दावा के साथ कहते खींच के लकीर है।
मिलने मियां नवाब नहीं काश्मीर है।टेक।।
सामान जंग जोरौ होकर अधीर है।
पाहौ न पेस भारत रनधीर वीर है।
मर जाव जूझ रन में बन जाव पीर है।
मिलने मियां नवाज नहीं काश्मीर है। टेक।

लावनी: पाकिस्तान हुआ भारत से, नहीं कहीं से आया है।
होकर के फरजंद दंद का, क्या तूफान उठाया है।।
करत राष्ट्र बरबाद स्वाद में, मजा जरा न पाया है।
शैतानं कहै वा बेसहूर कह समझत नहीं समझाया है।।

सैर : लेव समझ समय आया इसका अखीर है।
चलता अनीत ताकी दुरगत नजीर है।।
कहता न साफ समझा करके बजीर है।
मिलने मियां नवाब नहीं काश्मीर है टेक।
लड़ने के लिए जन की लई जोर भीर है।
कमजोर नहीं भारत चीरा सौ चीर है।
कहते 'रमेश' फिर के धर हौ शरीर है।
मिलने मियां नवाज नहीं काश्मीर है टेक।

वीररस के भावों से भरी ये पंक्तियां पाठक एवं श्रोता के हृदय में अतुलित उत्साह का संचार करती हैं। रचनाकार की चुटीली मुहावरेदार प्रहारक शब्दावली अत्यधिक प्रभावोत्पादक एवं भावाभिव्यंजक है।

बारहमासा एवं षटऋतु वर्णन भी सैरों में हुआ है। ऋतुयें संयोगी एवं वियोगी के सुख दुःख को बढ़ाने वाली होती है। वियोगावस्था में सुखदायक वस्तुयें भी कष्ट प्रदायक व वेदना को तीव्रतर करने वाली होती हैं। इस सैर में पावस ऋतु का वर्णन दृष्टव्य है —

दोहा : घोर घटा कारी सघन, घुमड़ रही चहुँ ओर।
दूद रहे दादुर दमक, नाच उठे बन मोर।।

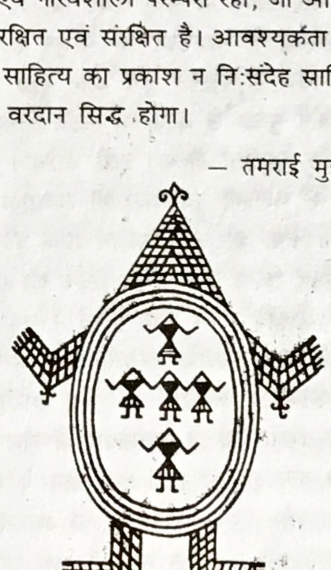
सैर : वन मोर नचे पापी पिक बोल सुनाये।
झनकार देत झिल्ली मन मोद बनाये।
झकझोर चले झंझा घन घोर मचाये।
घनश्याम सखी आये घनश्याम न आये।टेक।।
विरहा की पीर भारी तन निसदिन ताये।
प्रीतम प्रवीन प्यारे न पत्र पठाये।
जी जरे जबर जालिम ने जोर जनाये।
घनश्याम सखी आये घनश्याम न आये टेक।।

लावनी: जोर जनावै दै घनघोरें, मदन मरोरें मन मोरें।
आंवन की मग बैठी हेरों, बांध बांध कें दृग कोरें।
आन लगे घर सकल विदेशी, उन्हें कजाने सूझरही।
कथा कहौ मैं का अब अपनी विरह विथा न जात कही।

सैर : पायो न पतो आली किस दिसवा छाये।
जाती लिवाय आती सुखपाती चाये।।
चपला की चमक चिनगी चित बीच चुभाये।
घनश्याम सखी आये घनश्याम न आये।टेक।।
हेरी न कोउ ऐसौ जो पिये मिलाये।
पल पाय रैन पलकें न झपत झपाये।
कहते 'रमेश' एकउ न चलत उपाये।
घनश्याम सखी आये घनश्याम न आये।टेक।।

लोकरागिनी में निबद्ध बुन्देली का सैर साहित्य अपनी विशिष्टता में अद्वितीय है। साहित्यिक दृष्टि से इसका अपना अलग महत्व है। आज इस अमूल्य साहित्य सम्पदा के प्रकाश की महती आवश्यकता है। छतरपुर अंचल में इस साहित्य की समृद्ध एवं गौरवशाली परम्परा रही, जो आज भी सैरगायकों के पास सुरक्षित एवं संरक्षित है। आवश्यकता इसके प्रकाशन की है। सैर साहित्य का प्रकाश न निःसंदेह साहित्य जगत के लिए अनुपम वरदान सिद्ध होगा।

— तमराई मुहल्ला, छतरपुर □



बुंदेली इतिहास के एक भूले–बिसरे महापात्र :

छत्रसाल के वंशज शाहगढ़ नरेश वखतबली शाह

— हरगोविन्द तिवारी

सदियों पूर्व रानी दुर्गावती के बावन गढ़ों में ''शाहगढ़'' एक बड़े राज्य के रूप में स्थापित था। जो कि वर्तमान मध्यप्रदेश के सागर संभाग के सागर, छतरपुर, टीकमगढ़ एवं दमोह यानि चार जिलों की भौगोलिक स्थिति के केन्द्र बिन्दु पर सागर–छतरपुर राजमार्ग से लगा हुआ सागर जिले में स्थित है। यहां पर आज भी खंड्डर और धराशायी होता अवशेष मात्र किला, किले के अंदर एवं बाहर स्थित बावड़ी, किले से लगा हुआ तालाब का मैदान और तालाब का बंधान, बंधान के समीप स्थित कोठा व कोठियां, बड़ा बाजार स्थित खिन्नी का कुआ, बगिया मुहल्ला स्थित चौपरा कुआ एवं हाथी दरवाजा, हाथी दरवाजे के समीप स्थित अटा एवं कोठा, कोठा की छोटीमाता की मढ़िया के समीप स्थित हाथी दरवाजा, हाथी दरवाजे से लगा हुआ अटा एवं कोठा, छोटा बाजार के आगे स्थित कमानी, कमानी के समीप स्थित गौंड़बाबा का चबूतरा, शंकरगढ़ तिगड्डा स्थित भूलनमढ़ी, स्मशान के समीप स्थित कुटी, थाने के पीछे स्थित मंदिरनुमा मकबरा एवं लहरदहरा कुआ, सिंचाई विभाग को पुरानी कॉलोनी के समीप स्थित कोठा व कोठियां एवं प्राणनाथ मंदिर, मंदिरनुमा बड़ा मकबरा इत्यादि पुरातत्वों के साथ–साथ यहां की घटिया के ऊपर स्थित ब्रिटिश कालीन फौजी कैम्प की इमारतों के खण्डहर भी मौजूद हैं। जिनमें अधिकांश गौड़वाना राज में निर्मित हुये और कुछ बाद में निर्मित किये गये। जिन्हें मुगलों ने आक्रमण करके ध्वस्त किया और यहां अपना राज स्थापित किया। इसी दरम्यान ओरछा नरेश वीर चंपतराय के यशस्वी पुत्र महाबली छत्रसाल बुँदेला ने मुगलों पर आक्रमण किया और उन्हें पराजित करके बुंदेलखण्ड में अपना राज्य स्थापित किया तथा अपने राज्य की राजधानी पन्ना में स्थापित की। इन्होंने अपने राज्य काल में मुगलों द्वारा ध्वस्त की गई इमारतों का पुनर्निर्माण करवाया तथा अन्य बहुत से नये निर्माण भी करवाये। छत्रसाल की मृत्यु उपरांत पीढ़ी दर–पीढ़ी उसके उत्तराधिकारियों के राज्यकाल के दौरान राज्य का बँटवारा होने का क्रम चलता रहा। इसी क्रम में शाहगढ़ राज्य भी अलग हुआ और क्रमशः छत्रसाल की आठवीं पीढ़ी में जन्मे बखतबलीशाह इस राज्य के उत्तराधिकारी बने। शेष उत्तराधिकारियों को छोड़कर आवश्यक सीधा पीढ़ी क्रम इस प्रकार है। एक–छत्रसाल, दो हृदयशाह, तीन–सभासिंह, चार–खेतसिंह, पांच–हरिसिंह, छः–मर्दनसिंह, सात–तखतसिंह, आठ–बखतबली शाह।



वखतबलीशाह का जन्म लगभग १८०४ ईस्वी में हुआ था। इनके पिता का नाम तखतसिंह एवं माता का नाम प्रेमुरानी था। इनके छोटेभाई का नाम लक्ष्मणसिंह था तथा इनके बड़े पिताजी का नाम अर्जुनसिंह एवं बड़ी माता का नाम आशारानी था। इनके पिता तखतसिंह शाहगढ़, नरेश अर्जुनसिंह के लघुभ्राता थे। चूंकि अर्जुनसिंह निःसंतान थे इसलिये वे अपने छोटेभाई तखतसिंह एवं उनके पुत्रों पर अधिक स्नेह रखते थे। सौभाग्य से बखतबली को अपने माता–पिता के साथ–साथ अपने बड़े पिताजी एवं बड़ी माताजी का खूब लाड़–प्यार मिला किन्तु दुर्भाग्य यह रहा कि बखतबली का जन्म एक ऐसे समय में हुआ जबकि देश में अंग्रेजों की शिकंजा भारी हो रहा था। अंग्रेजों को दूषित नीतियों से रुष्ट और पीड़ित होकर जागीरदार और राजा लोग बदले की भावना लेकर बगावत कर रहे थे और बागी होकर लूटपाट तथा मारधाड़ कर रहे थे। जिन्हें अंग्रेज कुचल रहे थे जिससे देश में चारों ओर आतंक तथा दहशत का माहौल था। इससे बखतबली के माता–पिता बहुत चिंतित रहते थे तथा वे अपने लाड़ले पुत्र का लालन पालन, शिक्षा–दीक्षा एवं सुरक्षा व्यवस्था बड़ी सतर्कता के साथ कर रहे थे। किन्तु एक कहावत है कि ''होनहार विरवान के होत चीकने पात'' जिसे बखतबली चरितार्थ कर रहे थे। वे बाल्यकाल से ही साहसिक कृत्यों को अन्जाम दे रहे थे जैसे घुड़सवारी करना, आखेट के लिये जाना, कुश्ती और कबड्डी खेलना, तलवार एवं बंदूक चलाना, लाठी तथा बल्लम घुमाना, बरछी और छुरा चाकू से निशानेबाजी करना, संगठन बनाना और युद्ध करना। इतना ही नहीं वे खेल–खेल में युद्धबाजी करके अपनी जीत पर मनोरंजक कार्यक्रमों का आयोजन भी करते और खेल–खेल में ही कोई ऐसी असाधारण वारदात करते जिससे सभी लोग आश्चर्यचकित रह जाते।

एक बार वे अपने बालसाथी ऊदलसिंह, माधोसिंह

हरबल सिंह, हीरा सिंह, और गिरवर सिंह इत्यादि के साथ कबड्डी का खेल खेलने की तैयारी कर रहे थे। जिसमें दोनों पालियों के मुखियों के बटवारे में एक पाली के मुखिया बखतबली और दूसरी पाली के मुखिया ऊदल सिंह चुन लिये गये थे। फिर शेष साथियों के दोनों पालियों में बटवारे हुए एकांत में जाकर गुप्तनामों को धारण कर जोड़ी से दोनों पालियों के मुखियों के सामने आकर उनकी मांग पर आधारित अन्य खिलाड़ियों के चयन की प्रक्रिया प्रारंभ की गई। जिसमें माधो और गिरवर दोनों एकांत में जाकर अपने–अपने गुप्तनामों को धारण कर एक–दूसरे के गले में हाथ डाले हुये जोड़ी से आये तथा बखतबली और ऊदल के सामने खड़े हो गये तथा बोले कि दो नामों का है यह जोड़ा, ले लो कोई एक–एक छोरा, एक बना बुंदेली मौड़ा, और एक अंग्रेजी गोरा। यह सुनकर बखतबली ऊदल से बोले कि भाई ऊदल तुम जिसे चाहे उसे मांग लो पहिले। ऊदल ने उनसे कहा कि नहीं राजन पहिले आप ही मांगो। किन्तु जब बखतबली ने दुबारा ऊदल से मांगने को कहा तो ऊदल बोले ठीक है राजन यदि आपकी ऐसी इच्छा है तो मैं ही पहिले मांग लेता हूं और ऊदल ने सामने खड़ी जोड़ी से अपनी पाली के लिये अंग्रेजी गोरा मांग लिया। गिरवर जो अंग्रेजी गोरा बना था वह ऊदल की पाली में आ गया, माधो जो बुन्देली मौड़ा बना था वह वखतबली की पाली में चला गया। खिलाड़ियों का बटवारा हो चुका था और कबड्डी खेलने का खेल प्रारंभ होना था मगर वखतबली ने खेलने से मना कर दिया। तो ऊदल ने उनसे कहा क्यों राजन क्या हुआ इस पर बखतबली ने एकदम गुस्से में आकर ऊदल से कहा कि हम अंग्रेजों और अंग्रेजप्रेमी देश के गद्दारों के साथ कबड्डी का खेल नहीं खेलेंगे। बल्कि उनसे युद्ध करके उन्हें यहां से मार भगायेंगे तथा देश को उनकी पराधीनता से मुक्त करेंगे। ऊदल तुम अंग्रेज प्रेमी देश के गद्दार हो क्योंकि तुमने अंग्रेजी गोरा बने गिरवर को अपना साथी चुना है। इससे तुम दोनों हमारे सामने देश के दुश्मन नजर आ रहे हो अब हम तुम्हें नहीं छोड़ेंगे और वे क्रोधित होते हुये ऊदल एवं उसके साथी गिरवर को मारने दौड़े इसी बीच सब दल ने उन्हें मारपीट करने से रोकने का प्रयास किया जिससे मौके का लाभ लेकर ऊदल और गिरवर वहां से भाग निकले। वखतबली भी उन्हें मारने उनके पीछे–पीछे दौड़े वे उनके करीब पहुंचते कि इससे पहिले ही हो हल्ला सुनकर काफी लोग एकत्र हो गये साथ ही बखतबली के पिताजी और बड़े पिताजी भी आ गये। उन्होंने वखतबली को रोकते हुये इस बारे में जानकारी ली। वास्तविकता को जानकर उन्होंने वखतबली को समझाया तब कहीं उनका गुस्सा शांत हुआ। वखतबली ने वास्तविकता को समझते हुये गुस्सा शांत करके ऊदल तथा गिरवर के अंग्रेजी गोरा बनने एवं तुम्हारे द्वारा उसे अपनी पाली में लिये जाने पर हमें तुम लोग अंग्रेज एवं अंग्रेजप्रेमी देश के गद्दार नजर आये जिससे तुम लोगों के प्रति नफरत पैदा हुई और तुम लोगों को दुश्मन समझा। जबकि तुम लोग तो हमारे साथी हो। दुश्मन तो वे हैं जो अंग्रेज हैं और उन्हें जो लोग सहयोग देते हैं वे देश के गद्दार लोग भी हमारे दुश्मन हैं। ऊदल और गिरवर बोले राजन जो आपके दुश्मन हैं वे हमारे भी दुश्मन हैं और हम सब मिलकर ही अपने दुश्मनों को मारेंगे तथा देश को उनकी पराधीनता से मुक्त करेंगे। चलो अभी तो हमें कबड्डी खेलना है तो अपना खेल प्रारंभ करें। तब फिर वखतबली अपने साथियों के साथ कबड्डी खेलने लगे। इस तरह आश्चर्यजनक करतबों के साथ बखतबली का बाल्यकाल अपने बालसाथियों के साथ रहकर बीत रहा था। मगर उनके माता–पिता उनकी शिक्षा–दीक्षा के लिये चिंतित थे क्योंकि शाहगढ़ में शिक्षा की व्यवस्था नहीं थी। अतः उनके माता–पिता को इस संबंध में चिंतित देखकर उनके बड़े पिताजी अर्जुनसिंह ने प्रयत्न करके अपने पैतृक राज्य गढ़ाकोटा से पं. खेमचंद तिवारी के परिवार को शाहगढ़ लाकर उनके रहने और आजीविका चलाने के व्यवस्था हेतु कुछ जागीर देते हुये उन्हें वखतबली को शिक्षा दिलाने की जिम्मेदारी सौंप दी। पं. खेमचंद तिवारी बखतबली को शिक्षा देने लगे। जिससे उन्हें अपने पूर्वजों की शौर्य गाथाओं के साथ–साथ ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक तथा नैतिक शिक्षा सम्बन्धी ज्ञान का भंडार मिला और वे सहयोग, दया, प्रेम, साहस और न्याय के धनी होने के साथ–साथ वीर, पराक्रमी, स्वाभिमानी एवं देश प्रेमी तथा देशभक्त इत्यादि महान गुणों के स्वामी बन गये। एक बार पं. खेमचंद तिवारी ने उनसे प्रश्न किया कि बेटा वखतबली मानव जन्म पाकर मनुष्य के क्या कर्तव्य होना चाहिये? तब वखतबली ने उनसे कहा कि पंडित जी मानव जन्म पाकर मनुष्य को अपने माता–पिता और गुरु की सेवा करना चाहिये तथा अपने भाई–बहिनों व पुत्र–पुत्रियों पत्नि सहित सभी सगे संबंधियों से मधुर संबंध रखते हुये समाज के प्रति पूर्ण सहयोग की भावना रखना चाहिये। इतना ही नहीं मनुष्य को सभी प्राणियों के साथ दया और प्रेम रखना भी बहुत जरूरी है। पंडितजी ने यह सुनकर उनसे कहा कि बेटा वखतबली तुम एक बुद्धिमान, वीर बलवान व योग्य शासक के गुणों से धनी हो, तुम्हारे जैसे योग्य व्यक्ति इस धरती पर सदैव जन्म लेते रहें। वखतबली ने पंडितजी के चरण छू लिये पंडितजी ने आशीर्वाद देते हुये उनसे कहा ईश्वर तुम्हें सदा सुखी रखे।

वखतबली अपनी नियमित दिनचर्या के साथ दिनोंदिन प्रगति पथ पर अग्रसर हो रहे थे और जब वे तरुण हो गये तो बड़ी धूमधाम से उनका विवाह बानपुर के राजा मोदप्रहलाद की पुत्री क्रांतिकुंवर के साथ कर दिया गया। विवाह होने के बाद

क्रांतिरानी के साथ मिलने से उनकी दिनचर्या भी कुछ प्रभावित हो गई। वे अपना अधिकांश समय सामाजिक एवं राजसी कामों में बिताने लगे। जिसमें उनके छोटेभाई लक्ष्मणसिंह भी काफी मदद करते। कुछ समय पश्चात् नाराहट के जमींदार राव विजय बहादुर सिंह की पुत्री सरोजकुंवरि के साथ लक्ष्मणसिंह का विवाह भी बड़ी धूमधाम से हुआ। किन्तु लक्ष्मणसिंह के विवाह के बाद हृदयगति रुक जाने से आशारानी की मृत्यु हो गई। जिनकी मृत्यु के कुछ दिनों बाद अर्जुनसिंह एवं तखतसिंह तीर्थ करने चले गये। वे काफी दिनों बात तीर्थ करके सकुशल वापिस लौट आये तो वखतबली ने उनके सम्मान समारोह का आयोजन किया जिसमें राज्य के सभी लोगों ने आकर अर्जुनसिंह एवं तखतसिंह का खूब सम्मान किया। मगर इसके कुछ ही दिनों बाद तखतसिंह की तबियत बिगड़ गई। वखतबली ने उनका काफी इलाज कराया मगर कोई लाभ न होने से उनकी तबियत बहुत ज्यादा खराब हो गई जिससे वे बहुत कमजोर हो गये और कुछ समय बाद उनकी मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु के सदमा से प्रेमरानी भी बीमार हो गई और काफी दिनों तक बीमार रहने के बाद वे भी स्वर्ग सिधार गई। इस तरह बड़ी मां आशारानी तथा पिता तखतसिंह एवं माता प्रेमरानी के निधन से वखतबली अत्यंत दुखी थे। उनके बड़े पिताजी अर्जुन सिंह भी काफी वृद्ध व कमजोर हो गये थे अत: उन्होंने राज्य के कार्यभार एवं उत्तराधिकारी का दायित्व वखतबली को सौंप दिया। वखतबली राज्य का कार्यभार सम्हालने लगे साथ में उनके छोटेभाई लक्ष्मणसिंह भी उनकी मदद करते रहते। किन्तु विवाह के बाद काफी लम्बा समय बीत जाने के बावजूद भी वखतबली एवं लक्ष्मणसिंह को कोई संतान, प्राप्त नहीं हुई जिससे उनके मन में भारी अशांति बनी रहती। अत: उन्होंने अपने मन की शांति के लिए बहुत से विद्वान पंडितों को बुलाकर महामृत्युंजय जप, दुर्गा सप्तशती पाठ इत्यादि बहुत बड़े महान धार्मिक अनुष्ठान का आयोजन किया। जिसमें राज्य ब्रह्मभोज एवं कन्याभोज के साथ–साथ उन्होंने खूब दान भी दिया। जिससे उन्हें कुछ शांति जरूर मिली पर उनके भाग्य का लिखा नहीं बदला। उनका शांतिपूर्वक कुछ ही समय व्यतीत हुआ कि सन् अठारह सौ बियालीस ईस्वी में उनके बड़े पिताजी अर्जुनसिंह का भी स्वर्गवास हो गया जिससे वे बहुत दुखी हो गये। अर्जुनसिंह का स्वर्गवास हो जाने पर वखतबली शाहगढ़ राज्य के उत्तराधिकारी बन गये। इसी समय दुर्भावनाओं को लिये अंग्रेज अधिकारी सी. फ्रेजर वखबली से मिलने आया और वह उनसे बोला कि अब तो आप ही इस राज्य के उत्तराधिकारी बन गये हो इसलिये आप हमारी शुभकामनायें स्वीकार करें। और कृपाकर हमारे कार्य में भी कुछ अपना सहयोग प्रदान करें ताकि हमारे खिलाफ बगावत पैदा न हो और हम यहां आसानी से अपना कार्य कर सकें। इस पर वखतबली खिन्न मन से बोले कि महाशयजी आप हमारे यहां पधारे इसके लिये आपको धन्यवाद। पर याद रखें कि हम अनैतिक रूप से आपका सहयोग करके अपनी मातृभूमि को गर्त में मिलाने का पाप कतई नहीं करेंगे। हम आपसे फिर कभी मुलाकात करेंगे। वखतबली का दो टूक जवाब लेकर सी. फ्रेजर उनसे विदा लेकर पृथक रूप से लक्ष्मणसिंह के पास मुलाकात करने जा पहुंचा और उनसे बोला कि अफसोस है आप तो वखतबली के भाई हैं पर पूरे राज्य के मालिक बन गये वे और आप यहां अकेले शोक में डूबे हैं। आखिर कब तक दुखी रहेंगे आप मेरी राय मानें तो आपको भलाई इसी में है कि आप नि:संकोच होकर वखतबली से अपना बराबर का हिस्सा ले लें। यह सुनकर लक्ष्मणसिंह का मन डोल गया और वे बोले महाशय जी आपसे मिलकर बहुत खुशी हुई। कहिये आपकी क्या सेवा करूं वह बोला बस धन्यवाद आपसे मुलाकात हो गई यही काफी है। जरूरत पड़ने पर आपसे फिर मुलाकात करूंगा। और वह मन ही मन प्रसन्न होकर वापिस चला गया।

वखतबली को इसी समय मोदप्रहलाद की मृत्यु का समाचार मिला इसलिये वे बानपुर की ओर रवाना हो गये। वहां जाकर उन्होंने अपने साले मर्दनसिंह को ढाढस बंधाया और उनसे कहा कि बड़े बुजुर्गों की छाया हमसे दूर हो गई है तथा हमारे ऊपर बहुत सी जवाबदारियों एवं कार्यों का भार आ गया है। इसलिए अपनी जवाबदारियों को निभाने के लिये हमें सजग रहना है और बड़ी सजगता के साथ आगे बढ़ना है। मर्दनसिंह सजग होकर बानपुर राज्य का कार्यभार सम्हालने लगते हैं। वखतबली वहां से वापिस लौट आते हैं। इसी समय लक्ष्मण सिंह राज्य की सुख सुविधाओं को लेकर वखतबली से लड़ बैठें। उन्होंने सी. फ्रेजर के भड़कावे में आकर वखतबली से शाहगढ़ राज्य के आधीन रहने वाले विनेका को पृथक स्वयं के लिये मांगा जिसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया। इसके फलस्वरूप लक्ष्मणसिंह ने वखतबली से विद्रोह करने की मंशा बना ली। इसी दरम्यान अंग्रेजों द्वारा नाराहट के जमींदार मधुकरशाह और चंद्रपुर के मालगुजार जवाहर सिंह के ऊपर जमीनों के कर के रूप में थोपी गई भारी राशि की वसूली हेतु सख्त कार्यवाही की गई। जिससे इन्होंने रुष्ट होकर अंग्रेजों के साथ मारपीट कर दी। और उनके खिलाफ बगावत करने लगे तथा अपने मित्र हीरापुर के राजा हिरदेशाह लोधी को लेकर एक बड़ा भारी गुट बनाकर जगह–जगह लूटपाट और मारपीट की वारदातें करने लगे। जिससे अंग्रेज अधिकारी एम.सी. ओमेनी ने इन्हें बागी घोषित कर दिया और इनको गिरफ्तारी के लिये पांच–पांच हजार रुपये के इनाम की घोषणा भी कर दी।

मधुकर शाह, लक्ष्मणसिंह के साले, और जवाहरसींग साधू थे इसलिये मौका पाकर लक्ष्मणसिंह भी इनके साथ हो

गये। और इन्होंने धामौनी जाकर अंग्रेजों को मारपीट कर उनके अधीनस्थ रहने वाली भारी संपत्ति को लूट लिया। साथ ही शाहगढ़ राज्य के अधीन रहने वाले बिनेका पर भी हमला कर दिया तथा वहां मारपीट और लूटपाट करके वे आस पास की पहाड़ियों में ही ठहर गये। चूंकि बिनेका शाहगढ़, राज्य के अधीन था इसलिये यहां पर हुये हमले और मारपीट तथा लूटपाट की वारदात की जानकारी मिलते ही राज्य एवं जनहित की सुरक्षा के धर्मसंकट में जाकर शाहगढ़ नरेश बखतबलीशाह ने अपने साले बानपुर राजा मर्दनसिंह को सेना सहित अपने साथ लेते हुये बिनेका के हमलावरों को पकड़ने के लिये घेराव डाला। लक्ष्मणसिंह बचने के लिये इधर–उधर भागे और पहाड़ियों के बीच भागते हुये वे एक चट्टान से टकरा कर गिर पड़े। जिससे उनके एक हाथ की हड्डी टूट गई फिर भी वे सम्हलते हुये घेराव से बचकर भाग निकले। और शेष सभी हमलावरों को पकड़ने में वखतबली सफल हो गये। धामौनी और बिनेका से लूटी गई संपत्ति सहित वखतबली द्वारा बागियों को पकड़ लिये जाने की खबर पाते ही अंग्रेज अधिकारी कैप्टिन हैमिल्टन दलबल सहित वखतबली के पास आया। और जप्तसुदा संपत्ति सहित पकड़े गये बागियों को मांगते हुये उन्हें बागियों पर घोषित इनाम की राशि देने लगा। वखतबली ने इनाम की राशि को लेने से इंकार कर दिया और क्रोधित होते हुये उससे कहा कि गोरी चमड़ी के भेड़िया फिरंगी यह इनाम तू ही रख। शेर कभी घास नहीं खाता, कान खोलकर सुन तू हमारे द्वारा जप्तसुदा संपत्ति सहित पकड़े गये बागियों को हमारे राज्य से नहीं ले जा सकता। वह बोला कि राजा साहब व्यर्थ क्रोध मत करो ये जप्तसुदा संपत्ति और पकड़े गये बागी हमारे अधिकार क्षेत्र धामौनी से संबंधित हैं इसलिये इन्हें आप हमारे हवाले कर दो। और उसके जप्तसुदा संपत्ति सहित पकड़े गये बागियों को अपने कब्जे में ले लिया। तब वखतबली ने ललकारते हुये उसे कहा कि दुष्ट दुश्मन हैमिल्टन याद रखना तुझे एवं तेरे जैसे इस देश में फैले गोरी चमड़ी के सभी भेड़ियों को हम यहां जीवित नहीं रहने देंगे। मगर कैप्टिन हैमिल्टन लूट की जप्तसुदा संपत्ति सहित पकड़े गये बागियों को अपने साथ ले जाने लगा। वखबली उसे रोकते या उसका पीछा करते कि इसी समय लक्ष्मणसिंह उनके पास आकर उनसे झगड़ने लगे। वखतबली को लक्ष्मणसिंह ने झगड़कर उलझा दिया। इसी बीच मौके का लाभ लेकर कैप्टिन हैमिल्टन बड़ी सतर्कता और फुर्ती के साथ पकड़े हुये बागियों को जप्तशुदा सम्पत्ति सहित ले भागा। जिससे वखतबली क्रुद्ध हो गये और वे अंग्रेजों को मार भगाने की ताक में रहने लगे। यहां तक कि उन्होंने अपने राज्य में यह घोषणा कर दी कि जब तक देश फिरंगियों के जाल से मुक्त नहीं हो जाता तब तक के लिये राज्य द्वारा आम आदमी से वसूल किये जाने वाले सभी कर माफ रहेंगे। जिससे राज्य के सभी लोग उनसे प्रसन्न हो गये तथा उनके प्रति प्रेम एवं सहानुभूति रखने लगे। लक्ष्मण सिंह ने भी उनकी महानता को देखकर अपनी गलती के लिये उनसे क्षमा याचना कर ली। वखतबली ने माफ करते हुये उन्हें अपने गले से लगा लिया तथा उनके हाथ की टूटी हुई हड्डी के इलाज हेतु वखतबली कोयागंज जिला आजमगढ़ से डॉक्टर कालीप्रसाद खत्री को ले आये। जिन्होंने लक्ष्मणसिंह के हाथ की टूटी हुई हड्डी का अच्छा इलाज करके ही कुछ ही दिनों में ठीक कर दिया। इससे प्रसन्न होकर वखतबली ने डाक्टर कालीप्रसाद को इनाम में कुछ जागीर भी दे दी।

वखतबली को चैन नहीं था क्योंकि उन्हें अंग्रेजों की षड़यंत्रकारी दुष्प्रवृत्ति से हुआ आघात सहन नहीं हो रहा था, इसलिये वे अंग्रेजों से विद्रोह हेतु अवसर की तलाश करने लगे। इस तरह अंग्रेजों की दूषित नीतियों के परिणाम स्वरूप देश में जगह–जगह विद्रोह और बगावत की लहर धीरे–धीरे जोर पकड़ने लगी तथा अंग्रेजों से बगावत करने वाले जमींदार और राजा लोग निरंतर विद्रोही गतिविधियों में संलग्न हो गये। जिनके दमन हेतु अंग्रेजों द्वारा भारी हिंसक एवं अमानवीय कार्यवाही अमल में लाई जाने लगी। जिससे अनेक व्यक्ति अंग्रेजों की गोलियों का निशाना बनकर या फांसी के फंदे पर लटक कर मौत के घाट उतरने को मजबूर होने लगे। देश के जागीरदारों और राजाओं को शांति की सांस लेना दूभर हो रहा था। साथ ही देश की प्रजा भी बहुत पीड़ित थी। देश भक्त और स्वाभिमानी लोगों को देश की यह पीड़ा सहन नहीं हो रही थी। ऐसे ही संकट के समय झांसी के राज गंगाधर राव की मृत्यु हो गई। झांसी के राजा गंगाधर राव की मृत्यु का समाचार पाते ही अंग्रेजों ने अपने गोद लिये दत्तक पुत्र दामोदर राव को झांसी राज्य का उंत्तराधिकारी मानने से इंकार कर दिया। और झांसी पर कब्जा कर लिया। इस समय वखतबली सहित आस पास के बहुत से लोग झांसी में ही मौजूद थे। और सभी ने अंग्रेजों का भारी विरोध किया तथा वखतबली ने इस समय भारी बुलंद आवाज में मेजर मैक्कम से कहा कि झांसी राज्य के उत्तराधिकारी राजा साहब के गोद लिये दत्तक पुत्र दामोदर राव ही होंगे और यहां का कार्यभार रानी लक्ष्मीबाई सम्हालेंगी। यदि तुम लोगों ने इसे नहीं माना तो तुम्हें यहां से मार भगाने का काम जल्द ही एकजुट होकर किया जावेगा। तुम लोगों ने इस देश में आकर यहां अपना षड़यंत्रकारी जाल बिछाकर सभी देशवासियों से शत्रुता मोल ली है। फिरंगियों सचेत रहना इस देश के किसी भी राज्य को तुम लोग अपने कब्जे में नहीं रख सकोगे। वखतबली के कथनों का सभी ने जोरदार स्वागत किया तथा बुलंदी के साथ अंग्रेजों को ललकारा और सभी ने तरह तरह के जो जिसके मन मे आया सो कहा तथा अंग्रेजों के मुँह

पर थूकते हुये अपने—अपने स्थानों की ओर रवाना हो गये।

अंग्रेजों ने झांसी राज्य को जबरन अपने अधिकार में ले लिया और वहां का कार्यभार अंग्रेज कमिश्नर मेजर स्क्रिन सम्हालने लगा। जिसे वापिस लेने के लिए रानी लक्ष्मीबाई निरंतर प्रयत्न कर रहीं थीं तथा आस पास के अन्य लोगों द्वारा भी इस संबंध में प्रयत्न किये जा रहे थे। मगर अंग्रेज झांसी से टल नहीं रहे थे। अंग्रेजों के इस दुष्कृत्य से पूरे देश में हलचल मच गई। पूरे देश में अंग्रेजों से युद्ध करने हेतु क्रांति की ज्वाला फूट पड़ी जिसमें अंग्रेजी प्रशासन के अधीनस्थ सेना में भरती हुये यहां के लोगों द्वारा चर्बी लगे कारतूसों का उपयोग करने इंकार किया जाकर बगावत करने की गतिविधियों ने होम का काम किया। जिससे क्रांति की ज्वाला पूरे देश में फैल गई। अंग्रेजों से संघर्ष करने के लिये अभियान शुरू किये जाने हेतु झांसी मे एकत्र होकर आपस में विचार विमर्श के लिये रानी लक्ष्मीबाई द्वारा आसपास के राजाओं को लिखित एवं मौखिक संदेश भेजकर आमंत्रित किया गया। लक्ष्मीबाई द्वारा भेजे गये संदेश को पाते ही वखतबली पुनः झांसी जा पहुंचे और विचार—विमर्श के दौरान वखतबली ने सभी से कहा कि महारानी लक्ष्मीबाई के ऊपर इस गहन शोक व संकट के समय यहां पधारे सभी महानुभावों से मेरा विनम्र अनुरोध है कि यह संकट मात्र लक्ष्मीबाई का ही नहीं वरन पूरे देशवासियों का संकट है। क्योंकि पूरे देश भर में ही इन फिरंगियों ने फूट डालो और राज करो तथा हड़पनीति का सहारा लेकर राज्यों को हड़प लिया है। उन्होंने यहां अपना राज्य स्थापित कर लिया है जिससे हमारे देश में शांति व सुख चैन नहीं रहा है। देश के सभी राजा जागीरदार और आम आदमी इन फिरंगियों के कुचक्र से पीड़ित हैं इसलिये हमें जरूरी है कि आपसी मनमुटाव और वैमनस्यता को भूलकर सभी को एकजुट होना है तथा सभी को मिलकर अंग्रेजों से मुकाबला करना है। साथ ही हमें यह भरसक प्रयत्न करना है कि हम फिरंगियों को इस देश से मार भगाने में कामयाबी हासिल करें। इससे सभी ने सहमत होकर आपस में विचार—विमर्श कर अंग्रेजों से युद्ध प्रारंभ करने के लिये योजना तैयार की। अंग्रेजों से युद्ध की योजना तैयार होने के बाद एकत्र हुये सभी लोग अपने—अपने स्थानों पर पहुंचकर युद्ध की गतिविधियां शुरु करने लगे। जिसमें प्रमुख रूप से रानी लक्ष्मीबाई, रानी अवंतिबाई, बहादुरशाह जफर, बेगम जीनत महल, तात्याटोपे, नाना साहब, अजीमुल्ला, वत्तर खां, खान बहादुर अंहमदशाह, नवाब वाजिद अली शाह, बेगम हजरत महल, कुंवरसिंह एवं अमरसिंह, ठाकुर सरयू प्रसाद, राजा शंकरशाह, इत्यादि बहुत से लोगों के साथ—साथ बानपुर राजा मर्दनसिंह एवं शाहगढ़ नरेश बखतबलीशाह द्वारा अंग्रेजों से युद्ध का शंखनाद किया जाकर जगह—जगह पर अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध प्रारंभ किया गया तथा अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध करने वालों पर तत्कालीन ब्रिटिश, प्रशासनिक अंग्रेज अधिकारी गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी, लार्ड कैनिंग, गवर्नर एलफिस्ट, कमाण्डर ह्यूरोज, लैफ्टिनेंट वाकर, मेजर मैक्कम, मेजर स्क्रिन, लैफ्टिनेंट राइकेश, लैफ्टिनेंट हरबर्ट, सी.फ्रेजर, कर्नल वाटसन, मेजर डब्लू.एच.स्लीमन, कैप्टिन हैमिल्टन, कर्नल होम्स, राबर्टस, पार्क, मिचेल, होप, लाकहार्ट, नैपियर, शावर्स, सामर, वानर, सेट, जनरल स्मिथ, जनरल ओर, बेनसन, वाडिगटन, एम.सी. ओमेनो, कैप्टिन मैकिन टोस, कैप्टिन ब्राउन, कैप्टिन पिंको, गोसन, कमिश्नर एफ डी. पिंकने, ब्रिगेडियर सेज के साथ—साथ भारी अंग्रेजों की फौजों द्वारा दमनचक्र चलाया जाकर देश में अंग्रेजी शिकंजा मजबूत किया जा रहा था।

इस दरम्यान वखतबली ने प्रयास करते हुए बानपुर राजा मर्दनसिंह, हिण्डोरिया के जागीरदार किशोर सिंह, नाराहट के जंगासिंह ठाकुर, पिण्डारी के नवाब कादिर खान, अंग्रेजों की ४२वीं सेना के सूबेदार शेख रमजान, सोहागपुर के जमींदार बलभद्र सिंह, सागर के दौलत सिंह, बालाकोट के राव साहब सरूपसिंह, मानसिंह, सोनेसिंह, तथा मानगढ़ के राजा गंगाधर, सिंग्रामपुर के राजा देवीसिंह, अभाना के राजा तेजसिंह, कारीजोग खैजरा के ठाकुर पंचम सिंह, किशनगंज के सूबेदार रघुनाथ राव एवं गोविंद राव शाहगढ़ के बोधनसिंह एवं महाराजसिंह, तथा मलखुवां के परमानंद एवं राजधर रावत इत्यादि को अंग्रेजों से युद्ध के लिये प्रेरित किया और दलबल सहित संगठित किया। वखतबली के लघुभ्राता लक्ष्मणसिंह तथा बालसाथी ऊदल सिंह, सबदल सिंह, माधौसिंह, हरबलसिंह, हीरासिंह और गिरवरसिंह भी सेना में शामिल हो गये। वखतबली ने अपनी सुसंगठित सेना को एकत्र कर सेना में शामिल सभी लोगों को अंग्रेजों के विरुद्ध की जाने वाली युद्ध की कार्यवाही एवं गतिविधियों से अवगत कराया। उन्होंने एकत्र सभी लोगों मे फिरंगियों का जाल पूरी तरह फैल चुका है और देश में फैले सभी फिरंगी हमारे दुश्मन हैं और जो लोग अंग्रेजों का साथ दे रहे हैं वे भी हमारे दुश्मन ही हैं। हमें इन दुश्मनों का डटकर मुकाबला करना है। मगर हमारे पास फिरंगियों की भांति अत्याधुनिक हथियारों को की कमी है। फिर भी हमें जो भी उपलब्ध हो देशी तोप गोला, बारूद व देशी तुबक, तमंचा, ढाल, तलवार, छुरा, चाकू, बरछी, बल्लम, फरसा, कतरना, तबल इत्यादि अपने साथ लेकर जगह—जगह जाकर अंग्रेजों पर हमला करके सर्वप्रथम उनके पास रहने वाले हथियारों सहित उनकी संपत्ति को छीनकर हमें अपने कब्जे में लेना है। इसके लिये भले ही हमें फिरंगियों को जान से ही क्यों न मारना पड़े तो इसके लिये हम कतई नहीं हिचकिचायेंगे। क्योंकि इन

फिरंगियों ने हमारे साथ कोई मुरौव्वत नहीं की है वे हमारे देश के लोगों को गाजर मूली की भांति काट रहे हैं। फिर उन्हें जान से मारने में हमें क्या संकोच। यह तो हमारे देश को आन बान और शान की लड़ाई है। इसमें हमें तन, मन, धन और ईमानदारी से अपना सहयोग करना है। इसके लिये हमें जो भी त्याग करना पड़े उससे हमें डरना नहीं है। हमें अपना सर्वस्व त्याग कर अपनी मातृभूमि की रक्षा करना है और भारतमाता को फिरंगियों की कैसे मुक्त करना है जय भारत जय वीर।

सेना में शामिल हुये एकत्र सभी लोगों ने बखतबली के कथनों का जोरदार स्वागत करते हुये जयकारा लगाया। सबने मिलकर कहा जय वखतबली, जय वीर बुंदेला, जय भारत जय बम बम भोला। फिर सेना में सभी शामिल हुये घुड़सवार एवं पैदल सैनिकों ने तुबक, तमंचा, बंदूकें, तोप गोला, बारूद, ढाल, तलवार, बल्लम, फरसा, तलब, कतरना इत्यादि हथियारों से लैस होकर अंग्रेजों से युद्ध के लिये अपनी कमर कसी और वखतबली के नेतृत्व में अंग्रेजों से युद्ध के लिये अपना सीना तान लिया। वखतबली ने युद्ध प्रारंभ करने की नियत तिथि के पूर्व से ही सुसंगठित एवं हथियारों से सुसज्जित बहुत बड़ी सेना लेकर जगह–जगह अंग्रेजों को तलाशकर उन्हें ललकारा कि ''यहां से भागो अरे फिरंगी यह वीरों की है धरती, वरना देखी तलवार है नंगी सिर कलम तुम्हारी करती'' और जब अंग्रेज नहीं भागते तो फिर वे उन पर हमला करके मारधाड़ करते हुये उनके हथियार तथा संपत्ति छीनकर आगे बढ़ जाते। इस तरह उन्होंने धामौनी, पाटन, उल्दन, सानौदा, सागर, खुरई, खिमलासा, खनिया धाना, बीना, बरौदिया, ढाना, रहली, गढ़ाकोटा, दमोह, पथरिया, हटा, हिंडोरिया, नरसिंहपुर, जबलपुर, बरधी, टीकमगढ़, छतरपुर, पन्ना, बल्देवगढ़, नाराहट, तालवेट, महरौनी, बानपुर, धौरीसागर, मदनपुर अमझिरा घाटी, ललितपुर, झांसी, दतिया, कालपी, ग्वालियर इत्यादि बहुत से स्थानों पर दौड़–दौड़ कर अंग्रेजों से भारी मुठभेड़ें ली। और उन्होंने अंग्रेजों को पराजित कर बुन्देलखण्ड के अंग्रेजों को सत्ता को उखाड़ फेंका। पूरा बुंदेलखण्ड जयघोष में गूंज उठा और बुंदेली झंडा लहराने लगा।

२३ मार्च १८५७ को झांसी में रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों से जब घमासान युद्ध किया तब उनका साथ देते हुये वखतबली ने अंग्रेजों से डटकर मुकाबला करते हुये बड़ी वीरता के साथ अंग्रेजों से युद्ध किया। जिसके फलस्वरूप लेफ्टिनेंट वाकर घायल हो गया और वह अपने साथियों सहित प्राण बचाकर भागा। इसके पश्चात् कालपी में जब रानी लक्ष्मीबाई और तात्या टोपे ने युद्ध की अगली कार्यवाही के लिये योजना तैयार की तो उस समय भी वखतबली वहां मौजूद रहे और उन्होंने वहां अमूल्य सुझाव देते हुये कहा कि अंग्रेजों के साथ–साथ अंग्रेज प्रेमी देश के गद्दारों को भी सबक सिखाना जरूरी है। इसलिये हमें अंग्रेजों के चहेते देश के गद्दार ग्वालियर के राजा सिंधिया पर आक्रमण करके ग्वालियर को अपने कब्जे मे लेना है। जिसे सभी ने स्वीकार किया और ग्वालियर पर आक्रमण किया जिससे सिंधिया को अपने अंग्रेज मित्रों सहित ग्वालियर से भागने को मजबूर होना पड़ा। इस तरह क्रांतिकारियों द्वारा ग्वालियर पर कब्जा कर लेने के बाद नाना साहब को वहां का पुनः पेशवा घोषित कर दिया गया। वखतबली ने इस विजय के उपलक्ष्य में विजयोत्सव मनाये जाने के लिये भी सुझाव दिया कि दुश्मनों के घावों पर नमक डालने के लिये अपनी कामयाबी पर यहां शानदार विजयोत्सव मनाया जाय। अतः वखतबली के सुझाव को मानते हुये इस विजय के उपलक्ष्य में वहां नाच गान के साथ शानदार विजयोत्सव भी मनाया गया। इसी तरह पूरा बुन्देलखण्ड फिरंगियों से मुक्त हो गया और बुंदेलखंड के सभी जागीरदार, राजा लोग और आम आदमी संतुष्ट होकर राहत की सांस लेने लगे। जिससे सभी अंग्रेज घबड़ा गये और अंग्रेज कमिश्नर एफ.डी. पिंकने द्वारा ब्रिटिश सरकार को यह खबर दी गई कि बहुत से क्रांतिकारियों के साथ शाहगढ़ के राजा वखतबली ने बुंदेलखंड में जगह–जगह पर आक्रमण करके फौजियों को मार कर यहां अपना कब्जा कर लिया है। यदि यहां ब्रिटिश राज कायम रखना है तो शीघ्र ही पुनः मुकाबला करने के लिये हथियारों से लैस भारी फौजों को तैयार कर भेजा जावे। ताकि सभी क्रांतिकारियों सहित वखतबली को पराजित कर यहां ब्रिटिश राज कायम किया जा सके। ब्रिटिश सरकार यह खबर पाते ही हथियारों से लैस भारी फौजों को तैयार करके बुंदेलखण्ड की ओर शीघ्र रवाना किये जाने के साथ–साथ वखतबली की गिरफ्तारी के लिये दस हजार रुपयों के इनाम को घोषणा संबंधी जानकारी देकर पिंकने को आगाह करती है कि जब तक वहां फौजें नहीं पहुंचती तब तक वखतबली पर कड़ी निगरानी रखी जावे। अतः यहां बचे खुचे अंग्रेजों द्वारा सघन रूप से वखतबली पर निगरानी की जाने लगी। कुछ ही समय बाद ब्रिटिश सरकार द्वारा बुन्देलखण्ड में भारी फौजें भेजी गई जिन्हें ह्यूरोज ने अपने साथ लेकर जगह–जगह पर आक्रमण किया। जिसका क्रांतिकारियों सहित वखतबली ने डटकर मुकाबला किया किन्तु हथियारों से सुसज्जित भारी अंग्रेजी फौजों के सामने वे टिक नहीं सके। ह्यूरोज व उसकी फौजों ने क्रूरतापूर्वक बहुत से क्रांतिकारियों को मौत के घाट उतार दिया। अठारह जून अठारह सौ अंठावन को ह्यूरोज ने भारी फौजों को अपने साथ लेकर ग्वालियर पर भी हमला कर दिया। जिसके परिणामस्वरूप क्रांतिकारियों के साथ भारी घमासान युद्ध हुआ। इस युद्ध में अनेक क्रांतिकारियों सहित झांसी की रानी लक्ष्मीबाई शहीद हो गई और बखतबली मुकाबला करते हुए बच निकले। किन्तु

नाना साहब ने वखतबली को पुनः ग्वालियर बुलाया तब वखतबली अपने कुछ साथियों को लेकर ग्वालियर की ओर पुनः रवाना होने को तैयार हुये तो उनकी पत्नि क्रांतिरानी चिंतित हो गई मगर वे रानी से विदा लेकर ग्वालियर को और प्रस्थान कर गये। इसी बीच रास्ते में मदनपुर में अमझिराघटी के समीप ह्यूरोज ने भारी फौजों के साथ वखतबली पर हमला कर दिया। जिसका वखतबली ने डटकर मुकाबला किया और वहां अंग्रेजों से भारी घमासान युद्ध हुआ। जिसमें वखतबली के छोटेभाई लक्ष्मणसिंह सहित बहुत से वीर शहीद हो गये तथा मर्दनसिंह किसी तरह वहां से भाग निकले। पर वखतबली अंग्रेजों के चंगुल में फंस गये। किसी तरह वे भी अंग्रेजों के चंगुल से भाग निकलने में सफल हो गये। किन्तु उनकी तलाश करते हुए ह्यूरोज ने भारी फौजों को अपने साथ लेकर शाहगढ़ आकर वखतबली के किले को घेर लिया तथा गोला बारूदी सुरंगों से किले को ध्वस्त कर दिया। साथ ही सभी संपत्ति लूटकर अपने कब्जे में कर ली। वखतबली और लक्ष्मणसिंह निःसंतान थे फिर भी लक्ष्मण सिंह की पत्नी सरोजरानी अंग्रेजी विस्फोट से मारी गईं। साथ ही अन्य जो भी लोग किले में चौकसी हेतु मौजूद थे वे भी मारे गये। वखतबली की पत्नी क्रांतिरानी मात्र जीवित थीं, उन्हें ह्यूरोज ने अपने साथ ले जाने के लिये जबरदस्ती की। मगर क्रांतिरानी ने उसका विरोध किया जब वह नहीं माना तो उन्होंने विवश होकर आत्महत्या कर ली। वखतबली किले में नहीं थे वे बानपुर राजा मर्दनसिंह को तलाशते हुये ग्वालियर की ओर जा रहे थे। ह्यूरोज उन्हें खोजता हुआ बानपुर जा पहुंचा और राजा मर्दनसिंह के किले को ध्वस्त करता हुआ वहां की संपत्ति को अपने कब्जे में करके वखतबली की खोज में ग्वालियर की ओर रवाना हो गया।

वखतबली, मर्दनसिंह को तलाशते हुये ग्वालियर जा पहुंचे। जब उन्हें अंग्रेजों द्वारा किला ध्वस्त किये जाने और संपत्ति लूटकर अपने कब्जे में करने तथा क्रांतिरानी सहित अन्य सभी के मारे जाने की जानकारी मिली तो उनका खून खौलने लगा वे बौखला गये तथा कुछ विक्षिप्तावस्था में हो गये। मर्दनसिंह भी वहीं मौजूद थे किन्तु वे भी अत्यंत दुखी थे। मर्दनसिंह एवं वखतबली की यह हालत देखकर नाना साहब ने उनहें ढाढस बंधाया। किन्तु उन्हें यह दुख झेल पाना मुश्किल हो रहा था। फिर भी संकट के समय का आभास करते हुये नाना साहब के समझाने पर वे सचेत हो गये और अंग्रेजों से मुकाबला करने की योजना बनाने लगे। इसी समय ह्यूरोज बहुत भारी फौजों को लेकर ग्वालियर जा पहुंचा और वहां हमला कर दिया। हमले से बचने के लिय बखतबली मुरार की ओर भागे किन्तु ह्यूरोज ने फौज लेकर उनका पीछा किया। और पीछा करते हुए उसने बखतबली का घेराव कर २८ सितम्बर १८५८ को मुरार के समीप उन्हें गिरफ्तार कर लिया। वखतबली को गिरफ्तार कर वह लाहौर ले गया और वहां हाकिमराय की हवेली में उन्हें नजरबंद कर दिया। अंग्रेज सरकार द्वारा वखतबली को फांसी दिये जाने की कार्यवाही की जा रही थी। मगर जब वखतबली की गिरफ्तारी के बाद रानी विक्टोरिया ने नाना साहब से क्रांतिकारी गतिवधियों को रोकने हेतु आग्रह किया तो नाना साहब ने उनसे कहा कि यदि बखतबली सहित गिरफ्तार किये गये क्रांतिकारियों को अंग्रेज सरकार द्वारा फांसी दिये जाने की कार्यवाही की गई तो क्रांतिकारी गतिविधियों का रुकना असंभव रहेगा। इस पर रानी विक्टोरिया ने उन्हें यह आश्वासन दिया कि वखतबली सहित जो भी क्रांतिकारी गिरफ्तार किये गये हैं उनके खिलाफ अंग्रेज सरकार द्वारा फांसी दिये जाने की कार्यवाही नहीं की जावेगी। बल्कि उन्हें केवल नजरबंद कैदी के रूप में सभी सहूलियतों के साथ रखा जावेगा। तब नाना साहब ने आश्वस्त होकर क्रांतिकारी गतिविधियां समाप्त कर दीं। वखतबली लाहौर में नजरबंद थे लाहौर में नजरबंद रहना उन्हें बर्दाश्त नहीं हो रहा था। इसलिये वे वहां से निकलने के लिये छटपटा रहे थे तथा वहां से निकलने का भारी प्रयत्न कर हे थे। इसी उधेड़बुन में वखतबली ने वहां से वृन्दावनधाम आने का निश्चय किया। चूंकि इनके पूर्वजों द्वारा ठाकुर श्री गोरेलाल की कुंज वृन्दावनधाम हेतु छतरपुर के ग्राम पड़रिया एवं भुजपुरा में श्रीराधाकृष्ण भगवान के मंदिर बनवाये गये तथा पूजा हेतु मंदिर के लिये बहुत सी जमीन प्रदान की गई। इसके साथ ही साथ काफी आर्थिक सहयोग भी किया गया। इतना ही नहीं बल्कि इनके पूर्वज छत्रसाल के समय से ही वृन्दावनधाम के प्रति सभी का अटूट प्रेम रहा है। इसलिये वखतबली ने लाहौर से वृन्दावनधाम के प्रति सभी का अटूट प्रेम रहा है। इसलिये वखतबली ने लाहौर से वृन्दावनधाम आने का निश्चय करके अंग्रेज सरकार से तबादले की मांग की। जिसे अंग्रेज सरकार ने स्वीकार करते हुये वखतबली को लाहौर से वृन्दावन भेज दिया। साथ ही उन्हें गुजारा भत्ता देने हेतु एक हजार रुपये मासिक पेंशन भी स्वीकृत की। जिसे वखतबली ने ग्राह्य नहीं किया बल्कि वृन्दावनधाम आकर श्री ठाकुरजी के चरणों में समर्पित कर दिया।

वखतबली ने नजरबंद कैदी के रूप में लाहौर से वृन्दावन धाम आने पर ठाकुर श्री गोरेलाल की कुंज के तत्कालीन आचार्य श्री गोपी बल्लभदास जी महंत को साष्टांग प्रणाम किया और उनकी सेवा करते हुए भगवत् भक्ति व पूजा कर धार्मिक लाभ लेते हुये अपना जीवन व्यतीत करना प्रारंभ कर दिया। मगर वखतबली नजरबंद कैदी के रूप में घुट-घुटकर जी रहे थे। उन्होंने अपना सर्वस्व त्यागकर देश की आजादी के लिये अंग्रेजों से जीवन पर्यन्त संघर्ष करते हुये १८५७ के

बुन्देली की उपबोली बनाफरी

— डॉ. श्रीनारायण पाठक

साहित्य के क्षेत्र मा खड़ीबोली हिन्दी के व्यापक प्रभाव के राहत भाये भी हिन्दी की अन्य प्रादेशिक बोलयाँ अपने–अपने प्रदेशन मा आज भी जीवित अवस्था मा है। मध्यप्रदेश के गाँवों की सब जनता अबै भी खड़ी बोली के सिवाय बृज, अवधी, बुन्देली, भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी आदि बोलियों तथा उनकी उपबोलियों के आधुनिक रूप का व्यवहार करत है।

बुन्देलखण्ड मा चन्देल राजाओं का राज्य राहै तथा महोबा के राजा परमाल को पृथ्वीराज ने ११८२ ई. के लगभग हराओ रहो वा युद्ध में परमाल के सेनापति भाइयों और ऊधल जो बनाफर वंश के रहै। इस युद्ध मा अत्याधिक शौर्य प्रदर्शित करो पर वे मारे गे और पृथ्वीराज कै विजय भय। परन्तु चौहान बुन्देलखण्ड पर अधिक समय तक अधिकार न रख पाये। और ११८३ ई. मा वहां फिर से चन्देलों का शासन स्थापित हुइगा तथा १३०० ई. तक बुन्देलखण्ड के कुछ भागों मा उनके बंशज राज्य करत रहे।

बाँदा और उसके आसपास चन्देलों के सामन्त बनाफर क्षत्रियों के आधीन राहै। बनाफर क्षत्रिय जो बोली बोलत ते वह बनाफरी नाम से जानी गयै।

चन्देल शासक परमाल के प्रमुख सेनापति आल्हा और ऊदल नामकै दो प्रतापी बनाफर वंश के रहे, उन्हीं की बोली को बनाफरी कहो गा है। ऐसई पृथ्वीराज रासो मा वर्णित भी है।

इतिहासकारों का वहीं दूसरा मत यह है कै बांदा के आसपास बहुत जंगल राहै तथा वहां के मूल निवासी वन मा राहतते, तासे वहाँ बोलन बाली बोली खाँ बनाफरी या जंगली कहा जान लाग। यही कारण राहै कि बनाफरी उपबोली का विकास उतनी मात्रा मा नहीं भा जितना होव चाही। बनाफरी उपबोली का साहित्य अधिकतर मौखिक रूप मा हैं बनाफरी का बहुत सा साहित्य इधर–उधर घूमने वाले गायकों, अनपढ़ बरेदियों व देहातियों की जीभ मा निवास करत है।

बनाफरी का उत्थान कालान्तर मा एक भी नहीं भाय। उसका कारण हमारी समझ मा यह आवा है उसे देहाती के नाम से ज्यादा जानों जात है तथा उसके बोलै बालों खाँ अबै भी सभ्य समाज मा अनपढ़ या गवईयाँ के खिताब से नवाजा जात है फिर बनाफरी मा साहित्य रचना कैसे संभव है। फिर भी बनाफरी का आनन्द आप लोग गाँव मा जाकर स्वयं ले सकत हऊ, जहां ग्रामीण मजदूर–मजदूरी करत भये कुछ न कुछ गुनगुनावत भयै मिल जैइहै। जैसे पनघट का रहस्य ही देखा —

''पनघट पैय कान्ह मत हमरे रार मचाओ।
रस्ता लो अपनी सीधे घर को जाओ।।
देखौ मुकन्द वृन्दावन चन्द बिहारी।
अति तंग आगई तुमसे ब्रज की नारी।।
मत बुरा मानना मन में कुछ बनवारी।
है एक छेड़ की जहान में सौ गारी।।
जो गरोगे करनी वैसा ही फल पाओ।
रास्ता लो अपनी सीधे घर को जाओ।।

उक्त लाइनों में गोपियों के साथ कृष्ण की छेड़छाड़ का मोहक दृश्य दिखात है। गोपियां उनसे विनती करत है कि हे कृष्ण तुम सीधे अपने घर को जाओ, हमें नाहक परेशान न करो।

यहीं से मिलत भा एक उदाहरण और देखा —

''बालाकपन ही में हाल यह है अतन का जब तन में जोर होगा
सुनों मात ये तुम्हारा लाला करेगा क्या जब किशोर होगा।
दधि बेचन जाती हूं, सखिन संग तो वेग मारग में आन हमसे।
सखा जोर घेर के अंगारी दिखात है भारी शान हमसे।।
कर बताय करके बरजोरी करे है बातैं वो कान हमसे।
रख गोरख गोरसों का हंस–हंस हमेशा मांगे है दान हमसे।।
न देय यदि तो पटक दे मटकी न कोई ऐसा कठोर होगा।
सुनो मात ये तुम्हारा लाला करेगा क्या जब किशोर होगा।''

बुन्देलखण्ड सैकड़ों मील लम्बा चौड़ा एक बड़ा क्षेत्र आय। यहै कारण आप की बोली बोलय के ढंग मा स्थान भेद

स्वाधीनता संग्राम में अपना अमूल्य योगदान किया। और अंत में देश की आजादी की आस लिये एक नजरबंद कैदी के रूप में अंग्रेजों द्वारा मिली पीड़ा को अपने साथ लेकर २९ दिसम्बर १८७३ को वखतबली ने अपने प्राण न्यौछावर कर दिये। ठाकुर श्री गोरेलाल की कुंज वृन्दावन धाम स्थित समाधि एवं खंडहर और धराशायी होता अवशेष मात्र शाहगढ़ स्थित किला बुंदेली इतिहास के एक भूले–बिसरे महापात्र छत्रसाल वंशज नरेश वखतबलीशाह द्वारा देश के प्रति किये गये त्याग के प्रमाण के रूप में आज भी विद्यमान हैं। किन्तु बुंदेली माटी के इस वीर सपूत द्वारा किये गये त्याग से हमारा देश भी बिल्कुल अछूता एवं बेखबर है।

□–तिवारी टाइपिंग इंस्टीट्यूट,शाहगढ़ जिला सागर म.प्र.

के कारण पर्याप्त मिलता है जैसा कि एक लोकोक्ति मा कहो गा है—

"चार कोस मा पानी बदलै,
आठ कोस मा बानी।"

बुन्देली के उप बोलियों के विवेचन मा इतना तो सही आय कै बुन्देलखण्ड एक बड़ा क्षेत्र बाला प्रदेश आय और बुन्देलखण्ड मा बोली जाये बाली बुन्देली एक विभाषा होत भये भी जातीयता और क्षेत्रीयता के आधार पै अनेक रूप मा बटी है।

बनाफरी का उद्भव और विकास :

बनाफरी के विकारा का उद्भव के बारे मा ठीक—ठीक तो कुछ भी नहीं कह सकत हैनें, पर बनाफरी कै शब्द रचना अवधी और बृज भाषा की शब्द रचना से मेल खात ही, सो हम कह सकत हैन कि बनाफरी अवधी और ब्रज भाषा के अनुगामी आये ऐसा लागत है कि बनाफरी मा साहित्य सृजन कम भा है, यही कारण है कि बनाफरी का विकास अपेक्षानुसार नहीं भा।

बनाफरी की सीमा :

बनाफरी बुन्देलखण्ड की प्रमुख उप—बोली आये। जैसा कि पहले बता दये है कि बनाफरी बनाफर क्षत्रीय जाति के नाम पै पड़ा है। बनाफर का रूप शुद्ध कर दयो जाय तो वह शुद्ध खड़ी बोली बन जई।

यह सत्य आये कि बनाफरी कै छाया निभट्टा, के साथ—साथ खटोला, लुघयांती, कुण्डी और पवारी मा भी दिखात है।

जेइसे हम कह सकत हैंन कि बनाफरी का क्षेत्र लौड़ी के आगे चन्दला, सरबई, गौरिहार, मटौध, बारीगढ़, बांदा, महोबा, चरखारी, राठ, झांसी, मऊरानीपुर, करतल अजयगढ़ के आसपास के दिहाती क्षेत्रों मा बनाफरी का असर देखो जा सकत है।

यहाँ बनाफरी में एक दिवारीगीत देख सकत हैन।

"अरे गईयाँ गई गंगवारे, भैंसे गई बड़ी दूर रे।
अहिर के लड़का ने मारी लाटी, तो झरे कमल के फूल रे।।

जहाँ बनाफरी बोली जात है एक क्षेत्र को बनफरी कहत है, पूरे बनफरी क्षेत्र मा दिवारीगीत का अलग ही महत्व है। यह दिवारीगीत वैसे तो पूरे बुन्देलखण्ड मा गाओ जात है। दिवारीगीत अहीरजाति द्वारा गाओ जात है। कार्तिक महीना लागत ही इन गीतों का गायन शुरू हो जात है और विभिन्न मंडलियां त्यौहार के आगे से तैयारी करै लगती है। दिवारी गीत मा कई प्रकार की शैलियों का प्रयोग करो जात है। वाद्य यंत्रों मां मृदंग, ढोलक, कसावरी, नगड़िया और लकड़ी के छोटे—छोटे डण्डों का मुख्य रूप से प्रयोग करो जात है। दिवारीगीत के साथ लोक नृत्य, लोक वेशभूषा के साथ सम्पन्न होत है। जिसमें मोटे रंगीन कपड़े के जांघिया और बनियान के साथ घुंघरू और फुचकनदार जाली पहिने राहत है। यहां दिवारीगीत का एक नमूना देखत बनत है —

"धनुष चढ़ायो राम ने, सो चकित रये सब भूप रे।
मगन भई सिया जानकी, सो देख राम को रूप रे।।
आज दिवारी इते है, पैले पार है काल रे।
बाजत आवै ढोल सो, नाचत आवे ग्वाल रे।।"

बनाफरी और सैरा :

बनाफरी उपबोली की चर्चा मा अगर सैरा खाँ छोड़ दयो जाय तो बनाफरी अधूरी कहाई। सैरा की लेखनी वा गायन पूरी तरह से बनाफरी उपबोली पर अधारित है। सैरा के फड़ वर्षा ऋतु शुरू होत ही जमै लागत है, जबकि काली घटा आकाश मा घुमड़न लागत है तथा धरती मा पानी पै पानी दिखात है और धरती पै हरियर—हरियर चारा दिखान लागत है। ताला—तलैइया भर जात है। सबरी धरती व पहाड़ हरियाली से लद जात हैं तथा किसान अपनी खेती से निपट जात है। व्यापार बन्द होय जात है एवं हिन्दू त्यौवहार शुरू होय जात है। रात मा तारे बादल मा छिप जात है तथा बिजली उन्हें ढूंढन लागत है, तभी सैरा कै बैठक गाँवन मा शुरू होय जात है। जिही सुनकर लोग समझ जात है कि सैरा शुरू होइगा। ढोलक का स्वर बाजत ही ऐसा लागत है, मानो जंग कै ऐलान करो जात है। सैरा वीर रस से भरो राहत है, जिही सुनतै जनमानस का खून खौलै लागत है। पूरा वातावरण वीररस से सन जात है। सैरा मुखाग रूप से गाओ जात है। यहाँ तक कई सैरकार बहुत सी लड़ाइयाँ याद राखत हैं। सैरा के सबसे अच्छे प्रसंग "मलखान का विवाह", कजलियाँ, 'आल्हा मनौवा' 'आल्हा का विवाह' आदि है।

बनफरी मा वीर रस खाँ महत्व ज्यादा दयो जात है उदाहरण देखत बनत है —

"बारा बरस लौ कूकर जीबै, और तेरा लौ जिये सियार।
बरस अठारह छत्री जीयै, आगै जीबै तो धिक्कार।।
खटिया पर कै जो मर जावै, डुबा जाय पुरखन कौ नांव।
सामू मरके रन में मरे जो, ऊखों मिले इन्द्र कौ ठांव।।"

आजकाल तो आल्हा की तर्ज पै कई प्रकार के सैरा लिखे जात है, उसमें एक राष्ट्रीय सैरा भी है। सैरा गावै वाले सैरकार कहावत हैं। सैरकार सैरा मा अनेक छन्दों व शैलियों का प्रयोग करत है जैसे — ख्याल—लावनी, छप्पय, दोहा, सोरठा, सैरे, चौपाई, श्लोक आदि आवत हैं। सैरा गावै वाले सैरा खाँ और अधिक रोचक बनावै के लाने अपने तरफ से छन्दों मा अपनी और कुछ दूसरों की रचनाओं का प्रयोग

अवसर के अनुरूप करत राहत है। बनाफरी में इस सैरा का बहुत प्रचार है। वर्षा के दिनन मा दिन के सिवाय रात मा भी फड़ लागत है। यहां तक कै कबऊँ—कबऊँ सात बजे शाम से पांच बजे सबेरे तक जम जात है। आल्हा—ऊदल कै युद्धकला का यहाँ वर्णन देखो जा सकत है —

''बाजा डंका जब लश्कर में, क्षत्री सबै भये हुशियार।
झीलम बख्तर पहिन हिपाहिन, कम्मर बांध लीन तलवार।
रम की मौहर बाजन लागी, रन का होन लगो व्यवहार।
सबसे पहले रस बेंदुल पर, ऊदल फांदि भयौ असवार।
घोड़ करेलिया आल्हा बैठे, मलखे चले कबूतरी जाय।
घोड़ी सिंहन की पीठी पर, चाचा चढ़े तलसीराय।
धांधू बेटा बिन्दुमती का, गज गाहन पर हुआ सवार।।''

ऐसई मलखान की क्षत्रियोचित अनुपम वीरता का बड़िया चित्रण करो गा है —

''लाज गई बछराज के संग
तलवार गई मलखान अकेले।
काढ़ि के तेग फिरै दल में,
पृथिराज की फौजन मारिके ठेले।
लोहू के नारे पनारे बहै,
सु मनो रंगरेज कुसुम्म सनेले।
'ढाढ़ी' कहैं मलखान कि नारि,
किं आवत कन्त वसन्त के बेले।

उपरोक्त लोक साहित्य के अलावा लोक मानस मा अन्य लोक साहित्य जैसे लेद, कवित्त, सवैया और कीर्तन आदि साहित्य विद्यमान है। अत: हम कह सकत हैन कि बनाफरी मा लोक धारणा, आचार और विश्वास अधिक प्रबल है।

बनाफरी पहेलियाँ :—

पहेलिन का उत्तर देव आवश्यक मानौ जात है, यही से इन्हें बुझौअल भी कहो जात है यामै बुद्धि चातुर्य व प्रति उत्पन्नमति का परीक्षण करो जात है — जैसे —

''लाल मुंड मुर्गा नहीं, लम्बी पूँछ नहीं मोर।
नील कंठ शंकर नहीं, चार पांव न ही ढोर।।''

पहेलियन मा बुद्धि के साथ—साथ भाव कै भी प्रधानता होत ही जैइसे —

१. खेती के सामान मा, अच्छर बाके तीन।
पहलो अच्छर छाँड़ के, ब्याह राम को दीन (हंसिया)

२. चार खूंट का चौपरा, नब्बे गज कै डोर।
राजा गये शिकार खां ऊपर नाचे मोर।। (पतंग)

३. लाल—लाल गुटकूं, मैं हाथ डालूँ तुझ कूँ।
तू काट खाय मुझुकूँ, मैय लैय उड़ाऊँ तुझकूँ।। (बेर)

४. तनक सा लड़का ब्राह्मन का, तिलक लगाये चन्दन का। (उरदा)

५. सफेद बिल्ली हरी पूंछ, बने तो बताओ, नहीं तो अम्मा से पूंछ। (मूली)

६. एक लाये, दो मिचकी। (दातौन का कांका)

७. एक गांव में ऐसा हुआ, आधा बगला आधा सुआ। (मूली)

८. एक गांव मा ऐसी रीत, आधे उलटे—आधे सीध। (छावनी के खपरा)

९. पांव पसारे या घर मा, बाबा सोवै वा घर मा। (घुआं)

१०. यहाँ गई वहां गई, लाल बटाईया गाड़ गई (आगी)

बनाफरी लटके ढकोसले :

लटके बड़े मनोरंजक और हास्यास्पद होत है, इनमा बेसिर—पैर की बातें होत हैं जैसे हम देख सकत हैं —

लुखरी का बच्चा शीला बीने,
भौजी लये कलयावा जाये।
०० ०० ००
आल्हा मरगा आलू खाँके,
ऊदल मरा टमाटर खाये।।

ढकोसलों मा यही तरह की बातें होत है, जिनका कौतूहल तथा आश्चर्य होत है। इनका उद्देश्य भी हंसाब राहत है।

बनाफरी कहावतें और लोकोक्ति :

बनाफरी मा कहावतों और लोकोक्तियों का अलगई महत्व है। अपने कथन खाँ सही ठहरावै के लाने या शिक्षा व चेतावनी देवै के लाने कौनौ बात की आड़ लेकर जिस लोक प्रचलित उक्ति का लोग प्रयोग करत है, उही लोकोक्ति या कहावत कहत है। बनाफरी मा कहावतें कई तरह की है। कुछ पद्य मा है तो कुछ गद्य मा है, इनमा से कुछ के जन्म का आधार संस्कृत कै शिक्षाप्रद सूक्तियां है, तो कुछ का जन्म लोक मा ही भा है, जिनका आधार पता नहाय। फिर भी इनका प्रयोग ग्रामीण लोग अपने रोज—मर्रा मा खूब करत है।

डॉ. बाबूराम जोशी के मुताबिक व्यंजना व्यभव के कारण कहावतों का चलन इतना अधिक होत है कि प्रसंगानुसार लोगों के मुँह से कोनउ न कोनउ कहावत जरूर निकल आवत ही, जैसे —

''गांव मा आई डोरी, का माते का कोरी।''

बनाफरी में कहावतों की संख्या कई हजार हुई जो बनाफरी साहित्य खा आकर्षक बनावै और प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के लाने कहावतों का प्रयोग स्वाभाविक लागत है।

१. ना ऊँधौ का लेना, न माधौ का देना।
२. बिच्छू का मंत्र ना जानै और सांप के बिले मा हाथ घुसेड़े।
३. कानी अपनी टेंक न देखे, दूसरे हां पर–पर देखे।
४. करिया बावन्ह गोर चमार।
बिलरा ठाकुर महा गवार।।
५. मछली भखी तो सब भूखौ, बाचो न कोनऊ मांस।
लाला घर भोजन करो, तौ बची न कोनऊ जाँत।।
६. ऊधोगुण बृजराज के, कासे कहिये आज।
अपनी जाँघ उधारिके, आपहि मरिये लाज।।
७. पिसान सा पीस दैइहो।
८. भरता सा भूंज दइयो।

बनाफरी मुहावरे :

बनाफरी लोक साहित्य या कहावतों की तरह मुहावरों का भी प्रयोग खूब भा है, जहे से बनाफरी की सशक्तता का पता चलत है। कहावतें अपरिवर्तित रूप के प्रयोग मा लाई जात है, वहां मुहावरे वाक्य रचना के अनुसार बदलत राहत है। कहावतें प्रभावात्मकता मा बढ़ोत्तरी करत है तो मुहावरे भाषा खाँ गति प्रदान करत है। मुहावरों के प्रयोग मा एक ऐसी सरसता उत्पन्न कर देत है, जामें विचार या भाव प्रकट करे मा बड़ी सहूलियत मिलत ही। मुहावरों का प्रयोग बनाकरी की प्रमाणिकता सिद्ध करत है जैइसे –

१. तोर ठठरी बारों।
२. आँख चैथी पर है का?
३. खीसा निकालना।
४. आँधर हा का?
५. सावन सा हरा दिखात है।
६. कुत्ता कै पूंछ आय।
७. सांप सूंघ गा है।
९. करिया मुह करा।
१०. कुल दीपक आय।

याखे अलावा आंख मा धूरा डालना, एक हाथ से ताली नहीं बाजै, बखेड़ा खड़ा करना, खैर मानना, आदि अनेक मुहावरों का प्रयोग बनाफरी मा खूब दियाखै खाँ मिल जात है।

या तरह से हम कह सकत हैंन कि बनाफरी उपबोली अपने आप मा खूब सम्पन्न है और वाखी सब विधाएँ पर्याप्त विकसित है, जिनमा लोक की धारणा, आधार और विश्वास के दर्शन होत है।

बनाफरी और बनफरी :

बनाफरी उपबोली बोलन बालों को बुन्देलखण्ड मा बनफरी क्षेत्र से जानो जात है, जैइसा कि पहले बता दयो है, कि बनफरी लोग वीर बांकुरे होत हैं। बनाफरी लोक कथाएं और लोकगीतों मा भी वीरता कै भावना वहात है। वीरगाथाओं के अलावा प्रेम कथात्मक ऐतिहासिक, धार्मिक कथात्मक आदि लोकगाथाओं मा भी यही वीर प्रवृत्ति दिखाई पड़त है।

"सदा तुरइयाँ न फूलै, सदा न सावन होय।
सदा न कन्ता रन चढ़े, सदा न जौवन होय।।

कर्मठता बनाफरियों की नस–नस मा समाई रहत है। ये अपने बाजुओं पै विश्वास राखत है। औरतें गीत गाकर ढेर सारा काम कर लेत है तथा आदमी हँस–हँसकर खेतन मा दिन–रात पसीना बहावत है।

बनफरी के लोग गौरवपूर्ण भावना से मंडित राहत है तथा यहां के लोगो का सत्य वचन मा अटूट विश्वास राहत है। यही कारण आय कि सत्य बचन बोलब अपना धर्म मानत है।

बनफरी में प्रेम भी शाश्वत है और उनकी अभिव्यंजना बनाफरी मा खूब दिखात ही। यही तरह वहाँ कै लोक कथा भाग्यवाद खाँ बढ़ावा देत ही। जैइसे –

विधि ने जौन भाग मालिख दओ, कौन मिटावन हारो।
सब खा परत भोगने सुख–दुख, बूड़ो हो या बारो।।

बनफरी का लोकमानस कर्मवाद या भाग्यवाद में विश्वास करत है। यह विश्वास लोकगीतों मा भी पाओ जात है।

बनफरी भोजन मा ही कछु व्यंजन अइसे हैं जो विशेष मौसम मा बनाये जात है और उई इतने सहज उपलब्ध होइ जात है कै सबै लोग बड़े चाब से वाखा आनन्द उठावत है जैइसे मुरका, बिरचुन, सितुआ कोहरी एवं ठुभरी आदि। तम्बाकू के बिना यहां के लोग एक भी रात नहीं बिताय सकत आये। यही कारण आय कि उई कह उठत हैं कै –

तम्बाखू नइयां कैसे कटे सारी रैन,
०० ०० ००
जब डबिया में रहै तमाखू, लम्बी मारै पीक।
जब डबिया की चुकै तमाखू, घर–धर माँगे भीख।।

बनफरी के निवासी और उनकी सांस्कृतिक परम्पराओं की परख हमै बनाफरी लोकगीतों, लोकगाथाओं, लोककथाओं में चित्रित प्रेम, सत्य, त्याग, बलिदान, नैतिकता, धर्म व भाग्यवादिता, रहनसहन, खानपान, रीतिरिवाज आदि का अध्ययन करै से ज्ञात होत है।

अतः अन्तमा हम यह कह सकत है न कै बनफरी मानव के विकास मा बनाफरी संस्कृति का बहुत योगदान है वह मानव आय जो संस्कृति रूपी विरासत का पीढ़ीदर पीढ़ी हस्तांतरित कर रहो है, अन्यथा यहीका अवशेष लेश मात्र भी न बच पावै। बनाफरी उपबोली बनफरी के निवासियों का पूर्ण प्रतिबिम्ब आय।

—म.प्र. विद्युत मंडल, छतरपुर

गाँव के लिये साहित्य

— डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त

भारत एक विशाल प्रजातंत्रात्मक राष्ट्र है, जिसमें अनेक जातियाँ–प्रजातियाँ, वर्ग–समुदाय आदि निवास करते हैं और जो विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, आचार–विचारों और सांस्कृतिक समवायों (पैटर्नस्) को मानकर वैविध्य का जीवित चित्र खड़ा करते हैं। इस चित्र की केवल एक रेखा ही लें, तो इस प्रजातंत्र में पचहत्तर–अस्सी प्रतिशत गांव हैं और बीस–पच्चीस प्रतिशत नगर। स्पष्ट है कि गाँव बहुसंख्यक हैं और गणतंत्र में बहुसंख्यक गाँवों की भागीदारी अधिक होना चाहिये, पर वास्तविकता कुछ और है। गाँव हर क्षेत्र में हर तरफ से उपेक्षित है। चाहे राजनीतिक प्रतिनिधित्व हो, चाहे सामाजिक महत्ता और चाहे आर्थिक आत्मनिर्भरता हो, चाहे सांस्कृतिक निष्ठा: नगर हर बार बाजी मार लेता है। बहुसंख्यक होते हुए भी गाँव हमेशा घाटे में रहा है और अल्पसंख्यक नगर लाभ की पूरी फसलें काटकर अपने खोंड़ों में भरता रहा है। अतएव हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि इस प्रजातंत्र में गांव को न्याय नहीं मिला। मुश्किल तो यह है कि गाँव ने अपने हक तक की माँग नहीं की, संघर्ष करना तो दूर रहा।

संस्कृति की दृष्टि से देखें, तो गाँव सांस्कृतिक परम्परा को अपने लोक–जीवन में जीकर सहेजता रहा है, जबकि नगर उसकी अधिक चिन्ता न कर बाहरी संस्कृति की हवा में सांस लेना उचित समझता रहा है। आश्चर्य यह है कि सांस्कृतिक केन्द्र नगरों में ही होते हैं और सांस्कृतिक परम्परा और प्रगति की खोज करना उनकी जिम्मेदारी है, लेकिन यह सब काम संस्कृति पर लिखी गयी पुस्तकों के आधार पर हो जाता है। केन्द्रों से गावों के लिये खोजी दल जाते हैं, तो पिकनिक करने की मुद्रा में। नगर की उपभोक्तावादी आंख जीवन से जुड़ी गांवों की संस्कृति को ठीक से पहचान नहीं पाती। वास्तव में, गाँवों की संस्कृति यानीकि लोकसंस्कृति आचरण की संस्कृति है, करनी की संस्कृति है, इसलिए वह गाँव के गँवारों के आचरण और कर्म में जीवित रहती है, जबकि नगर के पास उनके आचरण जानने का समय ही नहीं होता। गाँवों की संस्कृति की परख तभी हो सकती है, जबकि खोजकर्ता स्वयं गाँव का गँवार बन जाये और गाँव के स्तर पर गाँव का साक्षात्कार करे। एक अजीब बात यह है कि भारतीय संस्कृति लोकसंस्कृति से ही अधिकतर प्राणद्रव लेती है और उस लोकसंस्कृति का आधार है गांव का गंवार लोक, लेकिन नगर का सभ्य नागरिक उसे गंवार कहता है और अपने को सुसंस्कृत। दूसरे नगर गांवों की संस्कृति को प्राचीन रूढ़िबद्ध कहता है, जबकि लोकसंस्कृति लोक में बदलाव आने पर बदल जाती है। नगर को भरम है कि नगर की संस्कृति ही आधुनिक है, जबकि संस्कृति में कृत्रिम और विजातीय तत्वों की घुसपैठ सांस्कृतिक प्रदूषण ही है।

साहित्य की रचनाधर्मिता और श्रेष्ठता की दृष्टि से गांव और नगर का विभाजन अथवा गाँव और नगर के साहित्यि की अलग–अलग मूर्तियाँ खड़ी करना उचित नहीं है और न मैं इस निबंध के द्वारा ऐसा कोई बँटवारा करने के पक्ष में हूँ। इतना अवश्य है कि राष्ट्रीय साहित्य में गाँवों के उपेक्षित साहित्य को सम्मिलित करने और उनके रचनाकारों को राष्ट्रीय धारा से जोड़ने के लिये एक सार्थक पहल अति आवश्यक है। दूसरे, बहुसंख्यक गाँवों के हित के लिए यदि साहित्य की उपयोगिता है, तो गांवों और उनसे संबंधित विभिन्न विषयों पर साहित्य का सृजन निश्चित ही महत्वपूर्ण है और वह गाँवों के जागरण से राष्ट्रधर्म का निर्वाह ही करेगा। दोनों दृष्टियों से विचार करना इसलिये भी जरूरी है कि आज के संवेदनहीन, मूल्यविमुख और बाजारसिद्ध जलवायु में संवेदनशील संस्कृति की फसल को कई खतरे हैं और मनुष्यत्व की रक्षा का भी एक गम्भीर प्रश्न हमारे सामने है। चूंकि हमारा राष्ट्र गाँवों और जनपदों का राष्ट्र है, इसलिए यह हमारे लिये राष्ट्रीय महत्व का प्रश्न है।

आज हर क्षेत्र में राजनीति का बोलबाला है। साहित्य में भी राजनीति का हस्तक्षेप स्वाभाविक है। कुछ तो साहित्यिक नेतागिरी ही करते रहते हैं। विचित्रता यह है कि बहुसंख्यक गाँवों पर अल्पसंख्यक नगरों की राजनीति हावी रहती है। साहित्य में भी बहुत कुछ यही स्थिति है। नगरों में साहित्य की छोटी–बड़ी संस्थाएँ हैं, केन्द्र हैं, साहित्य के महत्वपूर्ण प्रतिनिधि हैं और उन्हें सम्मानित–पुरस्कृत करने वाले अभिजन हैं। विश्वविद्यालय भी नगरों को गौरवान्वित करते हैं और उनके हिन्दी विभागों के आदान–प्रदान के व्यापार नगरों से ही चलते हैं। इन्हीं करणों से नगर का साहित्यकार अनेक सुअवसर पा जाता है और गाँव का वंचित रहता है। मेरे मित्र एक कहानीकार हर दो–चार महीनें में दिल्ली जाते रहते हैं और वहाँ किसी–न–किसी गुट से जुड़े रहते हैं। उनका कहना है कि संबंधों को ताजा करने और साहित्यिक गतिविधियों को समझकर अपनी गति को दिशा देने के लिये दिल्ली में दो–चार दिन रहना पड़ता है। कुछ बड़े–बड़े साहित्यकारों की भीतरी कमजोरियों का वर्णन कर उनसे जुड़ाव का साक्ष्य उपस्थित करते हैं और इस तरह उनके हार्सपावर की दम भरकर अपने प्रभाव का घेरा

बढ़ाते हैं मतलब यह है कि साहित्य की राजनीति नगरों से चलती है। इसी मानसिकता से प्रेरित होकर गाँव का कालिदास नगर की ओर दौड़ता है। यदि वह नगर से कोई संबंध न रखे, तो हमेशा के लिए अपना अस्तित्व विलीन कर दे। यह सही है कि श्रेष्ठ रचना कभी नहीं मरती, लेकिन उसे प्रकाश में लाने के लिए कोई गियर्सन मिल जाये। आपको यह जानकार आश्चर्य होगा कि बुंदेलखण्ड की मिट्टी में दबी कुछ पाण्डुलिपियाँ ऐसी है, जिनके प्रकाशन से हिन्दी साहित्य में प्रतिष्ठित मान्यताएँ बदल जाएँगी। उनके प्रकाशित न हो पाने का जिम्मेदार कौन है? अगर वाराणसी की नागरी प्रचारणी सभा और इलाहाबाद के हिन्दी साहित्य सम्मेलन में बुंदेलखण्ड जनपद का कोई चहेता होता, तो उनका प्रकाशन हो गया होता। आखिर नगर की इन महान संस्थाओं को अपनों से ममत्व स्वाभाविक है।

गांव का साहित्य दो प्रकार का है – पहला बोली में लिखा साहित्य, जो लिखित रूप में उपलब्ध है और मौखिक रूप में भी । मौखिक परम्परा का साहित्य लोकसाहित्य है, जो मौखिक होते हुए भी अपनी विशेषताओं के कारण बहुचर्चित है। दूसरा राष्ट्रभाषा हिन्दी में रचा साहित्य, जो गुप्त रहस्य की तरह कभी–कभी दिख जाता है। वस्तुतः गाँव का साहित्य वही है, जो गाँव में प्रचलित भाषा (बोली) में लिखा गया हो। ऐसे जनपदीय बोलियों के साहित्य पर क्षेत्रीयता और संकीर्णता के आक्षेप थोपने का एक फैसन–सा चल पड़ा है, जबकि संकीर्णता और वर्गवद्धता नगरीय साहित्य में अधिक होती है। जनपदीय साहित्य लोकसहज हाने के कारण मुक्त और स्वच्छंद रहता है। लोक–साहित्य में साम्प्रदायिकता, जातिवाद, वर्गवाद, क्षेत्रवाद, पुरस्कार या शिविर धर्मिता के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। वह लोकदर्शन, लोकधर्म, लोकभाव अर्थात् लोकानुभूति की लोकाभिव्यक्ति करता है। उसमें कोई विशिष्ट दर्शन, धर्म और विचारधारा के लिये स्थान नहीं है। लोकसाहित्य पूरी तरह लोक का है, पूर्णतया प्रजातांत्रिक। नगर के साहित्य में व्यक्तिवादी प्रवृत्ति पनपती है, लेकिन लोकसाहित्य में लोक ही सब कुछ होता है। इसीलिए वह सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय साहित्य है।

जनपदीय साहित्य को 'सामंतीय अवशिष्ट' या 'सामंतवादी' कहा जाता है, लेकिन वह किसी विशिष्ट वर्ग का साहित्य कभी नहीं रहा। सामंतवाद में जिस भोग–विलास, ऐश्वर्य, ताम–झाम, निरंकुशता आदि की प्रधानता रहती है, वह रत्तीभर भी जनपदीय साहित्य में नहीं है। बल्कि यो कहा जाय कि लोकसाहित्य अपनी प्रकृति और प्रवृत्ति से सामंतवाद का विरोधी है, तो अधिक उचित है। वह तो रूढ़ि, कृत्रिमता, विलासिता, निरंकुशता आदि के विरोध में स्वच्छंदता, सहजता, करुणा, प्रेम, सहानुभूति आदि प्रवृत्तियों को महत्व देता है। सामंतवाद में थोड़े से लोगों का सब कुछ रहता है, जबकि साहित्य लोक को महत्व देता है। नगर के साहित्य में नगर बो[illegible] के कारण वे सभी प्रवृत्तियां कहीं–न–कहीं प्रभावी रहती हैं, जो नगरी संस्कृति और जीवन में व्याप्त हैं। नगरी जीवन के तनाव, ग्रंथियाँ और छटपटाहट तथा भौतिकता एवं बौद्धिकता से उत्पन्न विसंगतियां साहित्य में बिम्बित होती हैं। गांव का साहित्य तनावमुक्त रहता है। गांव की स्वच्छंद भावुकता और लोकरस के कारण वह हृदय का साहित्य है; बुद्धि का नहीं। इसीलिये पाठक व श्रोता पर उसका प्रभाव अधिक पड़ता है। नगरी साहित्य क्लिष्ट होता है, अधिकांश तो साधारण जन की समझ से बाहर रहता है।

रचना–प्रक्रिया की दृष्टि से देखें तो लोकसाहित्य और जनपदीय साहित्य में लोकभाव और लोकरस की प्रधानता होती है। लोकभाव वह है जो लोक के हर सदस्य के मन में रहता है, किसी असाधारण मन में नहीं। वह सहज, प्रकृत और अनगढ़ होता है। उसमें वह आदिम या असामान्य प्रवृत्ति नहीं होती, जो लोक में नहीं है। कुछ विद्वान भाव को नितान्त वैयक्तिक निधि मानते हैं, पर उनके मत से सहमत होना कठिन है, क्योंकि भाव समाज के परिवेश में जन्मता और विकास पाता है। मनोविज्ञानवेत्ता भी स्वीकार करते हैं कि हर सामान्य मानव के भाव–संसार में लोकधर्मीवृत्ति होती है, जिससे वह दूसरे मानव तक पहुंच रखता है। भाव की लोकीकरण की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है और जो भाव जितना लोकीकृत होकर लोकभाव बन जाता है, वह उतना ही लोकमान्य होता है। 'आल्हा' गाथा में आल्हा–ऊदल की माता देवलदे और चंदेलनरेश परिमर्दिदेव की पटरानी माल्हन दे जब ऊदल के जन्म पर सामान्य नारी की तरह नाचती–गाती हैं, तब लोकहृदय एकदम खिल पड़ता है। ऐसे भावन को ही लोकभाव कहते हैं। लोकभाव में निज रागद्वेष से मुक्ति की झंझट नहीं होती और तुरंत साधारणीकरण हो जाता है, अतएव लोकरचना का आनंद भावना के साथ ही अनुभूत हो जाता है। ऐसी आनंदानुभूति को 'लोकरस' कहना समीचीन है। 'लोकभाव' और 'लोकरस' वाली 'लोकरचना' में प्रेषणीयता की कठिनाई नहीं होती और न ही आस्वादन की। अतएव रचना–प्रक्रिया की दृष्टि से जनपदीय साहित्य में कोई उलझाव नहीं है। न तो रचनाकार को और न सहृदय पाठक या श्रोता को।

जनपदीय साहित्य का विषय वह लोकजीवन है, जो रचनाकार ने स्वयं जिया है। गाँव की प्रकृति, संस्कार, कृषि, भक्ति, प्रेम, शौर्य, बलिदान, त्याग आदि विषय जो आज भी प्रासंगिक हैं, साहित्य में स्थान पाते हैं। कुछ विद्वानों का आरोप है कि गाँव के साहित्य और खासतौर से लोक–साहित्य में वही पुराने विषय बार–बार दुहराये जाते हैं। वस्तुतः गांव का साहित्यवादी आग्रह से मुक्त होने के कारण जीवन के सभी

पक्षों राजनैतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक पक्षों – से संबंधित विषयों और समस्याओं के प्रति सचेत रहा है। उसने राष्ट्रीय विषयों जैसे स्वतंत्रता – संग्राम, खादी, अंग्रेजी फैशन, अंग्रेजी भाषा, महंगाई, बालविवाह, अनमेलविवाह, निर्धनता, रिश्वत, शोषण, चुनाव, राजनीतिक नेताओं की करतूतें, छुआछूत आति को केन्द्र में रखकर रचनाधर्मिता को आधुनिक संदर्भों से जोड़ा है। नगरी साहित्य में अत्याधुनिकता की ओट मे जिस यांत्रिकता, संबंधहीनता और संवेदनहीनता को प्रश्रय मिल रहा है, वह मनुष्यत्व के विकास में सबसे घातक बाधा है। मनुष्य से मनुष्य का जुड़ाव और मनुष्यत्व की रक्षा गांव के साहित्य का केन्द्रीय लक्ष्य है। उसमें जीवन के मूल्यों के प्रति आज भी लगाव हैं। स्वार्थपरता, मूल्यहीनता, संस्कृतिविमुखता, आतंक, और साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देने वाली और परिणामस्वरूप निराशा और तनाव लाकर बाजारू व्यवसाय के छलछंद से तोड़फोड़ एवं विघटन करने वाली भौतिक सभ्यता ने नगरों को अपने वश में कर लिया है, यही वजह है कि नगरी साहित्य में भी उस सभ्यता की छाया पड़ने लगी है। ऐसी स्थिति में अचूक उपचार हैं संस्कृति, सामाजिक मूल्य, लोकधर्म, प्रेम से जुड़ा और आशा, आस्था एवं उत्साह को जगानेवाला गांव का साहित्य। यह सही है कि वह अधिकतर आदर्शोन्मुखी और वर्णनप्रधान है और उसमें यथार्थ की कठोरताएँ बहुत कम हैं। लेकिन संघर्षधर्मी साहित्य की कमी कभी नहीं रही।

राष्ट्रीय भावना और संघर्षधर्मिता के कुछ उदाहरण इस तथ्य के साक्षी हैं कि गांव या जनपदीय साहित्य में ऊर्जा का प्रभाव नहीं रहा। मगही में भारत माता के साकार रूप की वन्दना देखें --

भारत माता हे, सोनवें पूजब तोहर पाँव।
टीका झुमका फूल बनाएब, नथिया अच्छत बनाएब।
हँसुली सिकरी आसन बजुआ सिंघासन बइठाएब।
कँगना पहुँची अरधा–चन्दन मुँदरी हार बनाइब।
तोहर देल सोना अमरनवा तोहरे देब चढ़ाएब।।

भारत माता की पूजा के लिए फूल, अक्षत, आसन–सिंहासन, अर्घ्य चन्दन आदि सब आभूषण के रूप में अर्पित हैं, जिनसे भारत की समृद्धि का आभास होता है। भोजपुरी के एक गीत में पंजाब के हत्याकाण्ड की याद कर लोककवि फिरंगियों (अंग्रेजों) को ललकारता है –

आजु पंजाबवा के करिके सुरतिया
फाटेला करेजवा हमार रे फिरंगिया।
भारत की छाती पर भारत के बचवन के,
बहल रकतवा के धार रे फिरंगिया।
दुधमुँहा लाल सब बालक मदन सग,
तड़पि तड़पि देले जानरे फिरंगिया।।

बुन्देलखण्ड की लोकसंस्कृति ओजस्विनी रही है और उसका साहित्य भी ओजस्वी रहा है। १८४० ई. में जैतपुरनरेश पारीक्षत और अंग्रेजों के युद्ध का वर्णन करता हुआ लोककवि दहाड़ उठता है –

काऊ ने सैर भाषे, काऊ ने लावनी।
अब के हल्ला में फुँकी जात छावनी।।

इन पंक्तियों में 'हल्ला' शब्द के दो अर्थ हैं – पहला है शोर, सैर और लावनी के गाने से उपजे शोर से अंग्रेजों की सुरक्षित सेना जलकर भस्म हो रही है। दूसरा है आक्रमण, अब इस आक्रमण में सेना नष्ट हो जायेगी। साहित्य का आक्रमण युद्ध के आक्रमण की तरह प्रभावशाली होता है। गाँव की कविता का संघर्ष इतना चला कि हरबोलों ने गाँव–गाँव, द्वार–द्वार, जाकर सोलह–सत्रह वर्ष तक रचनाएँ सुनाईं और स्वतंत्रता – संग्राम के लिए जन–जन को तैयार किया।

गांव का साहित्य लोक की समग्रता को महत्व देता है और लोक की समग्रता में ही भारतीयता की पहचान है। हर अंचल की अपनी अलग अस्मिता है, पर हर अंचल के साहित्य में कुछ ऐसे समानधर्मी तत्व मिलते हैं, जो दूसरे अंचल, प्रदेश और राष्ट्र के साहित्य से मेल खाते हैं। इस तरह अंचलों के बीच जुड़ाव और एकता के ताने–बाने बुनने का काम गाँवों के साहित्य ने किया है। समाज–निर्माण के कारकों और नये सामाजिक मूल्यों को फैलाने का काम भी उसी साहित्य का है। उदाहरण के लिए, ओरछा नरेश के भाई हरदौल ने अपनी भौजी के हाथों विष खाकर भाभी और देवर के रिश्ते को पुनः एक नया मूल्य दिया था, जिसके कारण हरदौल के चबूतरे उत्तर भारत के सभी गांवों और नगरों में बन गये। तात्पर्य यह है कि उनका आदर्श एक लोकमूल्य के रूप में सर्वत्र फैल गया और माध्यम थे हरदौल–संबंधी लोकगीत। कुछ लोकगीतों और लोकगाथाओं ने कई अंचलों में यात्राएँ की हैं। एक अंचल के लोकसाहित्य को दूसरे अंचल ने क्यों अपना लिया? समान आदर्शों और आचरण के कारण अथवा उसमें निहित विछित लोकमूल्य को जन–जन में ले जाने के लिये। आल्हा, श्रवणकुमार, ढोला–मारू, भरथरी, सुरहिन, विदागीत आदि ने कई अंचलों को बांध लिया है और अब वे राष्ट्रीय सम्पत्ति हो गये हैं।

जनपदीय साहित्य जनता के इतिहास का प्रमाणिक गवाह है। अभी तक राजाओं, महाराजाओं और बादशाहों का इतिहास लिखा गया है और उन्हीं के द्वारा अथवा उनके प्रभाव से लिखवाये गये अभिलेखों, सिक्कों, ताम्रपत्रों, सनदों आदि

को प्रमाण माना गया है। लेकिन मुझे बुन्देलखण्ड जनपद के कटक, समय, लड़ाई, वीररसपरक लोकगाथाओं और लोकगीतों में यहाँ का उपेक्षित इतिहास मिला है। अंग्रेजों द्वारा बाँदा की लूट का संक्षेप एक फाग गीत में देखें –

बाँदा लुटो रात कें गुँइयाँ।
सीला देवी लरी दौर कें संग में सौक मिहरियाँ।
अंगरेजन ने करी लराई, मारे लोग लुगइयाँ।
गिरी गुसाई तब दौरे हैं, लरन लगे भौं मइयाँ।
सीला देवी को सिर काटो अंगरेजन नें गुँइयाँ।
भगीं सहेलीं तब गाँउन सें लैकें बाल मुनइयाँ।
'गंगा सिंह' टेर कें रै गये, भगौ इतै न रइयाँ।।

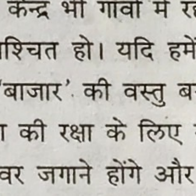
एक और उपयोगिता है गाँव के साहित्य की और वह है –देश की परिस्कृत भाषा और साहित्य को पुनर्जीवन प्रदान करना। राष्ट्र की नागरी भाषा जब रूढ़ होकर जनता से दूर हो जाती है, तब गावों की बोलियों के शब्द उसे नयी ताजगी और नयी व्यंजना देते हैं। इसी तरह जब नागरी साहित्य शास्त्रीय (क्लासिक) स्तर पर रूढ़ और क्लिष्ट होकर जनता से दूर चला जाता है, तब गाँवों का साहित्य उसे लोकतत्त्व देकर रूढ़िमुक्त और लोकोन्मुखी बनाता है। सबसे सटीक उदाहरण तुलसी का है, जिनके काव्य में उस समय प्रचलित बुंदेली, बघेली, अवधी आदि बोलियों के शब्द ही नहीं मिलते, वरन् जनपदीय लोकादर्श, लोकाचरण, वस्त्राभरण, संस्कार, लोककलाएँ और यहां तक कि लोकछन्द या लोकधुन तक संग्रथित हैं। इसी कारण तुलसी ने सबसे पहले जहां राष्ट्रभाषा का स्वरूप खड़ा किया था, वहाँ भारतीयता को भी वाणी दी थी।

'लोक–कल्याण' की भावना गाँव के साहित्य के उद्देश्य को इंगित करती है। छत्तीसगढ़ी कथाकार लोककथा के अंत में कहता है – 'जैसन भाग इनके बनिस तैसने भगवान करे, सबके भाग बहुरै'। बुंदेली लोककथाओं में भी – 'जैसी उनकी दसा फेरी, भगवान सबकी फेरै।' का सन्निवेश है। इन उदाहरणों से सिद्ध है कि लोककथाकार का लक्ष्य लोकहित है और कथा उदाहरण के रूप में कही गयी है। नाटकों के अंत में भरतवाक्य का समावेश लोककथाओं के अंतिम वाक्य की ही देन है, ऐसी मेरी मान्यता है।

गांव के साहित्य की विशेषताओं को सामने रखकर यदि गम्भीरता से विचार किया जाए, तो आज के बदलते परिदृश्य में ऐसे ही साहित्य की आवश्यकता पर बल देना उचित है। आप इस देश को 'बाजार' बनते देख रहे हैं और मनुष्य को 'बाजार' का एक घटक अर्थात व्यावसायी या विक्रेता या क्रेता अथवा दो के बीच का एक दलाल। इस दृष्टि से भौतिकता यानी भौतिक मानसिकता, मशीनी, जीवन, आधुनिक बनने का चाव, पश्चिम की सौदागिरी और आयातित संस्कार। आज का 'मैकाले' बहुत चतुर है, वह कहता कुछ नहीं, पर भीतर ही भीतर कई तरह के मुखौटे लगाये दूतों और दूतियों को भेजता रहता है। खासदूती है मानसिक दासता, जो बौद्धिक प्रतिबद्धता के स्कूल खोलती है और बौद्धिक उपनिवेशवाद के पाठ पढ़ाती है। दूसरी है धार्मिक कट्टरता, जो धर्म का मुखौटा लगाये स्वार्थों के मठों का निर्माण करती है। उसकी प्रिय सहेली है साम्प्रदायिकता, जो मैनका बनकर तपस्वी विश्वामित्रों को वश में कर लेती है। जातिवादी कट्टरता तो बूढ़ी खाला है, जो तंग कोठरी में उपेक्षित पड़ी थी, लेकिन अब राजनीति गणिका उससे मंत्र सीखने के लिये कार पर बैठाकर महलों में ले गयी है। रही आधुनिकता की उर्वशी, जो पुरुखों को रिझाकर भोगोन्मुखी विचारणा की सन्तानें छोड़ने के लिए आयी है। विकास और विदेशी ऋण के दोनों दूत तराजू के पलड़ों पर बैठे देश को कर्जों से लादे जा रहे हैं। इन सबके बीच फँसा आदमी मशीन हो गया है। मशीन की तरह संवेदनहीन, मनुष्यत्व के गुणों से दूर और फलस्वरूप निराश, कुण्ठित एवं पीढ़ित।

ऐसी विषम परिस्थितियों में ऐसे साहित्य की जरूरत है जो संवेदनशील हो और आदमी में आत्मीयता, सहानुभूति प्रेम, उत्साह, एवं रस पैदा कर सके तथा तमाम द्वेषों, भेदभाव और विसंगतियों के खिलाफ संघर्ष करे। ऐसा समर्थ साहित्य गाँव का साहित्य ही है। अतएव पहली बात तो यह है कि अब तक रचे गाँव के साहित्य का संग्रह कर उसे प्रकाशित किया जाए। साथ ही उसे साहित्य जगत में उतना ही स्थान मिले जितना नगरी या अभिजात्य साहित्य को है। दूसरी बात यह कि साहित्य के रचनाधर्मियों को गाँवों अर्थात् भारत की पचहत्तर –अस्सी प्रतिशत जनता के लिए साहित्य की रचना करना चाहिए। गाँवों में साहित्यिक संस्थाओं के केन्द्र और साहित्यिक कार्यक्रमों की व्यवस्था होना उचित है। गाँवों के लोकसाहित्य और लोककलाओं के केन्द्र भी गाँवों में रहे और गाँववालों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित हो। यदि हमें भाषा और साहित्य को निकट आते हुए 'बाजार' की वस्तु बनने से बचाना है, तो हमे दोनों की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए साहित्यिक बाजार के विरोध में ओजस्वी स्वर जगाने होंगे और गाँव के साहित्य के संरक्षण एवं गाँव के लिए साहित्य की रचना, दोनों मोर्चों पर काम करना होगा।

– मंगलम, सर्किट हाउस मार्ग, छतरपुर (म.प्र.) ☐

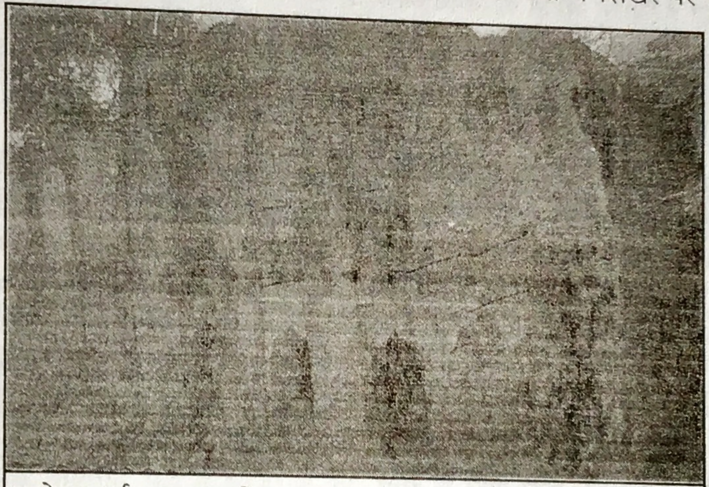


बुन्देलखण्ड में गौड़वानी खटोला राज्य एवं खटोला दुर्ग

— डॉ. के.पी. त्रिपाठी

बुन्देलखण्ड शब्द विन्ध्येलखण्ड का अपभ्रंश है। इसे विन्ध्यभूमि भी कहा गया है जिसका आशय है विन्ध्य पर्वत परिक्षेत्र अर्थात् विन्ध्याचल पर्वत श्रेणियों वाली भूमि। यहाँ की विन्ध्य श्रेणियों पर सैकड़ों दुर्ग एवं हजारों गढ़ी निर्मित हैं, जो मध्ययुगीन राजाओं, शासकों एवं जागीरदारों के लिये उनकी अपनी एवं क्षेत्र की जन सुरक्षा के लिये महत्वपूर्ण एवं आवश्यक थी। इतनी अधिक गढ़ी एवं किले भारत के किसी जनपद में नहीं है। यदि हम अपने बुन्देलखण्ड को फोर्ट्सलैंण्ड कहें तो अतिश्योक्ति नहीं होगी।

मध्ययुग में बुन्देलखण्ड जनपद में धसान नदी से नर्मदा नदी तक अर्थात् धसाननदी के पूर्वी दक्षिणी भूभाग में गौड़वानी राजसत्ता थी। गौड़ राज्य की मूल राजधानी तो गढ़ा (जबलपुर) थी, परन्तु जो उत्तरी पश्चिमी गौड़वानी राज्य बुन्देलखण्ड क्षेत्र में था, उसकी राजधानी खटोला नगर थी। खटोला राजधानी के कारण उसे खटोला राज्य कहा गया है। खटोला राज्य की बोली खटोली गौड़वानी थी एवं राजा खटुलिहा राजगौंड कहा जाता था। वर्तमान में खटोला नगर ध्वस्त बेचिराग सा है, लेकिन किला एवं नगर ध्वस्तावस्था में भी खटोला नाम से प्रसिद्ध है। खटोला नगर का परकोटा एवं खटोला परगना (ईशानगर परिक्षेत्र) खटोला राज्य की स्मृति स्वरूप जनमानस में प्रचलित रचे पचे ही हैं।



खटोला दुर्ग का एक चित्र — छाया : जगदीश रावत

किला एवं नगर खटोला पूर्वकालिक पन्ना राज्य के दक्षिणी–पश्चिमी भाग में एवं वर्तमान में छतरपुर जिला के दक्षिणी भाग में २४.३५ उत्तरी अक्षांस एवं ७९.२४ पूर्वी देशान्तर पर समुद्र तल से १३०० फुट तथा पठार तल से ३०० फुट ऊँचे बिंजा (विन्ध्याचल) के राजाबाबा पहाड़ पर स्थित है। यह किला एवं नगर मध्ययुगीन १५वीं शदी के गौड़वानी शासन काल का है। जिसे सूरजशाह गौड़ महाराजा ने बनवाया बसाया था। खटोला किला एवं नगर गौड़वाने के वैभव एवं शौर्य का प्रतीक था, जो वर्तमान में इतिहास के पृष्ठों से ओझल हो चुका है। खटोला किला बुन्देलखण्ड के उच्च पठारी भूभाग में 'राजाबाबू' विन्ध्य शिखर पर स्थित रहा, जिसकी किलेबंदी किले के चारों ओर के ऊँचे ऊँचे पहाड़ किये रहे हैं। चारों ओर के पहाड़ों की ऐसी प्रकृतिक किलेबंदी है कि बाहरी किसी भी आक्रमणकारी का किले पर प्रवेश असंभव नहीं तो कठिन जरूर रहा होगा। सामरिक दृष्टि से यह किला सुरक्षित है।

बुन्देलखण्ड की धरती पर गौड़वानी राजसत्ता की स्थापना लगभग दशवी शताब्दी से हुयी, परन्तु धसान और सोनार नदी के मध्य के भूभाग पर खटोला की राजसत्ता ही आच्छादित रही जो १५वीं शदी के महाराजा सूरजशाह गौड़ के समय विकास एवं वैभव के सर्वोच्य शिखर पर जा पहुँची थी। सूरजशाह ने धामौनी, शाहगढ़, गढ़पहरा, राहतगढ़, खुरई, खिमलासा बालाबेहट, किशनगढ़, देवरा, मढ़ियादो, बकस्वाहा, बटियागढ़ जोधपुर, हटा के किलों की आधार शिला रखकर खटोला राज्य को सुरक्षा प्रदान की थी। सूरज शाहगौड़ की खटोला की गौड़वानी राजसत्ता बुन्देलखण्ड की माटी में ऐसी घुली रमी थी कि भूमि, बोली एवं जाति का पृथक पृथक अस्तित्व बनाये रखते हुये भी जल एवं पुरैन की भांति पृथक भी नहीं थे। सूरजशाह गौड़राजा खटुलिहा राजवंश–राजगौड़ नाम से प्रसिद्ध हुआ। गौड़ जाति में उसके बंशजसम्माननीय खटोला (खटिया) पर बैठाने योग्य पात्र माने गये। उसका किला, नगर एवं शासित क्षेत्र खटोला नाम से प्रसिद्ध हो गया। खटोला राज्य की बोली खटोली (गौड़वानी) नाम से समझी बोली जाने लगी, जिस पर बुन्देली बोली का प्रभाव था। गौड़ों की जातीय समाज दो वर्गों में विभाजित हो गई, प्रथम खटुलिहा राजगौड़ उच्चवर्ग के आदरणीय हुये, जिनके वैवाहिक संबंध बघेलों एवं चंदेलों से हुये। दूसरा वर्ग सामान्य गौड़ जाति का 'धूरगौड़' जो बिना खटोला (आसन) के

जमीन (धूल) पर ही बैठते थे। तात्पर्य कि खटोला का खटुलिहा राजगौंड़ राजवंश बुन्देलखण्ड की माटी, वनस्पति, बोली वाणी एवं संस्कृति में गहरे तक घुल मिल गया था कि उक्त क्षेत्र में उनके पश्चात् बुन्देली, मुगलों एवं मराठों की सत्तायें भी आई और गई परन्तु खटोला की खटुलयाही राजसी कीर्ति, यश, नाम, मिट्टी, बोली को क्षेत्र के लोग अभी भी अपनी जवान पर चढ़ाये हुये हैं। साढ़े पाँच सौ वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी खटोला परिक्षेत्र के लोग बताते हैं कि "साब राजाबाबा सूरजशाह के समय खटोला किले पर ढाई पहर सोने की वर्षा हुयी थी।" महाराजा सूरजशाह के शासन प्रशासन के लिये जनता का यह ऐतिहासिक एवं भावनात्मक प्रमाणपत्र है। जिससे सिद्ध होता है कि उसकी प्रजा सुखी, सम्पन्न एवं सुरक्षित थी। उसका शासनकाल स्वर्णिम काल था। प्रत्यक्षतः तो यह क्षेत्र पठारी रेगिस्तान है लेकिन जनभावनाओं के सुनने से मन में विचार बनने लगता है कि क्या खटोला इस पठार पर अमन चैन एवं खुशहाली का नखलिस्तान अथवा चश्मा रहा होगा? वैसे वैभवशाली किलों के नगरों जैसे मनियांगढ़, बारीगढ़, मड़फा की भी तो ऐसी ही दशा हुयी है जिनके अतीत का वैभव काल के गाल में समाहित हो गया है। पहचान को बचे हैं यत्र तत्र बिखरे फैले शिलाखण्ड।

खटोला पहुँचने के लिये छतरपुर–सागर बस मार्ग पर स्थित बड़ामलहरा कस्वा से महाराजगंज तक जीपें चलती हैं। महाराजगंज बड़ा मलहरा से पूर्व दिशा में ४ किलोमीटर की दूरी पर पन्ना के राजा हिन्दूपत का बसाया कस्बा है, जहाँ उनका बनवाया किला है। यहां के जैन मंदिर एवं हिन्दू मंदिर भी दर्शनीय हैं। महारज गंज से दक्षिण पूर्व में २ किलोमीटर आगे विन्ध्यश्रेणी राजाबाबू पर किला खटोला है राजा बाबू पहाड़ महाराजगंज से ही लगा हुआ है, सो प्रकृति का आनंद लेते पैदल चलिये अथवा घाटी पार किले की तलहटी में स्थापित माता मंदिर तक जीप में पहुचिये। माता मंदिर के उत्तर में पहाड़ पर खटोला किला खड़ा दिखाई देता है। यह किला अंग्रेजी भाषा के अक्षर 'एल' L अक्षर के पहाड़ पर बना हुआ है। महाराजगंज के लोग उत्तर से दक्षिण को फैले भाग को बिंजा (विन्ध्याचल) पहाड़ बोलते हैं जबकि इसके दक्षिणी सिरे के पश्चिम से पूर्व को घूमें पहाड़ को खटोला के लोग राजाबाबा का पहाड़ कहते हैं। इस राजा बाबा पहाड़ की तलहटी में गौड़ राजाओं एवं खटोला नगर निवासियों की पूज्यमाता देवी का मंदिर है।

किला के उत्तरी एवं दक्षिणी किनारों में शिखर से २० फुट नीचे से किला परकोटा निर्मित है जो लगभग २५ फुट ऊँचा है, परन्तु किला प्रांगण में मात्र ५ फुट की पट्टी ही दिखाई देती है। जबकि भूमितल से ३०० फुट ऊँचा पहाड़, जिसके शिखर के २० फुट नीचे से २५ फुट ऊँची सीधी खड़ी परकोटा भित्ती है। जिस पर चढ़ना कठिन तो रहा ही है, यदि चढ़ने की कोशिष में नीचे खिसकें तो विना लड़े ही पहाड़ की तलहटी में मरा हुआ मिलेगा।

खटोला किले पर चढ़ने उतरने के लिये दो ही मार्ग हैं। प्रथम मार्ग बिंजा पहाड़ के दक्षिणी भाग की घाटी से राजा बाबा पहाड़ के पश्चिमी किनारे से आरंभ होता है। जैसे ही मार्ग की चढ़ाई प्रारंभ होती तो एक दरबाजा है जिसमें से क्रमशः ऊपर चढ़ता घाटी मार्ग है जो पहाड़ के ऊपर निर्मित पूर्वी दरबाजा पर पहुँचता है। इस घाटी मार्ग के बाहरी भाग (ढलान) की ओर पत्थरों की ऊँची खकरी (भित्ती) निर्मित है। पूर्वी दरवाजे से पश्चिम की ओर मुड़ने पर किला प्रांगण में प्रविष्ट हो जाते हैं। यह पूर्वी दरवाजा चिकना दरवाजा कहलाता है।

दूसरा मार्ग पश्चिमोत्तर भाग में बिंजा पहाड़ की उत्तरी घाटी में सौंर घाट दरवाजे से प्रारंभ होता है। जो पहाड़ी पर चढ़ता हुआ पूर्व दिशा को घूमकर किला प्राँगण के तालाब के पास पहुंचता है। इस पश्चिमोत्तर घाट मार्ग के पूर्वी किनारे किनारे पत्थरों की खकरी (पट्टी) निर्मित है। किला परकोटा पूर्वी एवं पश्चिमी दरबाजों को दौनों उत्तरी एवं दक्षिणी पार्श्वों से जोड़े हुए हैं। राजा बाबा पहाड़ पर किला है। जिसके उत्तरी भाग में ३०० फुट की गहरी एवं ८० फुट चौड़ी खंदक बनी खड़ा है दूसरा समानान्तर पहाड़। इस खंदक में महाराजा सूरजशाह ने तीन तालाब बनवाये थे, जो किला के उत्तरी पार्श्व में रहे हैं। किला के दक्षिणी भाग में पहाड़ों के मध्य सात आठ किलोमीटर घेरे का नगर परकोटा है जो पत्थर शिलाखंडो से निर्मित है। नगर परकोटा (शहर पनाह) के अंदर बस्ती थी। बस्ती के संलग्न परकोटा के भीतर तालाब है जो बस्ती के दैनिक उपयोग को था।

पहाड़ के शिखर पर आयताकार पूर्व से पश्चिम लम्बा किला प्रांगण है, जो लगभग एक किलोमीटर लम्बा और ३०० मीटर चौड़ा है। इस प्रांगण में पूर्वी एवं पश्चिमी दरवाजों से संलग्न अनेक भवन एवं रिसाला निर्मित है, जो भग्नावस्था में है। मध्य प्रांगण में महल एवं हवेली रही है, जिनके मध्य एक परकोटा से घिरे राजारानी के महल हैं जो तीन चार मंजिले रहे हैं। यह राजमहल ईंट गारे से निर्मित था, जिस पर चूने का प्लास्टर था। ऊपरी मंजिलों के निर्माण में लकड़ी की कड़ी–धन्नी का उपयोग किया गया था। दरबाजे ४ फुट ऊँचे एवं ३ फुट चौड़े रहे हैं। राजमहल के दक्षिणी पार्श्व से एक गुप्त द्वार रानी महल चौक में खुलता था। रानी महल चौक में एक होज है जो ५ फुट वर्गाकार में ८ फुट गहरा है, जिसमें नीचे उतरने के लिये सीढ़ियाँ हैं। दरवाजे पैनी नौकदार पत्थर की लाद से निर्मित हैं। दरवाजों के दोनों ओर सूर्य चक्र निर्मित हैं जिनके चारों

३२–३२ त्रिकोणीय दांतें (आरे) निकले हुये हैं। इस किले के परकोटा निर्माण में पत्थर चूना का एवं महलों के निर्माण में बड़ी बड़ी ईंटों, मिट्टी का गारा एवं चूने का उपयोग किया हुआ है। महलों के कमरे अधिकांशतः १० वर्ग फुट में हैं। समूचा किला प्रांगण महलों एवं भवनों के भग्नावशेषों से भरा पड़ा। जिन कक्षों की दीवालें खड़ी हैं, उनमें एवं समूचे किला परिक्षेत्र में सागौन तथा कटीली झाड़ियों का ऐसा सघन वन खड़ा हो गया है कि उसमें से निकलना कठिन है। ढाई पहर सोने की वर्षा होने की किबदन्ती ने लोगों में धन का ललच उत्पन्न किया तो उन्होंनें गुनियों नाबतों की मदद ली। धूपदीप एवं झंडियों से पूजा की तथा कमरों को गहरे तक खोद डाला। जहां नगाड़े एवं शहनाइयाँ बजा करतीं होंगी, वहां अब वन्य प्राणी बोलते हैं।

किला प्रांगण में बूढ़ादेव का चबूतरा है तो राजमहल के सामने पहाड़ की तलहटी में माता मंदिर हैं। माता मंदिर के पश्चिम की ओर मध्य पहाड़ पर गोल गुम्मद युक्त राजाओं की ९ समाधियाँ (छतरियाँ) खड़ी हैं। जिससे स्पष्ट होता है कि सोलहवीं–सत्रहवीं शदी तक खटोला में नौ दस गौड़ राजाओं ने राज्य किया था। जिनमें सूरजशाह गौंड़ सर्वाधिक शक्तिशाली एवं यशस्वी राजा हुआ था। उसकी सेना में घोड़े, हाथी एवं पैदल सैनिक थे। किले में जहां बड़ी बड़ी घुड़शालाओं के अवशेष है, वहीं किले के पश्चिमी भाग में सूरजशाह का गंजीखाना था। जहां हाथियों एवं घोड़ों के लिये घास की गंजीं (गांज) लगे रहते थे। इसी कारण इसे गंज कहा गया है। गंज में विस्तृत फीलखाना है जिसके चारौं ओर लगभग १० फुट मोटी पक्की दीवाल है, जिसके मध्य में २ घुड़बावड़ियाँ हैं कि जिनमें चलकर हाथी घोड़े स्वयं पानी पी सकें। यहां के लोगों की किवदंती है और ऐसा उल्लेख बुन्देलखण्ड गजेटियर (१९०७ ई.) एवं आइने अकबरी में है कि पन्ना के जंगलों में हाथी मिलते थे। यहां के लोग कहते हैं कि खटोला राज्य के जंगलों में हाथी स्वतंत्र रूप से विचरण करते थे तथा आवश्यकतानुसार खटोला राजा उन्हें पकड़वा कर गंज के फीलखाने में प्रशिक्षित कराते थे। ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि जहाँगीर बादशाह के समय यहाँ के हाथी धामौनी के मेले में विक्रय हेतु जाते थे।



खटोला दुर्ग का एक चित्र — छाया : जगदीश रावत

इतने सशक्त, सम्पन्न एवं वैभवपूर्ण राज्य का पराभव कैसे यकायक हो गया? यह चिन्तन का विषय है। मैं स्वयं गया और लोगों से भेंट की तथा प्राकृतिक एवं भौगोलिक परिस्थितियों का अवलोकन किया तो इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि यहां खेती के पानी एवं पीने के पानी का अभाव सदैव बना रहता है। क्योंकि खटोला क्षेत्र समुद्र तल से १३०० फीट ऊँचाई वाले पठार पर है। लोग कहते हैं कि खटोला में ५२ कुंआ ८४ बेरें एवं ७ तालाब रहे हैं लेकिन उनमें सिर्फ बरसात में पानी मिलता है। आठ माह तो पानी की किल्लत रहती है। पानी के अभाव में लोगों का शाश्वत विकास संभव नहीं हो पाने से शायद सूरजशाह के वंशज चौरागढ़ अथवा सिगौंरगढ़ या जटाशंकर की ओर चले गये हों। आर्थिक रूप से यह राज्य सम्पन्न था जिस कारण छत्रसाल ने आक्रमण कर खटोला राज्य की लूट की थी। ओरछा के राजा वीरसिंह देव प्रथम, जुझार सिंह एवं पहाड़ सिंह ने भी इस राज्य को लूटा था। १७४६ ई. में सागर के गोविन्द वल्लभ खैर ने इसे लूटा तथा किला तोड़ डाला था। मुगल सम्राट शाह आलम ने १७७६ ई. में इसे ओरछा के राजा को दिया था। सन् १७९३ ई. में पन्ना के राजा धोकल सिंह ने इसे लेने की चेष्टा की थी परन्तु १७९५ में मराठों ने इस हथिया लिया था। १८५७ में दिमान देशपत एवं नन्हें दिमान झीझन ने खटोला में रहकर क्षेत्र में भारी तबाही मचाई एवं लूट की। उसी समय १८५७ का अंग्रेजी सरकार विरोध विप्लव प्रारंभ हो गया था जिसमें अंग्रेजी सरकार की सैनिक व्यवस्था अस्त–व्यस्त हो गई थी परन्तु अंग्रेजों के साथ सम्पादित संधियों के अनुपालन में अन्य बुन्देलखण्डी विदेशी नरेशों की तरह पन्ना नरेश ने विदिश सरकार की सहायता करते हुए विद्रोही क्षेत्रों से संलग्न अपने राज्य की सीमा पर कु. श्यामले जू के नेतृत्व में पन्ना राज्य की सेना भेजकर विद्रोहियों का दमन किया। विद्रोह शांत होने के उपरांत ब्रिटिश सरकार ने पन्ना नरेश को पुरस्कार स्वरूप खटोला परगना एवं सिमिरिया क्षेत्र दे दिया था। जो देश की स्वतंत्रता के पूर्व तक पन्ना राज्य का ही भू–भाग बना रहा।

— भारत भवन, पुरानी टेहरी, टीकमगढ़ (म.प्र.) ☐

बुन्देलखण्ड का कला पक्ष

— मधु श्रीवास्तव



'कला' शब्द की व्यापक व्याख्या करने की सामर्थ्य मनुष्य मात्र में नहीं हो सकती। जीवन से मृत्यु तक हम अपने आस–पास जिन वस्तुओं को देखते हैं और प्रयोग करते हैं, उन सभी में किसी न किसी रूप में कला समाहित रहती हैं। कला वस्तुतः आत्मिक बोध है। शास्त्रीयता की दृष्टि से तथा भाषा विन्यास के आधार पर यदि हम 'कला' की बात करते हैं तो मूल दो स्वरूप हमारे सामने आते हैं —

(१) शास्त्रीय कला तथा (२) लोक कला

शास्त्रीय कला अनेक बंधनों में जकड़ी रहती है जैसे — भेद, अंग, रंग, विधान इत्यादि में। किन्तु जब बात आती है — लोक कला की, तब कलाकार के मन की भावनायें और विस्तृत आयाम स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। लोक कला पर क्षेत्रीयता का प्रभाव सदैव प्रभावी रहा है।

कला पक्ष की दृष्टि से बुन्देली लोक जीवन अत्यन्त समृद्ध है।

वास्तु व मूर्तिकला

बुन्देलखण्ड समय–समय से विभिन्न नामों से जाना जाता रहा है, जैसे — चेदि, दशार्ण, आटविक, मध्यदेश, जैजाक भुक्ति और वर्तमान में बुन्देलखण्ड। ऐतिहासिक दृष्टि से यह मौर्यकाल, गुप्तकाल, राजा हर्षवर्धन के समय तथा परवर्तीकाल में स्वतंत्र प्रदेश न रहकर किसी प्रदेश विशेष के अंतर्गत रहा है।

इन सभी कालों में शासकों ने अनेक किले, मंदिर व इमारतें बनवाई। आज कुछ तो शासन के संरक्षण के कारण दर्शनीय स्थलों के रूप में हैं तथा कुछ के अवशेष हैं। उन ऐतिहासिक भवनों का वास्तु व मूर्तिकला पक्ष आज भी शोध का विषय है तथा हमारा गौरव है। ओरछा, ललितपुर, महोबा, दतिया, झांसी आदि स्थल ऐतिहासिक इमारतों के कारण प्रसिद्ध हैं।

चित्रकला

विभिन्न राजवंशों ने अपने शासनकाल में तथा राजकीय संरक्षण में चित्रकला को आश्रय दिया, जिसके फलस्वरूप यहां के प्राचीन मंदिर, किलों व भवनों की भित्तियों व छतों पर समकालीन प्रभावित चित्रकला देखने को मिलती है।

बुन्देलखण्ड में प्राप्ति के आधार पर हम उसे 'बुन्देली चित्रकला' के नाम से जानते हैं। इन चित्रों में स्त्री–पुरुष छोटे कद के तथा हृष्ट–पुष्ट दिखाई देते हैं। अधिकांशतया उनके चेहरे आधे दिखते हैं। आँखें बड़ी तथा पुरुषों के गलमुच्छे होते हैं। चित्र में पुरुष अंगरखा तथा स्त्रियाँ घांघरा और चुनरी पहने दिखती है।

वैसे तो बुन्देली चित्रकला की अपनी विशेषतायें हैं, किन्तु कहीं–कहीं समकालीन मुगल व राजपूत शैलियों का प्रभाव भी परिलक्षित है। ऐसा विश्वास है कि यह प्रभाव उन क्षेत्रों से आये चित्रकारों की कला प्रवृत्ति के कारण है। चित्रकला के सुन्दर नमूने–ओरछा, दतिया, पन्ना और झांसी के मंदिरों में अभी भी देखे जा सकते हैं।

लोक चित्रकला

बुन्देलखण्ड में विवाह के अवसर पर घर की मुख्य भित्ति पर अनेक चित्र अंकित किये जाते हैं। जिसमें गणेश, ऋद्धि–सिद्धि, शंकर–पार्वती, मण्डप ध्वनि वादक आदि प्रमुख रूप से चित्रित किये जाते हैं। यह चित्र बनाने वाले 'चितेरे' तथा यह कला 'चितैरी कला' कहलाती है यह लोक–कला की विशिष्ट शैली है। इसमें आकृति के अनुसार प्रमुख रंगों से धब्बे बनाये जाते हैं जिसे 'टिपाई' कहते हैं और आकृति को स्पष्ट करती है काली रेखायें उन्हें 'खुलाई' कहा जाता है। इसमें चूने के रंग प्रयुक्त होते हैं उन्हें पक्का करने के लिये गोंद या सरेस प्रयोग किया जाता है।

यह रंगीन चित्रण विवाह के वातावरण को द्विगुणित कर देता है। दीपावली व जन्माष्टमी पर हस्त निर्मित 'पना' (पन्ना) भी मिलता है जो चितैरी कला द्वारा कागज पर पूजा से सम्बन्धित चित्र बने होते हैं।

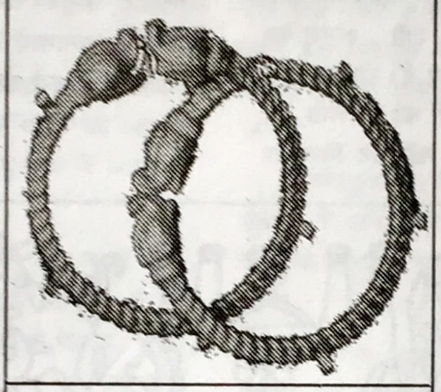
बुन्देलखण्ड में वर्षभर अनेक पर्व व उत्सव ऐसे मनाये जाते हैं जिसमें विभिन्न माध्यमों से भूमि व भित्ति चित्रण किया जाता है। ऐसे–लोकांकन में घरों में सरलता से प्राप्त आटा, हल्दी, चंदन, गेरू, सिंदूर, रोली, महावर, नील पिसे चावल का घोल तथा गोबर व मिट्टी प्रयुक्त किया जाता है। यह चित्रण वस्तुतः बुन्देलखण्ड की परम्परा संस्कृति व कला का निःश्छल स्वरूप होता है। पारम्परिक चित्रांकन में अवसर के अनुकूल मनोभाव तथा परिवार व समाज कल्याण की भावना निहित

होती है। अधिकांशतया चित्र कथात्मक होते हैं। उनसे जुड़ी कथायें वर्तमान में भी प्रेरक होती हैं। यहाँ दीपावती, हरछठ, देवठान, नागपंचमी, मांय के पट, आरते–मौरते, साउन सुदी नमें आदि का चित्रांकन उल्लेखनीय है।

बुन्देलखण्ड के विशिष्ट लोक पर्व 'सुआटा' या 'नौरता' शारदीय नवरात्रि में बालिकाओं द्वारा समूह में खेला जाता है। इस अवसर पर प्रतिदिन भूमि पर नया आलेखन बनाया जाता है। प्रत्येक बालिका अपनी कल्पना शीलता से सुरुचि पूर्ण भूमि–आलेखन बनाती है। इसमें प्रयुक्त होने वाले रंग प्राकृतिक वस्तुओं से बनाये जाते हैं – जिन्हें बालिकायें लगभग एक माह पूर्व से बनाना प्रारम्भ कर देती हैं। वे खपरैल व दूधी पत्थर घिसकर लाल व सफेद रंग बनाती हैं। इसी प्रकार कोयले से काला गेरू से कत्थई व हल्दी से पीला रंग बनाती है। यह पारिवारिक लोक चित्रांकन पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होते रहते हैं।

मूर्तिकला तथा खिलौने

पारम्परिक चित्रांकन के अनुसार ही पारम्परिक मूर्तियां भी पूजा में प्रयुक्त होती है, जैसे – महालक्ष्मी का हाथी गनगौर व तीजा की पार्वती तथा शिव की प्रतिमायें जो काली मिट्टी से बनाई जाती हैं। संक्राति पर्व पर 'गडिया–घुल्ले' (गाड़ी–घोड़ा) पूजा में रखने की प्रथा है। इनमें पहिये लगे होते हैं। पकवान गाड़ी में रखकर पूजे जाते हैं। मिट्टी में बने गाड़ी–घोड़ा प्राचीन काल की व्यापारिक स्थिति के प्रतीक होते हैं। दीपावली के अवसर पर मिट्टी के ही बने रंगीन गणेश–लक्ष्मी तथा गणेश चौथ पर गणेश की मूर्ति भी बनाई जाती है। बच्चों के लिये तोता, हाथी, गुड़िया, शेर–चीता तथा अन्य खिलौने भी मिट्टी से बनाये जाते हैं। बुन्देलखण्ड में समय–समय पर लगने वाले मेलों में यह खिलौने बिकते हुये देखे जा सकते हैं।



आकर्षक डिजाइन के बुन्देलखण्डी आभूषण

कलात्मक वस्तुयें

अक्ती (अक्षय तृतीया) पर वट–वृक्ष के नीचे पुतरा–पुतरिया (गुड्डा–गुड़िया) का विवाह बालिकाओं का प्रिय खेल है। घरों में कपड़े से सुन्दर गुड्डा गुड़िया बनाये जाते हैं। विवाह के अवसर पर खजूर से बना मौर दूल्हा–दुल्हन सिर पर लगाते हैं।

स्थानीय कच्चे माल डाब, मूंज, सन, बाँस तथा सरकंडा से गृहोपयोगी वस्तुयें बनाई जाती है – सूप, डलिया, रस्सी, बटुआ बिजना (हाथ का पंखा) कुड़री आदि।

काष्ठ कला

घरों के दरवाजे, चौखटें, कृषि उपकरण, मूसल, मण्डप, पूजा की चौकी पेटियाँ, कलमदान, पलंग, बच्चों की गाड़ी जेवर रखने का डिब्बा आदि काष्ट कला के कलात्मक नमूने होते हैं। इनकी बनावट में बुन्देलखण्ड की कलात्मक विशिष्टता परिलक्षित होती है। बच्चों के लिये चकरी, भौंरा, चपेटा आदि भी लकड़ी से बनाते हैं। लाख की चूड़ियां व खिलौने इत्यादि भी यहां कुछ कलाकार बनाते हैं।

धातु कला

बुन्देलखण्ड कृषि प्रधान है। यहाँ लोहे से कृषि सम्बन्धी उपकरण तैयार किये जाते हैं। प्राचीन काल से युद्ध में प्रयुक्त होने वाले अस्त्र–शस्त्र भी यहां बनते थे। उनके नमूने अभी भी संग्रहालय व व्यक्तिगत संग्रह में उपलब्ध हैं।

इसी प्रकार घरों में प्रयुक्त होने वाले बर्तनों में पीतल, कांसा, तांबा, आदि का प्रयोग किया जाता रहा है।

सोना व चांदी धातु सदैव से मंहगी धातु रही है। इस कारण इसका प्रयोग आभूषण बनवाने में किया जाता है। बुन्देलखण्ड में परम्परागत अनेक आभूषण हैं जिनकी बनावट और नाम दूसरे क्षेत्रों से भिन्न है। यहाँ पुरुष और बालक–बालिकाओं के आभूषण होते हैं। स्त्रियों के आभूषणों के नाम इस प्रकार हैं – सिर व माथे पर बेंदी, बिन्दी, शीशफूल, बीजौ, सांकरे। नाक के आभूषण हैं – लौंग, खुटिया, बारी, बुलाक, नथ, पुंगरिया। कानों में – झुमका, झुमकी, छागल, कनफूल, लटकन, बाला, ऐरन, अरौना आदि। गले में पहनने वाले जेवर हैं – टकाउर, हंसुली, तिदानौ, हार, तबिजिया, दुलकियाँ, लल्लरी कठला, हमेल, बिचौली आदि। बाँहों व हाथों में – बाजूबंद, बाँकडे, बाँहटा, चूरियाँ, चूरा, कड़ा, गजरा, बंगरी, ककना, बरा बेंगुआ, पाँसे बजुल्ला आदि। हाथों की अंगुलियों में – मुंदरी, छला, हथपोस और कमर में – करधनी, कड्डोरा, गुच्छा आदि आभूषण धारण करे जाते हैं। पैरों में पहनने वाले आभूषण हैं – लच्छा, रूलें, पायलें, पैंजना, बिछुआ, अनौटा, छल्ली, उंगरठाने, मोरबार, कड़े, गुजरी झांझे आदि।

यह आभूषण सोने वा चाँदी में अपनी सम्पन्नता के आधार पर बनवाये जाते हैं।

वेशभूषा

बुन्देलखण्ड के लोक–जीवन का यह पक्ष भी कलापूर्ण

है। यहां घांघरा पहनने का प्रचलन रहा है जिसे 'बांड' कहा जाता है। यह भी समृद्धि के अनुसार ही सूती रेशमी और जरी का बनता था। लम्बी आस्तीन वालें ढीले ब्लाउज, जो कमर तक होते थे, उन्हें 'पोल्का' कहा जाता है। जो चुनरिया ओढ़ी जाती है वह काफी लम्बी होती है, जो आधे घांघरे को घेरकर सिर तक आती है। चोली पहनने का प्रचलन है। श्रमिक महिलायें 'कांछ' वाली धोती पहनती हैं। पुरुष–साफा पगड़ी, अंगौछा, बंडी, मिर्जई, फतुई, कमीज और धोती कुर्ता धारण करते हैं। पुरुषों में राजसी वस्त्रों में पाग, कतैया, जहाँगीरी साफा, पगड़ी, गरगा, टोपा आदि पहने जाते रहे हैं। वर्तमान में ग्रामीण क्षेत्रों में कहीं–कहीं बुन्देलखण्ड की वेशभूषा पहने हुये दिखाई देते हैं।

गोदना कला

बुन्देलखण्ड में महिलाओं में सौन्दर्य वृद्धि की भावना के कारण शरीर के विभिन्न अंगों पर गोदना गुदवाने की प्रथा रही है। गोदना विशेष रूप से अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा आदिवासियों में गुदवाया जाता है। गोदना गोदने का पारम्परिक तरीका था – शुद्ध घी के दिये की कालिख, हरे बेल की पत्तियों का रस और उसमें बेल की गोंद मिलाकर मिश्रण तैयार करते थे। इसको आक के कांटे में लगा कर शरीर के अंगों पर चुभाकर गोदना गोदा जाता था। गोदना का लेप दीपक की कालिख तोरई के पत्ते का रस अकोय के दूध में मिल कर तैयार किया जाता था। गोदना में धार्मिक चिन्ह बिन्दी, स्वास्तिक या त्रिशूल आदि गोदवाये जाते हैं। स्वयं का प्रिय नाम गुदवाने की विशेष परम्परा है। गोदना से सौन्दर्य वृद्धि, श्री वृद्धि, धैर्य, साहस और श्रद्धा प्रेम की भावनायें जुड़ी हैं।

बुन्देलखण्ड में पशुओं के सींग तथा शरीर पर भी रंगों से चित्रकारी किया जाता था। यहां की डलिया, सूप, हाथ के पंखों पर भी रंगों का कलात्मक प्रयोग दिखता है। यहां का कला पक्ष वास्तव में बहुत आकर्षक है। उसके निर्मल और सरल स्वरूप में क्षेत्रीयता की झलक व सौन्दर्य की भावनायें दिखाई देती हैं।

कला की दृष्टि से सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड धार्मिक परम्पराओं, आख्यानों, प्रतीकों तथा पौराणिक प्रसंगों का दर्पण है। यहां की सामाजिक मान्यतायें कहीं न कहीं कला से अवश्य सम्बन्धित हैं। वर्तमान में इसे पहचानने और उभारने की आवश्यकता है।

—३८०/१, बी, सिविल लाइन्स
बी.के.डी. कॉलेज के सामने, झांसी



सौजन्य से : लोककला दर्पण

वीरसिंह जू देव महल दतिया : एक परिचय

— डॉ. परशुराम शुक्ल



मध्यप्रदेश का सबसे छोटा जनपद है — दतिया। यह झांसी ग्वालियर रेलमार्ग पर झांसी से २४ किलोमीटर एवं ग्वालियर से ७३ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। दतिया एक पौराणिक नगरी है। कहते हैं कि इसे दन्तवक्र नामक राक्षस ने बसाया था। दन्तवक्र बड़ा शक्तिशाली और दुस्साहसी राक्षस था। उसका वध भगवान श्रीकृष्ण ने छल से किया था। दतिया का ऐतिहासिक महत्व भी कम नहीं है। यहां ऐसे अनेक दुर्ग, महल, मंदिर तथा तीर्थ स्थल हैं, जिनकी भव्यता देखते ही बनती है प्रतापगढ़, राजगढ़, रतनगढ़, सूर्यमंदिर, गुफा, मंदिर, गुजर्रा तथा सेंवढ़ा का किला और सनकुआ मन्दिर इसी प्रकार के ऐतिहासिक स्थल हैं।

दतिया में सात मंजिल का एक महल भी है, जिसे पुराना महल के नाम से जाना जाता है। इस महल को ओरछा के विख्यात बुन्देला राजा वीरसिंह जू देव बुन्देला ने आज से लगभग ३७५ वर्ष पूर्व बनवाया था।

इस महल के दरवाजों पर न तो पट हैं और न ही पानी एवं प्रकाश की कोई व्यवस्था। यह महल आरम्भ से ही अभिशप्त रहा है। कहते हैं कि अभिशप्त होने के कारण, इसके निर्माण के बाद इसमें कभी भी राज परिवार का या अन्य कोई भी व्यक्ति नहीं रह सका।

पुराने महल के सम्बन्ध में आज भी अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। एक किंवदन्ती के अनुसार इस महल में भूमि के नीचे सात मंजिलें है। ठाकुर लक्ष्मण सिंह गौर रचित 'ओरछा का इतिहास' के अनुसार पूरा महल नौ खण्डों का है। सात खण्ड भूमि के ऊपर और दो खण्ड भूमि के नीचे। महल के भूतल से नीचे की मंजिलों में जाने के लिए सीढ़ियाँ हैं। इससे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि महल के नीचे कुछ मंजिलें हैं। किन्तु कितनी हैं? इसके सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक जानकारी नहीं मिलती। पुराने महल के नीचे जाने का रास्ता अब बन्द कर दिया गया है किन्तु जब खुला था तब भी किसी ने नीचे जाने का साहस कभी नहीं किया।

एक अन्य किंवदन्ती के अनुसार — पुराने महल के सबसे नीचे वाले खण्ड के मध्य भाग में सोने का विशाल पलंग तथा अन्य कीमती वस्तुएँ सुरक्षित हैं। यह भी कहा जाता है कि इसके भीतर दो सुरंगे हैं, जो राजगढ़ महल तथा चन्देवा की बावड़ी तक जाती हैं।

पुराने महल की संरचना तथा इसके निर्माण काल के विषय में जानने से पूर्व इसका निर्माण करवाने वाले बुन्देला नरेश महाराज वीर सिंह जू देव का संक्षिप्त परिचय आवश्यक है।

वीरसिंह विख्यात बुन्देला नरेश मधुकर शाह के चौथे पुत्र थे। सन् १५९२ में मधुकर शाह की मृत्यु के बाद उनके सबसे बड़े बेटे रामशाह ने मुगलों से सन्धि करके ओरछा की राजगद्दी प्राप्त की। वीरसिंह को दतिया के निकट बड़ौनी की छोटी सी जागीर मिली। वीरसिंह बड़े महत्वाकांक्षी थे। वह बड़ौनी की छोटी सी जागीर से सन्तुष्ट नहीं थे। उन्होंनं शक्ति तथा सेना एकत्रित की ओर अपने शौर्य तथा बुद्धिबल से एक बहुत बड़े साम्राज्य के स्वामी बन गये। मुगल सम्राट ने उन्हें परास्त करने के अनेक प्रयास किये, किन्तु सभी हमेशा असफल रहे।

महाराज वीर सिंह अकबर के शत्रु थे, किन्तु उसके बेटे सलीम के अच्छे मित्र थे। अकबर और सलीम के मतभेदों की वृद्धि के साथ ही महाराज वीर सिंह और सलीम में भी मित्रता बढ़ी।

सलीम मुगल बादशाह अकबर के सेनापति अबुल फजल का कट्टर विरोधी था तथा उसकी हत्या करवा देना चाहता था। यह कार्य महाराज वीरसिंह ने किया।

एक बार अबुलफजल दक्षिण अभियान के बाद अपनी विशाल सेना के साथ लौट रहा था। उसने रास्ते में नरवर के पास पड़ाव डाला। यह समाचार इसी समय वीर सिंह को मिल गया। महाराज वीरसिंह ने अबुल फजल पर आक्रमण किया और उसकी हत्या करके उसका सर शहजादे सलीम के पास भेज दिया। इससे सलीम और महाराज वीर सिंह के सम्बन्ध और भी प्रगाढ़ हो गये। अबुल फजल का शरीर बाद में नरवर से आंतरी (ग्वालियर) लाया गया और यहीं पर उसे दफन किया गया। आज भी आंतरी में अबुल फजल की कब्र देखी जा सकती है।

अबुल फजल की हत्या से अकबर बौखला उठा। उसने महाराज वीरसिंह को परास्त करने के लिए एक विशाल सेना भेजी। मुगल सेना ने उन सभी स्थानों पर कब्जा कर लिया, जो महाराज वीरसिंह के अधिकार में थे। किन्तु महाराज वीरसिंह ने साहस नहीं छोड़ा और कुछ ही समय में उन सभी स्थानों पर

पुनः कब्जा कर लिया। इस बार उन्होंने ओरछा को भी जीता, क्योंकि ओरछा के राजा, उनके बड़े भाई रामशाह ने मुगलों को सेना के साथ मिल कर उनसे युद्ध किया था।

इसी मध्य एक बार शहजादा सलीम दतिया आया था और उसने दतिया के पश्चिमी भाग में स्थित एक टीले पर महाराज वीर सिंह से भेंट की थी। अकबर की मृत्यु के षश्चात सलीम बादशाह बना और जहांगीर के नाम से दिल्ली के तख्त पर बैठा। बादशाह जहांगीर ने अपने पुराने मित्र महाराज वीर सिंह से मित्रता निभायी। उसने उन्हें ओरछा नरेश ही नहीं स्वीकार किया, बल्कि मुगल दरबार में तीन हजारी मनसब का पद भी प्रदान किया।

महाराज वीर सिंह साहसी होने के साथ ही साथ बड़े धर्मात्मा और कलाप्रेमी भी थे। उन्हेंने सन १६१४ में मथुरा के विश्रामघाट पर इक्यासी मन सोने का दान किया। इसके बाद उन्होंने एक शुभ मुहूर्त देख कर संवत १६७५ रविवार माघ सुदी पंचमी को बुन्देलखण्ड के साथ ही साथ बनारस तथा मथुरा के कई स्थानों पर एक साथ ५२ इमारतों की नींव रखी। इन इमारतों में किले, महल, मन्दिर, बावड़ी आदि सभी शामिल थी। इन्हीं इमारतों में एक था 'वीर सिंह जू देव महल' इस इमारत का निर्माण महाराज वीरसिंह तथा शहजादे सलीम की मित्रता की एक यादगार के रूप में किया गया। यही कारण था कि इस महल के निमार्ण के लिए दतिया के पश्चिमी भाग के उसी टीपे को चुना गया, जहां कभी दोनों मित्र एक दूसरे से बुन्देलखण्ड की धरती पर पहली बार मिले थे। इस महल के निर्माण के बाद दतिया में अनेक इमारतों का निर्माण हुआ, अतः आगे चलकर यह पुराने महल के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

दतिया का पुराना महल मध्यकाल की स्थापत्य कला का उत्कृष्ट उदाहरण हैं। यह बुन्देलखण्ड या मध्यप्रदेश का ही नहीं, पूरे भारत का गौरव है। कुछ इतिहासकारों ने तो इसे मध यकाल की सर्वोत्तम इमारत माना है। इसके निर्माण में लगभग ९ वर्ष का समय लगा तथा ३३ लाख रुपये खर्च आया था। इस महल का एक भाग अपूर्ण है, जिससे यह लगता है कि महाराज वीर सिंह ने इसका निर्माण अपने अन्तिम समय में करवाया था और उनकी मृत्यु के बाद यह महल पूरा नहीं हो सका।

इस महल का निर्माण स्थानीय कारीगरों द्वारा आसपास के पत्थरों और चूने से कराया गया था। यह एक आश्चर्य का विषय है कि इस महल में कहीं भी लकड़ी और लोहे का उपयोग नहीं किया गया है। स्वस्तिक के आकार के इस सतखण्डे महल में प्रत्येक खण्ड पर चार चौक है तथा बीच में एक मण्डप है। महल की सभी छतों पर चित्रकला तथा षत्थर पर उकेरी गयी कलाकृतियां हैं। महल का पूर्वी भाग सर्वाधिक भव्य तथा आकर्षक है। इसकी सांतवी मंजिल पर इसी भाग में गणेज जी की मूर्ति हैं महल का प्रवेश द्वार भी इसी भाग में स्थित है। महल का पश्चिमी भाग महल का पिछला भाग कहा जा सकता है। इस भाग में लगी हुई पत्थर की जालियों की नक्कासी अत्यन्त आकर्षक है। इस महल की एक विशेषता है इसका भीतर से चारों तरफ से एक जैसा होना। इसमें एक मंजिल से दूसरी मंजिल पर जाने को लिए अनेक रास्ते हैं, अतः पर्यटक अक्सर रास्ता भटक जाते हैं।

वर्तमान में वीरसिंह जू देव महल को पुरातत्व विभाग का संरक्षण प्राप्त है। इस विभाग के द्वारा उसकी कुछ स्थानों पर मरम्मत भी की गयी है। सन् १९२५ में ऊपर की मंजिल का एक भाग बिजली गिरने से क्षतिग्रस्त हो गया था, जिसे मरम्मत करके ठीक कर दिया गया है, किन्तु पत्थर तराश कर लगाये गये शहतीरों में वह सफाई नहीं आ पायी है, जो मूल शहतीरों में थी।

इस महल में निर्माण से लेकर आज तक राजपरिवार का या अन्य कोई व्यक्ति कभी नहीं रह सका। सन् १९४८ में कुछ शरणार्थी अवश्य इसमें आकर रहे थे लेकिन उनके साथ लगभग प्रतिदिन कोई न कोई दुर्घटना हुयी। एक बार शरणार्थी सिन्धियों की एक बारात इस महल में ठहरी और अगले दिन दूल्हे सहित गायब हो गयी। इससे महल में रहने वाले सिंधियों में ही नहीं, पूरे नगरवासियों में भय व्याप्त हो गया। सिन्धी तो इतने भयभीत हो गये कि उन्होंने दो दिन के भीतर ही महल छोड़ दिया।

स्थानीय लोगों का मत है कि यह एक अभिशप्त महल है तथा इसमें आज भी प्रेतात्माओं एवं जिन्नों का निवास है।

महल की वास्तविकता जो भी हो, किन्तु यह सत्य है कि यह महल मध्यकाल की स्थापत्य कला का अद्भुत नमूना है तथा इसे निःसंकोच भारत की श्रेष्ठ इमारतों में स्थान दिया जा सकता है।

— अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग,
बुन्देलखण्ड कॉलेज, झांसी (उ.प्र.) □

डग डग स्मारक बनवादो, जिन्दन खां भगवादो।
भूंखे पेट अन्न न मांगे, बोल बन्द करवादो।।
हाड़ मांस की लाशें इनखां, सागर में डुबवादो।
पूरे भारत कौ भूतन खां, पट्टौ फिर करवादो।।

—एल.एम. चौरसिया □

तिरहार क्षेत्र का भक्ति संगीत : एक पहचान

— राहुल मिश्र

बुन्देलखण्ड का तिरहार क्षेत्र, का नाम सुनते ही मन एक अजीब सी परिकल्पना एक अजीब सा चित्र उभरता है। गरीब और अमीर के बीच एक चौड़ी खाई, दादुओं, डाकुओं और अपराधियों को शरण देते ऊबड़ खाबड़, असमतल पठारी क्षेत्र और घने जंगल या फिर गरीबी, बेकारी शोषण और उपेक्षा की दर्द भरी दास्तान सुनाती वीतरागी केन नदी, जिसने तमाम दर्द तमाम दुःख अपने अंदर छुपा कर आने वाले की प्यास बुझाई है। लेकिन तिरहार क्षेत्र की पहचान इतने से ही पूरी नहीं हो जाती। आधुनिकता के अंधानुकरण में गिरते, पड़ते सरपट दौड़ते तमाम बड़े नगरों से दूर भगवान राम की तपोस्थली चित्रकूट के प्रभाव से आलोकित महर्षि वामदेव, अत्रि बाल्मीकि सहित अनगिनत ऋषि—मुनियों की कर्मस्थली के परिवेश में बसे तिरहार क्षेत्र के गाँवों की मिट्टी से आज भी वही स्नेह, प्रेम, भक्ति और आपसी भाईचारे की भीनी—भीनी सुगंध आती है जिसके वशीभूत होकर श्रीराम ने अपने वनवास की अवधि का एक बड़ा कालखण्ड इस क्षेत्र के वासियों के बीच गुजारा।

मथुरा और गोकुल से कान्हा की वंशी के नटखट स्वरों को अपनी अल्हड़ता में, अपने कल—कल निनाद में पिरोकर आगे बढ़ती कालिन्दी (यमुना) भी तिरहार क्षेत्र में आकर कृष्ण को भूलकर राम मय हो जाती है, गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस के दोहे गुनगुनाने लगती है। यह है इस क्षेत्र की पहचान, पूर्ण आसक्ति नहीं, पूर्ण समर्पण, और जोड़ने वाला पदार्थ है — भक्ति भाव, सद्भावना और मैत्री भाव। गोस्वामी तुलसीदास का रामचरित मानस इसका प्रतीक है। यही कारण है कि रामचरित मानस तिरहार क्षेत्र में हर गरीब हर अमीर, ऊँचनीच के लिए आस्था का केन्द्र है। वैसे तो राम के वनवास से जुड़े चित्रकूट के कामदगिरि और मनोकामना पूर्ण करने वाले कामता नाथ स्वामी समूचे बुन्देलखण्ड के आराध्य देव हैं किन्तु चित्रकूट के साथ तिरहार क्षेत्र की निकटता यहां के जीवन में स्पष्ट परिलक्षित होती रहती है।

यही कारण है कि जब भी तिरहार क्षेत्र के भक्ति संगीत की बात आती है, तब तुलसीकृत रामचरितमानस को पहले स्थान पर रखा जाता है। वैसे तो सुबह हो दोपहर या शाम हो। गर्मी की तपती धूप में किसी पेड़ के नीचे या चौपाल में, जाड़े की कुनकुनी धूप में किसी कुएं की जगत में या किसी मंदिर के प्रांगण में लयबद्ध स्वर से मानस की चौपाइयां गाते लोग मिल ही जाएंगे या फिर घने अंधकार में डूबे सुदूर किसी गांव में दीए की रोशनी में मानस पढ़ते किसी बच्चे या बूढ़े की लयबद्ध आवाज सुनाई दे ही जाती है। कुल मिलाकर भक्तिसंगीत के नाम पर रामचरित मानस इस क्षेत्र की पहचान है किन्तु इसके अतिरिक्त भक्तिगीतों व संगीत की विविध विधाएं भी इस क्षेत्र में प्रचलित हैं। कुछ प्रमुख एवं प्रचलित विधाएं निम्न हैं —

कबीरी :

रामचरित मानस के बाद कबीरदास के भजनों का स्थान आता है। कबीरदास के भजन इस क्षेत्र में कबीरी के नाम से जाने जाते हैं। तानपूरा, चमीटा या ढोलक हारमोनियम के साथ कबीरी भजन बेहद कर्णप्रिय लगते हैं। कबीरी भजनों में अधिकतर जीवन के यथार्थ, जीवन के सत्य और जीवन के परम लक्ष्य मृत्यु का बोध होता है और इसके माध्यम सद्कर्मों में लगने का उपदेश दिया जाता है, कुछ पचलित कबीरी के बोल निम्न है —

(अ) कहां के पथिक कहां लाए हो गवनवां,
कौन गांव के कौन नगर के
कौन पुरुष के दोनों रे सजनवा
कहां के पथिक कहां लाए हो गवनवाँ।

(ब) झीनी—झीनी बीनी चदरिया, काहे के ताना
काहे के भरणी, कौन तार के बीनी रे चदरिया,
इंगला पिंगला ताना भरणी सुषमन तार से
बीनी चदरिया, झीनी झीनी....

(स) कौन है तोरी बहन बादरी कौन है तोरी
मातारे, कौन है तोरे भाई भतीजा, केहिसे
तोरा नाता रे।
कफन तो मोरें संग जाएगा कफन से
अपना नाता रे।

प्रभाती :

भोर में गाए जाने वाले गाने प्रभाती कहे जाते हैं। सामान्यत: दिनचर्या में कार्य करते हुए बिना किसी वाद्य यंत्र के इन्हें गाया जाता है किन्तु फिर भी यदा कदा बांसुरी, चिमटा, तानपूरा या ढपली की ताल में लय मिलाकर भी इन्हें गाया जाता है—

(अ) भोर भए पंछी सब जागे, मुनि सब द्वारे ठाढ़े
गोपी दही मथत सुनियत हैं कंगन की झनकारे
जागो प्यारे बंशी बारे जागो प्यारे।

(ब) *दशरथ के लाल को जगाय रहीं जानकी पंचवटी मां*
मेरे मेर से द्वार सजाय रही जानकी पंचवटी मां
दशरथ के लाल को......

रसिया (पथ के गीत) :

किसी शुभ कार्य के लिए जाती हुई महिलाओं द्वारा गाए जोने वाले गीत प्रभाती कहलाते हैं। विशेषकर शादी–विवाह में महिलाएं इन गीतों को गाती हैं। सामान्यता बिना किसी वाद्ययंत्र के इन गीतों को गाया जाता हैं फिर भी यदा कदा ढोलक का प्रयोग कर लिया जाता है, जिसे महिला गले में टांगकर या कमर में बांधकर समूह में आगे–आगे बजाते हुऐ चलती है –

(अ) *लक्ष्मिन सजे बान रामा हिरनिया मारी,*
अरे हिरनी ताल बिच ठांढ़ी ताल बिच ठांढ़ी
ताल बिच ठाढ़ी; धोबिया तोरी ओट रामा
हिरनिया मारी हिरनिया मारी।

(ब) *पन्ना के जुगुल किशोर मुरलिया मा,*
हीरा जड़े हैं, सोने के टाठी मा जंवना
बनायौं, ज्यावां जुगुल किशेर हो मुरलिया
मा हीरा जड़े हैं। पन्ना के जुगुल किशोर।

जवारा गीत :

नवरात्र में देवी आराधना में प्रचलित देवी गीतों को जवारा गीत कहा जाता है। देवी की विशिष्ट पूजा पद्वति में मिट्टी में जौ के बीज बोकर पूजा की जाती है। नौ दिनों बाद विसर्जन होता है। वैसे तो जवारा गीत पूरी नवरात्र में गाए जाते हैं किन्तु विसर्जन के समय गायक मण्डली के साथ चल रही भक्त जनों की टोली में ये गीत असीम उत्साह व श्रद्धाभाव का संचरण करते हैं। ढोलक, मंजीरे, झांझ व चिमटे के साथ गाए जाने वाले ये गीत बरबस ही मन को अपने से जोड़ लेते हैं। बोल कुछ इस प्रकार हैं –

(अ) *अरे कुम्हरा मटिया जय हो मां।*
मइया भाई के दुवारे एक लौंग का बिरवा,
झूला–झूले जय हो मां।
अरे कौना झूले कौन झुलावै कोना मिचकी देय हो माँ।
अरे मइया झूले लंगुरा झुलावै भैरव मिचकी देय हो मां।
हो मइया...

(ब) *तोरे भरोसे मइया नइया चढ़त हौं,*
खे कै लगायो पार हो माँ।
हो मइया खै कै लगायो पार हो माँ।
काहे की मइया मोरी नइयां बनी है काहे की पतवार हो माँ।
हो मइया...

फाग :

वैसे तो होली हुदड़ंग और मौज मस्ती का त्यौहार है फिर भी हुदडंग के साथ भक्ति भी जुड़ जाए तो स्वाद कुछ बेहतर हो जाता है। होली में रंग बिरंगे चेहरे, उड़ती गुलाल के बीच ढोलक की थाप पर जब गाते हैं तो स्वर्गिक आनन्द प्राप्त होता है। भक्ति रस में सने फाग गीतों के कुछ बोल इस तरह हैं –

(अ) *आज बिरज हरि होरी मचाई,*
कोरे कोरे कलस मंगाए घोरत रंग
रोरी, आज बिरजहरि होरी मचाई
भर पिचकारी सनमुख मारी, भींज गई मोरी
सारी, आज बिरज हरि होरी मचाई।

(ब) *श्री कृष्ण लीन्ह अवतार*
लाला फूलन की बरषा हवै जो रही।
किनके ग्रामा जनम लियो
सखि किनके ग्रामा जनम लियो अब कौनन दूध पियाय,
लाल फूलन की...

भजन :

विभिन्न वाद्ययंत्रों के मण्डली में भजन गाए जाते हैं। मंदिरों में या संकीर्तन मण्डली दूर–दराज के गांवों में जाकर संभ्रान्त लोगों के यहां या किसी सार्वजनिक स्थल में भजन गाती हैं। इस क्षेत्र की बोली तिरहारी में गाए जाने वाले कुछ प्रचलित भजन निम्न हैं –

(अ) *दया धरम नहीं तन मा,*
मुखड़ा क्या देखे दरपन मा।
कौड़ी–कौड़ी माया जोड़ी–जोड़ धरी
बरतन मा मुखड़ा क्या देखे...

(ब) *बुढ़ापा आ गयो हत्यारो,*
बालापन मैं खेल–गँवायो दूध पियो मुस्क्यानो...

(स) *राम भजन नहिं कीन्हा रे माया के लोभे,*
नौ नांदन मा दहिया जमायो सींक बोर नहिं खायो रे,
माया के लोभे,
टोला परोसिनी माठा की आई नारिन से जिऊ घूटै रे,
माया के लोभे।

(द) *कलमदान हरि स्याही मंगवाई,*
पुरजा लिखो बनाई,
पहिले लिखो हरिनाम आपन पाछे लक्षिमन की लड़ाई
कलमदान हरि...

इनके अतिरिक्त कुम्हारी व रैदासी में भी भजन गाए जाते हैं। आज भी ये गीत हमारी पहचान बने हुए हैं।

किन्तु आधुनिकता ने बहुत कुछ बदल दिया है। हम

सूतौ न पौंनीं कोरी सें लठा–लठौ

— डॉ. नारायणदास गुप्त 'कमलेश'

एक गांव में एक ठाकुर–ठकुराँन रत्ते। जब उनपै गिरानी आई तब एक दिनाँ उन्नें विचार करौ कै ऐसें बैठे बैठें कैसें काम चल है।

ठकुराँन बोलीं — दाउजू रीते कुआ पतोराँन नई भरत, बिना झिरें कुअऊ चोय, आजात हैं तासें कछू उद्दम करियें। ऐसे कानों पूरौ पर है।

ठाकुर ने जुआब दऔ कै बताओ हम का करें जमींदारीं हतीं सो चलीं गई अब कोंन के लरका बिटियाँ खिलाउँन जाँए, कौन कीं कप–बसीं धोंउँन जाएँ।

ठकुराँन बोलीं — जमींदारी चली गई सो चली जान दो, कौन काउनें आपनें हॉत–पाँप काट लये। जोनों अपयें डडँन में तागित है, तोंनो मुतकौ करखें। अपई जोंन आद है तौंन करियें। अपयें हातँन खेती करियें, भैंसिया लेलियो सो मठा झारौ हुये, गिरस्ती कौ पलाव हुये, साव कौ पैसा पट है। चीकनों हात होत रे है, नोंन–तेल को काम चल है।

ठाकुर बोले–भैंसिया कों रुपैया काँ धरे।

ठकुराँन बोलीं — साव खुशी बनें रहें फिर रुपैयँन कौ का टोटौ। ठाकुर ने कई भैंसिया ऐंन लैलो अकेले हम पै गोबर–कूरा न बन है।

ठकुराँन बोली — का सिर्री हो गये, जौ तौ हमाऔ काम है, बाँट–बिनौरा भऔ, गोबर–कूरा भऔ, सो हम सब कर हैंई, अकेलें हमाऔ चारे को बुतौ नैंया, सो तुम लियाव करे। काय कैं भैंस कौ बांधबौ और हाथी कौ बाँधनौ एक होत है।

ठाकुर बोले जौ मो तरें आई। जरिया पाले कौ हकठेला करें रेंओं, दो बीघा ठड़ेल करा लेंओं इतने में तौ भैंसिया संट बनी रै, और साँचउँ बातरें नैनूँ कौ ऐसौ लोंदा निकरबै कर है, कै काढ़तन में तेरौ कौंचा मुरक–मुरक जाए।

ठकुरांन बोलीं कै ऐं। तुम तो मसकरीं करत हो, साँसउँ जब भैंसिया आजै तब आपई मड़ैया कौ रूप बनजै। गाँव में इज्जित होंन लग, तुमउँ ठलुआ बने न रेऔ, दोउ जने हिल्ले सें लगे रें।

अबै चुरु–चुरु भर मठा कों तरसत हैं। घर कौ मथनियां भर हुये तब खा–खा कें करऔ कर हैं। अबै मठा वारीं मौं से नई बोलतीं। मोय तौ बड़ौ बुरौ लगत है जब कोउ लकरिया सी टोर देतीं। जब घरै मठा होन लगै तब अपयें घरैई मुतकीं जनीं आउँन लग हैं। परोसिन आई दो गड़ई मठा उनउयें गहा दऔ।

ठकुराँन की मठा देवै की बात सुनकें ठाकुर कों बड़ी गुस्साँ लगी। बोले — हूँ, हम ससुरजू जरिया धुन–धुनकें मर हैं, तुमने सर्र मठा गहादऔ। हमाई छाती पै तो हात धरौ, ऐड़ी कौ माँस नरेरीं आउत है जरिया कतरबे में। तुमने मेरे पूँछें बिना मठा काय गहादऔ।

ठकुराँन बोलीं — बा तुमतौ हवा सें लरत हौ। मैं कौन परी रैं हौं, मुरगा बोले सें उठ हों, गोबरकूरा कर हौं, गू–मूत डार हों, दो गड़ई मठा गहा दओ तौ का हो गओ। ठाकुर बोले–मेय बिना पूछें दओई काय, ऐसी कइअई काय। ठकुराँन ठसक भर कें बोली, कैं घर में रेंहौं तौ ऐंन देंहो। का मेरौ कछु नई लगत, मैं कौंन कितऊँ सें पकरी चली आई हौं।

ठाकुर बोले — मठा न देंन दें। ठकुराँन बोलीं हम दैकें मानें। बातँन–बातँन में रार बढ़ गई। असल–नकल होंन लगी।

भूल चुके हैं कि हमारे इस भौतिक शरीर की जन्मदात्री तो हमारी माँ है, लेकिन हमारे अंदर व्यावहारिकता, सामाजिक जीवन जीने की कला, आपसी सौहार्द्र, प्रेम और भाईचारा व समन्वय के विचार जो हमें पशुत्व से भेद करते हैं, व अनुकूलन तो हमारी संस्कृति से ही जन्म लेता है। हमारी संस्कृति विविध में भी एक रूप हैं इसीलिए भारतवर्ष एक भूखण्ड ही नहीं वरन् भारतमाता है। इसकी विविधता भरी संस्कृति की उपज हम और हमारे पूर्वजों के अपनी जननी संस्कृति के बूते पर ही विश्व के महानतम राष्ट्रों की श्रेणी में भारत वर्ष को सर्वोच्य स्थान पर प्रतिष्ठापित किया है। इसीलिए हमें अपनी अद्वितीय विविधता भरी बुन्देलखण्ड की तहजीव को दकियानूसी या पिछड़ेपन की निशानी न समझकर, गौरव का अनुभव करना चाहिए। यह भविष्य का सत्य है कि वर्तमान उपभोक्तावादी अपसंस्कृति की विनाशलीला से बचने का आश्रय केवल अपनी बुन्देलखण्ड की संस्कृति, रहनसहन व खानपान में ही मिल सकता है। किन्तु कहीं ऐसा न हो कि लौटने से पहले ही सबकुछ समाप्त हो चुके और तब भविष्य का इतिहास हमें शर्म से झुकने को मजबूर कर दे। तो आइए आज से ही अपनी बुन्देली संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए स्वयं को तैयार करें और इस हेतु एक वातावरण का निर्माण करें।

— छाबी तालाब रोड कैलाशपुरी, बांदा (उ.प्र.) □

ठाकुर ने उठा डोंड़का मार–मार कें ठकुराँन की कथरी पीठ कर दई। झरा दई फटे पाल कैसी धूरा। जब खूब कलहौ हो गओ तब दोउ जने बिना बियारी के अलग–अलग जा परे। धरी बियारी बिलइयँन नें करी।

ठकुराँन कौ मायकौ लखतोई हतौ। भोर भओ, ठाकुर तौ जंगलै कढ़ गये, इतने में ठकुराँन के मायके की काछनें कबार बेंचन आईं। एक ने अपनी पिरिया ठकुराँन के द्वारें आँन उतारी। बोली बिन्नू लैलो कछु तिरकाई। ठकुराँन बोली – कक्को कछू नई लेंनें। काछिन बोलीं – तुमाये हांत की बोंनी अच्छी होत आय कछू तौ लैइलो।

ठकुराँन बुरौ मन करकें बोलीं – की कों कनें तिरकाई, कौ बैठौ हमायें खबउआ।

काछिन बोली – बिन्नू कैसीं खबरें करती हौ – सिर्रिन कैसी, कौ नैंयाँ, राम नें तुमाँये का नई दओ। तुम कैसौ कोउ भागिअऊ तौ होले।

ठकुराँन बोलीं मो कैसौ दुक्ख भगवान सत्तुर–बैरी कोउ न दे। काछिन बोली–बेटा बैकुंठी कैसी खबरें करती हौ, तुमायें सास न नन्द, कोउ होड़ कौं हींस कों, अपई नींद स्रोवो, आपई नींद जगो। सेर भर चून के गाहक हौ। हारै नई जाने, खेतै नई जानें। हमाई तौ कओ कैसी अभियारी सास हती। तुमउँ नें देख लई –तामें निभे, बेटा। दिन से दिन नई कई रात सें रात नई कई। चार लरका–बिटियाँ पाले। तुम अबेइसें ऐसीं खबरें करतीं।

ठकुराँन बोलीं – कक्को! हमाये जी की हमई जानत। काछिन बीच मेई बोल परीं – का जानतीं लरका बा जमाने में, ओंठ फोर कें बात नई कत, चाँय कारौ करौ चाँय कबरौ। बौ विचारौ बिना मों कौ भोला नाथ। इत्ते बेर गओ सरम के मारें काउसें बोलत सुद्दां नैंयां। हमाये कैसौ आदमी पाउतीं बेटा, तौ जानें का करतीं। तुमाओ कक्का अबै सुधर गओ। जानें मोकों ऐसे हेबा दिखालये, कै तेरे–मेरे कहें मार सुद्दां लई, तोउ मैं भुगती।

इतनी सुनकें ठकुराँन नें कई – कक्को तुमउँ चार लरका की मताई हो गई कक्का कों पूंछ–पूंछ के का–का काम करती हौ।

काछिन ने ऊतर दओ कै बेटा जोंन पूँछत की होत तौन पूँछत जोंन पूँछत की नई होत तोंन नई पूँछत। इतनीं सुनकें ठकुराँन नें मठा कौ किस्सा हतौ सो कै सुनाओ। उधार कें हरी–लीली पीठ दिखाई। देखकें काछिन–कक्कों कों बड़ौ पीतौ भओ। दोउ जनीं गरें लगकें खूबई रोई।

चलती बेराँ ठकुराँन ने कै दई कै हमाई मताई से कै दिओ कै तुम अपई बैकुंठी कौ मौं देखने होय तौ भैया को पोंचा देय सो वे हमें लुवा ले जाँय – नातर हम कुआ–नदी करकें मों नई दिखायें।

काछिन बोली बिन्नू तोय मेरोइ कौल है, जौ जिन करिये। मैं आजई पोंचा देंओ।

इत्ती कै कें काछिन झट्ट–पट्ट तिरकाई बेंच कें – लइयाँ–पइयाँ घर कों चलीं। आपनें घरै पाछें गई पैलें बैकुंठी की बाई नों पोंची। बोली– जिज्जी का कर रई। बैकुंठी की बाई बोलीं – कछु नई री मैं तौ दो दिनांकी शरदी–खाँसी के मारें बासे दाँतन परी अन्न सें परवेश नैंयाँ। का आलमपुरै गई ती, मेई मोड़ी नों गई ती। मजे में है मेई बैकुंठिया? आज मोय बौ बर्राटन में दिखा परी।

काछिन बोली – जिज्जी! उनकी हालियत देखो तौ मेरे परम–परम धरत हैं।

बैकुंठी की बाई बोलीं – कौन तरा की है मलजदिया मेई मोड़ी कैसौ सुक्ख, काउअई कों है। सातउ भाग बिरोबर खावे कों कउआ (कौआ) को डेल डारँन नई जानें ताकि तें ऐसें कत।

काछिन बोली – जिज्जी का बताओ नासिन जू लरका के मों लग बैठीं, सो बाने उनकी मार–मार के पीठ परोथनी कर दई।

बैकुंठी के बाई नें कई कै ऐंरी तेंनें जौ नई पूंछी कै काय पै भयें लराई हो परी।

काछिन बोली जिज्जी आजकल के जमानेई में आग लगगई। अनबाँधी लकरियाँ हो रई हैं का कछू डर–भै है। अपुँन मुराइँ परौसिन कों मठा गहादओ जब लरका रोक रओ तौ, तौ इनें नाँ दाँय चइयत्तौ। हठ पकर गई। कुँवर बोले हम असल के हुये तो न देंन दें। बिन्नू बोली हम असल कीं हुइयें तौ दै के माँन। आदमी की रिस, न समानी, उठगओ हात कोउ बीच–बचाव को हतौ नई, काउ कौ मों चलौ काउ कौ हात चलौ। तेई सौ जिज्जी मोड़ी कों मार–मार कें निपसेल कर दई।

अरे बैंन हमऊँ–तुम हैं तो लज्जा राखत हैं। आज–काल के लरका–बिटियँन ने तौ लाज–सरम सब खोदई। जे चरुत्तर देखें सें मेई तौ अक्कल कही नई करत। बोई कानूत है कै देखोरी आँखें, सुनों रे कान।

बैकुंठी की बाई कों विश्वास नई भओ, बोली – ऐंरी उनकें मठा काय कौ बरत्तौ। काछिन मों मटका के बोली–भैंस कौ हतौ।

वे फिर बोलीं – काय तरें हैं। उनके चराबे के बुते हैं भैंसन के। अबै बधाये में गैया दैरये ते सो कत्ते कै हमायें को

चरइया बैठौ और अब देखे जा लरकाये का सूझी मेई मोड़ी की छाती पै कों भैंस बांध दई अपुन मनआई तिते दम्मे देत फिर है। ऐरी तेंने रोके नई कै भैंस काय कों लई।

काछिन बोली जिज्जी अबै लई कितै है, सलाय करयेते, बातनईं — बाँतन में लराई हो परी। जई करम कों तौ रोउत हैं कै भेस—ऐंस के तौ लोखऊ नैंयाँ और मोड़ी कों अधमरी करदई।

मोड़ी कौ हाल सुनकें बैकुंठी की बाई बहुतऊँ — दुखारू भई, बड़ी रोई—किलपीं। तोंनों उनके लरका पनुँआँ दैकें आगये। बोले — मताई का है, काय रोरई?

बैकुंठी की बाई रोकें बोली — बुरे के जी को रोरये, नास गये हौ वा वैंन कों लुवा लिआओ। अरै सिराउन काछिन कबार बेंचन गई ती सौ बौ कत आई के तुमाये बेंनेऊ ने तुमाई वैंन को मार—मार के फोड़ारी। इत्ती कै के उन्ने मठा कौ किस्सा हतौ सो सुनादऔ। सुन के वैकुंठी के भैया सब समझ गये। बोले जिन रोओ मताई सकारेंई लिवा लिआँओं।

दिन मुँदो सबने वियारी करी, मताई ने फिकिर के मारे कछू नई खाऔ। सबनें समझाये कै देखो मताई कोउ काऊ कौ करम कौ साथी नई होतई।

मताई बोलीं नासी हो —

जाकी धी सुखी, ताकी मैया सुखी।
जा की धी दुधी, ताकी मैया दुखी।।

मेरें लरका न बिटियाँ सब बिरोबर हैं। सोई तुमकों पीरें लई सोई बाकों पीरें लई। इत्तौ होकें सब सो गये।

बैकुंठी के मैया ने रात के परें—परें सोची कै सबेरे चलकें ठाकुर की गँवाँरी उतारें चइये। कछु जुक्ती सोच कें बे मनई मन बड़े खुसी भये और ओर रजाई सो गये।

दूसरे दिनाँ भुन्सारेंई लै डोंड़का बैन के धरै जा पौंचे। उसारे में बेनेऊ ओड़े कथरी पियार में परे तें। इन्ने जाकें आव देखो न ताव, उतार पन्हाँ घुरिया सी कस दई। जब फटके होने लगे तब उनकी आंख खुली। बोले — को है रे सोउतन में हैरान करें।

सारे बोले — बड़े मिजाजी, तुमाई भैंस नें दो बीगा बेझर में पेड़ौ नई वचँन दऔ। ठाकुर बोले कैसे हौ बड़े। हमनों भैंस कितै पबरत सो तुमनें पटकें सी आँन लगाई। सारे बोले — कैसें नैंयाँ। ठाकुर बोले — गंगा सों, राम धई, मेरें भैंस काँसें आई।

सारे बोले — जब तुमायें भैंस नैंयाँ तर हमाई वैंन नें मठा काँसें गहादओ तौ तापै तुमनें मार मार कें बाकी कथरी पीठ करदई। तुमनें तौ बौ कांनूत करी कै ''सूतौ न पोंनी कोरी सें लठा—लठौ''।

जब ठाकुर जू कें दस—पाँच हात घल गये सोई होश में आ गये। राम—जुहार भई। ठाकुर नें भूला मनाऔ सारे ने वैन कों बुलाकें वैंन—बेनेऊ में मेर कराऔ। दोउ जनिन कों समझाये कै देखौ नोंने रैवै करे जैसें मान्स रत —

सोंठ सी कऔ न आदे सी किवाओ।
नोचिया लेव न बकुट्टा भराओ।।
सूरा नोंतो न दो जने बुलाओ।

इन बिन गुत की बाँतन में न वीदे रओ करे। कछू उद्दम करौ जासें अपयों और अपयें बुंदेलखंड कौ भलौ होय। काउ कवि ने कई है कै —

'पुरुष—पारष की माया होत,
करत जे पोरष हैं दिन रात।
उनईं कों देत सहारौ राम,
उनईं कों देत लक्ष्मी साथ।।'

भैया कीं बातें सुनकें ठकुराँन ने ठाकुर की ओर चिता के मुस्क्या दऔ। हमाई कहानियाँ हतीं सो हो गई।

—आयुर्वेदरत्न आयु. वाचस्पति, आलमपुर, भिण्ड म.प्र. □

बुन्देली पद

— डॉ. डी.पी. खरे 'प्रसाद', टीकमगढ़

छोड़ गरूर अबई लै चेत।
ऊ बेराँ को कामें अइहै होंय बार जब सेत।
जितनों बने कमा लै जस खौं बहुर न मन कौ लेत।
झूँठ माट के कपटी साथी कभऊँ संग न देत।
ठोक बचा कें देखौ उनखौं सोनों हैं के रेत।
कहें 'प्रसाद' कबै तैं चेतै चिड़ियाँ चुग लें खेत।
छोड़ गरूर अबई लै चेत।।

कितै चली रे पतंग।
छोड़ दयौ तूंने गिर्रा खों करो गगन कौ संग।
कछु सोच कैं हम रै जावत न करते अंग भंग।
डोर साथ में लेत जात ज्यों नार पती के संग।
जब तूँ ढड़की लगो इक धक्का हृदें उठी तरंग।
कबैं 'प्रसाद' लौट कें आजा, रऔ देख कें दंग।
कितै चली रे पतंग।।

मूर्तिकला, स्थापत्य एवं चित्रकला के परिप्रेक्ष्य में बुन्देलखण्ड

— डॉ. सरोज गुप्ता

भारत के मानचित्र पर अंकित बुन्देलखण्ड क्षेत्र अपनी अलग पहचान, अलग अस्तित्व रखता है। बुन्देलखण्ड का अतीत उन्नतशील समुज्जवल तथा गौरवशाली है। आज जब हम भाव विभोर हो अपने देश के अतीत का स्मरण करते हैं तो हमारी रग रग में एक अलौकिक उत्साह जोश एवं श्रद्धाभाव जागृत हो उठता है कि यह वही बुन्देलखण्ड वसुन्धरा है जिसने समय–समय पर देश का गौरव बढ़ाया है, यह वही धरती है, जिसने शताब्दियों से भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक तथा शिल्प कला, संगीत, स्थापत्य कला आदि की दृष्टि से अपनी अलग पहचान बनायी है।

बुन्देलखण्ड भारत का हृदय क्षेत्र है तथा इसका इतिहास अतिप्राचीन है। डॉ. बलभद्र तिवारी के अनुसार बुन्देलखण्ड सुदूर अतीत में शबर, काल, किरात, पुलिन्द और निषादों का प्रदेश था। आर्यों के मध्य देश में आने पर इन जातियों ने प्रतिरोध किया, दोनों पक्षों में संघर्ष हुए, पराजित पक्ष को समन्वय करने पड़े जिन्हें हम तत्कालीन उपासना पद्धतियों, आचार विचार और रीति–रिवाजों में लक्षित कर सकते हैं। वैदिक काल से बुन्देलों के शासन काल तक दो हजार वर्षों में इस प्रदेश पर अनेक जातियों और राजवंशों ने शासन किया और अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना से इन जातियों के मूल संस्कारों को प्रभावित किया है। विभिन्न शासकों ने मौर्य, शुंग, शक, हूड़ कुषाण, नाग, वाकाटक, गुप्त, कलचुरि, चन्देल, अफगान, मुगल, बुन्देल, बघेल, गौड़, मराठे और अंग्रेज मुख्य हैं इनकी सांस्कृतिक, जातिगत अथवा सामाजिक चेतनाओं को इतने विपुल रूप मे बुन्देलवासियों ने आत्मसात किया है।[1]

बुन्देलखण्ड की भौगोलिक सीमा भारतवर्ष के उत्तरप्रदेश राज्य के दक्षिण का भू–भाग, पुण्य सलिला यमुना, नर्मदा, चम्बल, तमसा, बेतवा, धसान सरिताओं की धाराओं से परिवेष्ठित है। दीवान प्रतिपाल सिंह के ग्रन्थ 'बुन्देलखण्ड के इतिहास' की पंक्तियाँ बुन्देलखण्ड की सीमा का निर्धारण करती है —

'उत्तर समथल भूमि गंग जमुना सुबहति है।'
प्राची दिशि कैमूर सोन काशी सुलसति है।।
दक्खिन, रेवा, विन्ध्याचल तल शीतल करनी।
पश्चिम में चम्बल– चंचल सोहति मन हरनी।।
तिन मधि राजे गिरि, वन सरिता सहित मनोहर।
कीर्ति स्थल बुन्देलन को बुन्देलखण्ड वर।।[2]

वियोगी हरि का दोहा बुन्देलखण्ड सीमा निर्धारण के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है — ''इत जमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टोंस। छत्रसाल सों लरन की, रही न काहू हौंस।।'' बुन्देलखण्ड के विस्तृत सीमा क्षेत्र को देखते हुए किसी विद्वान की एक प्रसिद्ध पहेली याद आती है जिसका उत्तर है बुन्देलखण्ड।

''भैंस बंधी है ओरछा, पड़ा होशंगाबाद।
लगवैया है सागरे, चपिया रेवा पार।।''

बुन्देलखण्ड को प्राकृतिक दृष्टि से विंध्य पर्वतमाला की मान्यता प्राप्त है और ऐतिहासिक दृष्टि से यह भारतवर्ष का वक्षस्थल माना गया है। विंध्यप्रदेश की सरितायें उत्तरोन्मुखी है, पर्वतों के संबंध में भू–गर्भ शास्त्रियों का मत है कि विंध्यखंड प्राचीन शिलालेखों और वनों का प्रदेश है। बुन्देलखण्ड का गौरव गिरिराज विंध्याचल, शैल राज हिमालय से भी पुरातन है। इसके संबंध में पुराणकारों के उद्गार —

'महेन्द्रो मलयः शक्तिमान ऋक्ष वानपि,
विन्ध्यश्च परियात्रश्च सप्तै ते कुल पर्वताः।।'[3]

विन्ध्याचल पर्वत की प्राचीनता सिद्ध करती है कि आदि मानव की सम्पूर्ण अस्मिता यही पर अंकुरित हुई पनपी और मानवीय सभ्यता को दिशा भी यहीं से प्राप्त हुई।

बुन्देलभूमि महान ऋषियों, तपस्वियों की तपोभूमि रही है। नारद और सनकादि ऋषियों ने त्याग साधना और तपस्या की धूनी यहीं रमाई है। दतिया जिला के सेंवढ़ा नामक ग्राम में पद्म पुराण के अनुसार ब्रह्मा के मानसपुत्र सनत् कुमार ने यहाँ तपस्चर्या की थी। नदी के तट पर एक शिव मन्दिर है जहाँ गौमुख से शिवलिंग पर अविरल गति से एक धारा गिरा करती है। यही वनस्थली में शिला नारदा है जो नारद मुनि की सिद्ध तपस्थली है। सुप्रसिद्ध इतिहासकारों ने तथ्य देकर यह प्रमाणित किया है कि बुन्देलखण्ड स्थित झांसी जिले से १६ मील बड़ागांव से ३–४ मील दूर बीजोर बाघाट नाम का ग्राम ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। बाघाट ग्राम महाभारत के गुरु द्रोण का जन्म स्थान है यहाँ छोटी–छोटी पहाड़ियाँ स्थित हैं जिन्हें आज भी गुरु द्रोण तलैया कहते हैं।

यह वहीं पुण्य भूमि है जहाँ पूर्वकाल में भगवान ने नृसिंह रूप धारण कर एरच के शासक हिरण्य कश्यप का वध किया था। इस धरती पर महाकवि महर्षि व्यास का जन्म हुआ था। महर्षि व्यास ने कालपी क्षेत्र में महाभारत और पुराणों की

रचना की। कालपी में आज भी व्यास टीले के नाम से भव्य आश्रम है। बुन्देलभूमि तपोभूमि और तीर्थभूमि हैं यहां के कण कण में पावनता है। श्री बाल्मीकि जी का जन्म स्थान बबीना (झांसी) में मानते हैं। चित्रकूट में महर्षि अत्रि, अनुसुइया, महर्षि पाराशर, महर्षि विश्वामित्र और जमदग्नि श्रृंगी ऋषि याज्ञवल्क्य, आदि महर्षियों ने इसी भूमि को गौरवान्वित किया राठ–हमीरपुर में राजा विराट की राजधानी थी यहाँ पर दुर्योधन ने लाक्षागृह बनवाया था। कीचक वध स्मारक स्तम्भ यहाँ है। कालिंजर का विशाल दुर्ग और उसके सात प्रवेश द्वार प्रसिद्ध हैं – सूर्यद्वार, गणेशद्वार, चण्डीद्वार, बलभद्र द्वार, लाल द्वार और महादेव द्वार प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि भगवान शिव ने जब हलाहल पान किया तब वह नीलकण्ठ हो गये थे। यहीं उन्होंने विश्राम किया था। जिस बुन्देलखण्ड की पावन धरती पर त्रिकालदर्शी सर्वज्ञ साक्षात् भगवान शिव ने हलाहल पान किया हो। उस धरती का तो कण–कण पावन हो गया इस धरा के सारे अवगुण शिव हलाहल के रूप में पी गये इसी धरती पर ऋषि मुनियों ने आध्यात्मवाद का सन्देश सुनाया था। ऐसे सात्विक पुरुष अमृत की वृष्टि करते हुए मनोविकारों से सन्तप्त जनता को शान्ति प्रदान करते थे।

जिस बुन्देली धरा पर श्रुति, स्मृति, आदि शास्त्र, महाभारत जैसे ग्रन्थों की आधार शिला रखी गयी हो जो धरती आध्यात्मिक, अधिदैविक एवं अधिभौतिक त्रिविध से पूर्ण हो। कर्म, उपासना, ज्ञान, अभ्युदय एवं श्रेयस की सिद्धि प्राप्ति की क्षमता जिस माटी मे हो वह प्रदेश धन्य है।

भारतीय कला के इतिहास में शिल्प कला का वैभव पूर्ण स्थान है। बुन्देलखण्ड में इसकी प्रचुर सामग्री से संग्रहालय भरे पड़े हैं। यहां के मन्दिरों में जीवन्तता है। श्री हैवेल के शब्दों में अशोक के समय से लेकर आज तक के भारतीय जीवन और विचारधारा का जो अमूल्य संकलन यहां की कलापूर्ण रचनाओं पर टिका हुआ है, उसके लिए विश्व भारत का ऋणी है। किसी भी दूसरे राष्ट्र ने प्राचीन हो या अर्वाचीन, इतनी उच्च संस्कृति का निर्माण नहीं किया। किसी ने भी धर्म को जीवन का दर्शन बनाने में इतनी सफलता नहीं प्राप्त की। यहां तक कि किसी ने भी मानवीय ज्ञान को इतना समृद्ध एवं शक्तिशाली नहीं बनाया।[४] श्री हैबेल के इन शब्दों में निष्पक्ष हृदय से निकली हुई गूंज है, जो भारतीय शिल्प कला के प्रेमियों और मर्मज्ञों को इसकी परख के लिए आवाह्न करती है। बुन्देलखण्ड के मंदिर भी भारतीय कला के महान् प्रतीक हैं। खजुराहो के मन्दिर इसका प्रमाण हैं शिल्पकार की सूझबूझ, विशाल सदाशयता तथा टाँकी का अनुपम उदाहरण चाहे चौसठ यौगिनियों का मन्दिर, चाहे लक्ष्मण मन्दिर या मतंगेश्वर का मन्दिर हो सब एक से बढ़कर एक दिव्य व अनुपम सौन्दर्य के आगार हैं। मित्र जी के शब्दों में – ''खजुराहो के मन्दिरों की शिल्पकला अत्यन्त भावोत्पादक, बौद्धिक तथा ग्रहणशील है और भारतवर्ष के मन्दिरों की अपेक्षा विशेष आकर्षक है। यहाँ के मन्दिर और मूर्तियां तथा चित्र बुन्देलखण्ड के उस काल की स्मरण कराते हैं जबकि जन–जीवन समृद्धि के उच्च शिखर पर आसीन था।''[५]

इसके अतिरिक्त ओरछा के मन्दिर, बरुआसागर के स्वर्गाश्रम, झारखण्ड की डँगाई, ऐरच का नृसिंह मन्दिर, कालिन्जर का स्वर्गारोहण, चित्रकूट के कामतानाथ हनुमान धारा बिरसावन, जानकीकुण्ड ऋषि अत्रि और अनुसुइया का आश्रम, गुप्त गोदावरी आदि। रहीम जी ने चित्रकूट के विषय में एक दोहा लिखा था –

'चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अबध नरेश। जा पर विपदा परत है, वह आवत एहि देश।।' विन्ध्याचल–मिर्जापुर के निकट छोटा स्टेशन है यहाँ विन्ध्यवासिनी देवी का मन्दिर, काली खोह की भद्र काली का मन्दिर प्रसिद्ध है। यहाँ पर ऋषि वशिष्ठ, अंगिरा, कपिल, मुनि ऋषि, अगस्त्य, विश्वामित्र आदि ऋषियों की तपस्थली है। इस तपोवन में एक कुटी है यहाँ आज भी ब्रह्मचारी ब्रह्म की उपासना में रत रहते हैं। दतिया का पीताम्बरा पीठ सिद्ध पीठ है। उनाव का सूर्य मन्दिर जो बालाजी के नाम से प्रसिद्ध है। सेंवड़ा का सनकुआ, शुक्राचार्य का स्थान मठ आदि। दिनारा का तालाब, सिद्ध गुफा ग्वालियर का सास बहू का मन्दिर, गूजरी महल, मान मन्दिर, आदि दर्शनीय हैं। अछरुमाता का जल कुण्ड जहाँ पर प्रसाद जलकुण्ड से माता की कृपा से ही मिलता है कभी–कभी तो भक्तों को निराश वापिस लौटना पड़ता है। प्रसाद का यह क्रम सहस्त्रों वर्षो से चल रहा है। कुण्डेश्वर का शिवमन्दिर तथा वानपुर में चौबीस भुजी गणपति की मूर्ति प्रसिद्ध है यहीं पर पं. बनारसी दास चतुर्वेदी ने बुन्देलखण्ड के सांस्कृतिक उत्थान की साधना की थी।

टीकमगढ़ के प्राचीन दुर्ग, आजमगढ़ के गंगा व यमुना कुण्ड तथा प्राचीन रंगमहल, भूतेश्वर भगवान का दिव्य मन्दिर आदि प्रसिद्ध है। बिजावर के जटाशंकर का मन्दिर, पन्ना का जुगलकिशोर मन्दिर दर्शनीय है बाघाट–बीजौर की गुरु द्रोंण तलैया तथा गढ़कुण्डार की गृद्वासिनी देवी का कलापूर्ण मन्दिर प्रसिद्ध है। कालपी का व्यास टीला प्रसिद्ध है। देवगढ़ में शेषशायी विष्णु भगवान की ऐसी दिव्य मूर्ति जो भारत में कहीं नहीं है। विष्णु भगवान के चरण लक्ष्मी जी दबाती है और विष्णु के नाभिकमल पर ब्रह्मा जी बैठे हैं तथा पास में योगिराज शिव खड़े हैं नर–नारायण की अखण्ड तपस्या का दृश्यांकन हुआ है। चन्देरी में मालिन–खोह, जागेश्वरी मन्दिर, जौहरतलैया प्रसिद्ध है। विदिशा हिन्दू तथा बौद्धों का धर्म केन्द्र रहा है। यहाँ

कुबेर का मन्दिर था वर्तमान में भग्नावशेष ही है। ऐरन में विष्णु भगवान की विशाल मूर्ति, तीस फीट लम्बा सूर्य स्तम्भ तथा एक शिलालेख अंकित है। वाराह की विशाल मूर्ति भी अत्यन्त सुन्दर व दिव्य है। राहतगढ़ का जल प्रपात तथा भेड़ाघाट का धुँआधार बुन्देलखण्ड के अत्यन्त रमणीय स्थल है।[६] अमरकंटक विशाल विंध्यश्रेणियों को सुशोभित करता हुआ नर्मदा का उद्गम स्थान है। नर्मदा कुण्ड के पास ही ऋषि कुटी, कपिल धारा, माई की बगिया आदि स्थल दर्शनीय है।

इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड के अनेको ऐतिहासिक दर्शनीय स्थल हैं जो भारतीय दर्शन एवं कला के प्रतीक हैं। मन्दिरों का सौन्दर्य अद्भुत है। शिल्पकार की तीक्ष्ण छैनी ने निर्मम पत्थरों को मोम की भाँति छीला और उस पर भारतीय विचार पद्धति, भारतीय वेशभूषा, भारतीय वातावरण एवं भारतीय जीवन के विविध अंगों के विहंगम तथा सूक्ष्मतम चित्र आंके। उसकी संजीवित कला ने उसे देशों और विदेशों तक अजर अमर कर दिया। बुन्देलखण्ड के खजुराहो, ओरछा, देवगढ़, ऐरन, चित्रकूट, पन्ना, अजयगढ़ उनाव आदि के मन्दिरों को देखकर भारतीय शिल्पकला की मौलिकता का समुचित ज्ञान होता है। भारतीय जीवन के दर्शन और संस्कृति को अपना सर्वोच लक्ष्य बनाकर शिल्पकारों एवं इन मन्दिरों को निर्माताओं ने बुन्देलखण्ड के ऐसे पवित्रतम स्थान चुने और अपना जीवन होम कर ऐसे–ऐसे विशाल भवन निर्माण किये, जो विश्व की शिल्पकला के इतिहास में अद्वितीय है जिसे देखकर दर्शक मानव बुद्धि चकरा जाती है। बुन्देलखण्ड की ये शिल्प की अनमोल कृतियाँ केवल मनोरंजन का साधन नहीं है कोरी भावना और वाहवाही के खातिर नहीं गाढ़ी गयीं बल्कि उनकी उपस्थिति ने भारतीय जीवन के शुष्क कलेवर को अपनी मौलिकता और सजीव सौन्दर्य द्वारा अनुप्राणित किया हैं। डॉ. मनीष मिश्र के शब्दों में इन भग्नावशेषों में एक सुप्त अनुगूँज प्राय: गूँजती रहती है जिसे पहचानने के लिए हमें अतीत के स्वर में अपनी चेतना को आत्मसात् करना पड़ता है। निर्जीव पड़े ईंट पत्थर के इन टुकड़ों में धरती के उस स्पन्दन को पहचान कर अपने निष्कर्ष निकालने होते हैं तभी इतिहास मुखर होकर एक विराट सांस्कृतिक बोध का पर्याय बनता है। किसी भी क्षेत्र के सांस्कृतिक इतिहास की जानकारी इन अवशेषों से मिलती है जो स्थापत्य कला, मूर्तिकला, मन्दिर निर्माण की पुरातन शैलियों के प्रमाण होते हैं इन्हीं के द्वारा मनुष्य का कलात्मक अर्जन और सांस्कृतिक संयोजन का वह रूप देखने को मिलता है जो उसने निरन्तर निष्ठा, समर्पण, लगन और अपनी रचनात्मक निर्माणपरक बुद्धि के द्वारा प्राप्त किया। सभ्यतायें मिट जाती हैं किन्तु बचें हुए अवशेष अतीत की सभ्यता और समृद्धि की कहानी कहते हुए वर्तमान को उद्वेलित कर एक प्रेरणा देते रहते हैं।[७]

बुन्देली धरा का प्राकृतिक सौन्दर्य मनोरम है। अन्य निधियों की अपेक्षा वन ही बुन्देलखण्ड की प्रधान निधि है। अविरल गति से प्रवाहित होने वाली बेतवा, धसान, तमसा, चम्बल, सिन्ध, पुष्पावती, केन जामनेर, नर्मदा आदि छोटी–बड़ी नदियाँ वन प्रदेश की रक्षा करती आ रही है। इस भूमि के अंचल में अडिग भाव से स्थित विन्ध्याचल हंस पर्वत, स्वर्ण गिरि, सतपुड़ा आदि के शिरोभाग के घने वन उन्मत्त मेघों को आकृष्ट कर जलवृष्टि से इन सरिताओं को प्लावित करते रहते हैं। झांसी की मिसुरडांग, (वन) ओरछा का तुंगारण्य तथा करौंदी की डांग, मिर्जापुर का विन्ध्यवन, छतरपुर के शेहरवन, सेंवड़ा की करघई की डॉग, अजयगढ़ का अजयवन, ग्वालियर की भूराखोह वन, नटवरगढ़ का अनलवन का शिवपुरी का चाँदपाण वन अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। अन्य प्रान्तों की अपेक्षा यह प्रान्त वन वृक्षों से हरा–भरा और धनी है। इन वनों में शेर, तेंदुआ, सावर, हिरन, श्रृंगाल, लोमड़ी, खरगोश आदि वन्य पशु और नीलकण्ठ तोता, मैना, चण्डूल, खंजन, भौंरा, लाल मुनैया, झरैया, पट्टैया, चिरैया, स्यामा, चातक, काक गिद्ध आदि स्वच्छन्द विचरण करते हैं।[८]

बुन्देलखण्ड की माटी सोना उगलती है। यहाँ की विन्ध्य श्रृंखलाओं में पन्ना की हीरा खदान, भेड़ाघाट के संगमरमर, भूगर्भ में सोना, चाँदी, मेग्नीज, जस्ता, ताँबा, लोहा, अभ्रक और गौरा की अपार खनिज सम्पत्ति का भण्डार सुरक्षित है। यहां के प्रतिभा सम्पन्न कलाकारों ने अपनी सात्विक सुकुमार और उत्प्रेरक भावनाओं को धातु, प्रस्तर और कागज के द्वारा साकार कर न केवल कला के उपकरणों की रक्षा की अपितु यह प्रमाणित कर दिखाया कि प्रतिभा किसी की मोहताज नहीं होती। अन्तर्भावनाओं के विकास एवं स्थैर्य के लिए अलंकरण उपयुक्त है।

बुन्देलखण्ड मे अनेक प्रसिद्ध चित्रकार हुए जिनमें सुखलाल, बिहारी लाल, जमनादास डेबरा गिर्द, क्रान्तिकारी मास्टर रुद्र नारायण एवं कालीचरण आंदि है। चावल के दाने व चना की दाल के एक टुकड़े पर चित्र अंकित करना मूंगफली के छिलके के द्वारा चित्र निर्माण इन बुन्देली चित्रकारों की विश्व चित्रकला को नवीन देन है। यह बुन्देलखड भूमि की रजकण का ही प्रभाव है कि सम्राट तानसेन, बैजूबावरा, मृदंगाचार्य, रागिनी विशेषज्ञ आदिल खां, पं. गोपालराव, मास्टर पुरन्दर उस्ताद श्री कुदउँ सिंह, श्री झल्लू उस्ताद टीकमगढ़, आदि कलाकारों ने अपनी राग–रागनियों द्वारा बुन्देलीखण्डी संगीत की आन बान और शान के लिए इस प्रान्त को गौरवान्वित किया। साहित्य और संगीत के आचार्यों की तो यह जन्मभूमि ही है। कवि कुलगुरु महर्षि बाल्मीकि भगवान वेदव्यास, कृष्ण द्वैपायन, भवभूति, कृष्णदत्त मिश्र, पं. काशीनाथ जी व तुलसीदास

यहीं जन्मे थे। भाषा काव्य के परमाचार्य कवीन्द्र केशवदास जी मिश्र ने भी इस पुण्यधरा पर जन्म पाया। इनके अतिरिक्त पद्माकर, मतिराम भूषण, बिहारी और आधुनिक काल के मैथिलीशर गुप्त, वियोगी हरि, आचार्य घनश्याम दास पाण्डेय, राष्ट्रीय कवि घासीराम व्यास, कवीन्द्र नाथूराम माहौर, रावराजा हरनाथ, कविराजा बिहारी साहित्य शिरोमणि रामचरण हयारण मित्र, उपन्यास सम्राट वृन्दावन लाल वर्मा, प्रसिद्ध समालोचक डॉ. रामविलास शर्मा इसी बुन्देलभूमि की देन है।

बुन्देलखण्ड वीरों और कवियों की खान है। इस वीर प्रसविनी धरती ने आल्हा, ऊदल जैसे रणबाँकुरों को जन्म दिया। आज भी आल्हा सुनकर श्रोतागण वीरता के भावावेश से उछल पड़ते हैं। यह गीता की भांति क्षत्रियों को युद्धभूमि में रत रहने का संदेश देता है।

राजा वीरसिंह जू देव, राजा छत्रसाल, राजा मर्दनसिंह जू देव जैसे वीरों ने अपनी धरती पर जन्म लिया राजा मर्दन सिंह के शौर्य पूर्ण वक्तव्य जिससे इस धरा का कण–कण प्रभावित है।

'धर्म न दूंगा धरा न दूंगा और न दूंगा आन।
राजपूत सन्तान हूं, हंसकर दूंगा प्रान।।'

इस धरती पर समय–समय पर आक्रमण होते रहे और यह क्षेत्र सत्ताधारियों के संघर्ष उत्थान–पतन और जय–पराजय का केन्द्र बना रहा। बुन्देली वीर सपूतों ने विदेशी शासकों के छक्के छुड़ाये। अंग्रेजों के विरुद्ध आवाज बुलन्द की और बुन्देलखण्ड को स्वातन्त्र्य युद्ध का केन्द्र बिन्दु बनाया। महारानी लक्ष्मीबाई के शौर्य के सामने बड़े–बड़े योद्धाओं का शौर्य फीका पड़ जाता था। श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान की पंक्तियां बरबस याद आ जाती हैं –

'बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।'

राष्ट्रीय आन्दोलन के समय सहस्त्रों वीरों ने अपने प्राणों का बलिदान किया। बाँदा के नवाब, दीवान नाहर सिंह, राजा खलक सिंह, दीवान जवाहरसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, घासीराम व्यास, भगवान दास माहौर आदि ने आजादी के युद्ध में बलिदान देकर अमूल्य सहयोग दिया। यही नहीं आजादी के बाद (१९६१ में) जब चीन ने भारत पर प्रबल आक्रमण किया तब यहाँ के राष्ट्रीय विचारधारा के कवियों ने अपनी ओजस्वी वाणी से वीरों को प्रोत्साहित किया। इस धरती में प्रबल आक्रमण झेलने की ताकत है इतने प्रबल आक्रमणों के विरुद्ध संघर्षमय जीवन बिताकर हमारी संस्कृति अब तक जीवन्त है इसका कारण एक मात्र मृत्युंजयता है। इसी क्षात्र बल के कारण हमारी धरती को यह गौरव प्राप्त है कि यहाँ की समृद्धि देखकर देवता भी यहाँ जन्म लेने के लिए तरसते हैं। ऋषि मुनियों की पुण्य पावन धरा ने इसी बल के आधार पर विश्व पटल पर विजय हासिल की। बुन्देलखण्ड का सौभाग्य है कि इसमें इतिहास की अमूल्य विरासत एवं प्राचीनता के दुर्लभ अवशेष अपनी ऊर्जस्विता से ऐसे संयोग निर्मित करते हैं कि सम्पूर्ण क्षेत्र इतिहास की प्राणवान चेतना से मुखरित हो, नया उन्मेष प्रदान करता है।

सन्दर्भ संकेत :–

१. बुन्देली समाज और संस्कृति–प्रो. बलभद्र तिवारी पृ. २३
२. एक यज्ञ (बुन्देलखण्डी विश्व–कोष की योजना) – श्री कृष्णानन्द गुप्त, पृ. ३
३. बुन्देलखण्ड का साहित्यिक इतिहास – श्री मोतीलाल त्रिपाठी 'अशान्त' पृ. १४–१५
४. कल्याण – भारतीय संस्कृति विशेषांक – पृ. ६७४
५. बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य – श्री रामचरण हयारण मिश्र पृ. १५
६. कल्याण – भारतीय संस्कृति विशेषांक, पृ. ६७५
७. सागर जिले का सांस्कृतिक अध्ययन – डॉ. मनीष मिश्र पृ. ४०–४१
८. बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य – श्री रामचरण हयारण मिश्र पृ. १५१

–सहा. प्राध्यापक हिन्दी,
शास. कन्या. महाविद्यालय सागर म.प्र.

हिन्दी पत्रकारिता के सम्राट पं. बनारसी दास चतुर्वेदी की जयंती पर :

काव्यांजलि

– डॉ. डी.पी. खरे 'प्रसाद', टीकमगढ़

चौबे जू तुम धन्य हो गए, धन्य हुई जा तुव माई।
कूँड़ादेव में धुनी रमा कें धन्य हो गई खैराई।
आजादी की अलख जगावै, चौदा साल इते हैं काटे।
दुखियन खौं अपना कें तुमने हम विरहन के दुख हैं बाटें।
लाग लपेट बिना चौबे जू नारायण खौं पाठ पढ़ाओ।
अमर शहीद भयौ धरती पै बुन्देली कौ ठाट बढ़ाओ।

बुन्देली कौ करज चुकावे चप्पे चप्पे में तुम घूमें।
धूरा में जो खेलत देखे उनखाँ कैंयां लैकें चूमें।
प्यास बुझावे ई धरती की नगदा पै बाँध बनवाऔ।
राष्ट्रपति राजेन्द्र सें कैकें साँचऊँ तुमने करज चुकाऔ।
तुम बिन चुप हो बैठी कोयल और खो गई अमराई।
कूँड़ा देव में धुनी रमा कें, धन्य हो गई खैराई।

बुन्देलखण्ड में प्रतिहारी सत्ता

— प्रागेन्द्र प्रताप सिंह

चन्देलों का मूल स्थान खजुराहो था। वे खजुराहो के दक्षिण में स्थित मनियागढ़ के शासक थे। चन्द्रवर्मा चन्देल ने अपनी माता के स्खलन की शुद्धि के लिये नवीं शताब्दी के प्रथम चरण में एक यज्ञ (महोत्सव) किया। यज्ञस्थल का नामकरण महोत्सवनगर किया गया जो अब महोबा के नाम से विख्यात है। भोज प्रतिहार के वराह तामपत्र से विदित होता है कि ८३६ ई. में कालंजर मण्डल पर प्रतिहारों का शासन था। डॉ. स्मिथ का मत है कि जब चन्देल प्रभावशाली हुये तब महोबा के प्रतिहार माण्डलिक को हटाकर वे स्वयं राजा बन बैठे। कहा जाता है कि नन्नुक (चन्द्रवर्मा) ने जब प्रतिहारों को मऊ के युद्ध में पराजित किया, तब कुछ प्रतिहार धसान नदी के पश्चिम चले गये तथा कुछ दक्षिण की ओर आ गये। दक्षिण के ओर केन नदी का उद्गम है, जहां से कुछ दूर पश्चिम में व्यारमा नदी दक्षिण से उत्तर बहकर सोनार में और सोनार केन में मिलती है महोबा से पश्चिम जाने वालों के लिये एक मात्र मार्ग चन्देरी तथा ग्वालियर से होकर थे और दक्षिण में आने वालों के लिए सुरक्षित क्षेत्र केन घाटी थी, जिसकी दक्षिण दिशा में सिगोंरगढ़ पश्चिम में दमोह पूर्व में मऊ और कोटरा का परगना[१] है। कोटरा पन्ना से पवई मार्ग पर केन नदी के किनारे टेढ़ीधार के बुधेड़ों ग्राम में ९ मील पड़ता है। यहां पर एक कोट है यह छोटा सा गांव इसी कोट के अन्दर बसा है नदी के किनारे का कोट का हिस्सा गिर चुका है। किला केन नदी के किनारे होने की बजह से गिर चुका है पहले यहां का कोट १२ फुट ऊँचा था। अब गिर जाने से कहीं १० फुट कहीं ८ फुट ही बचा है।

कोटरा में तीन साम्राज्यों–परमार, कलचुरि तथा चन्देल की सीमाओं का मिलान होता है, संभव है कि केन घाटी का प्रतिहारी क्षेत्र कुछ समय तक चन्देरी राज्य का प्रभाव क्षेत्र रहा हो, चन्देरी राज्य के पतन के पश्चात केन घाटी के प्रतिहारों ने चन्देलों को अपना शासक मान लिया जब चन्देरी तुर्को के अधीन हो गया उस समय केन घाटी के प्रतिहार उत्तर पूर्व की ओर अर्थात् कैमूर तथा पन्ना पर्वत श्रृंखला के बीच में स्थित केन नदी के उपरली घाटी के प्रबल शासक थे यह तेरहवीं शताब्दी का अन्त और चौदहवीं शताब्दी का प्रारम्भिक काल था, इस समय केन घाटी पूर्णतया सुरक्षित थी। यहां पर प्रतिहार अपनी शक्ति का प्रसार स्वतंत्रता पूर्वक कर सकते थे।

गज सिंह प्रतिहार – प्रथम युग

तेरहवीं शताब्दी के मध्य में डाटल (जबलपुर–दमोह) के कलचुरि राज्य की समाप्ति पर जब व्यारमा क्षेत्र में प्रतिहारी सत्ता स्थापित हुई तब ''महाराजपुत्र बाघदेव प्रतिहार'' भोजवर्मा चन्देल (१२८६–८८) ई. के ओर से उस क्षेत्र के माण्डलिक थे[२] उसके दो अन्य अभिलेखों से ज्ञात होता है कि वे हम्मीर वर्मा के शासनकाल में भी चन्देलों के माण्डलिक थे। जबलपुर–दमोह मार्ग पर जवेरा घाटी पर सिगोरगढ़ का प्रसिद्ध दुर्ग सिर ऊँचा किये खड़ा है। इस दुर्ग का निर्माण गज सिंह प्रतिहार ने करवाया था।[३] इसलिये राजा वाघदेव के अभिलेखों में पहले गजसिंह का नाम अंकित किया गया है।[४] अनुश्रुति है कि लखूरा (कोटरा) के मन्दिर के खण्डर में एक शिला थी जिस पर गज सिंह प्रतिहार का नाम अंकित था। यदि यह वही राजसिंह प्रतिहार है तो मालूम होता है कि तेरहवीं शताब्दी के अनत में प्रतिहारी सत्ता का विस्तार व्यारमानदी से भेदासिन नदी तक था सलैया सती लेख से ज्ञात होता है कि १३०८ ई. में इस क्षेत्र पर अलाउद्दीन खिलजी का अधिकार स्थापित हो जाने पर बाघदेव दमोह क्षेत्र छोड़कर कोटरा चले आये।[५]

रायबहादुर हीरालाल का कथन है कि सिगोरगढ, श्री गौरीगढ़ का अपभ्रंश है[६], तपस्वियों के रहने तथा श्री गौरी के पूजा के कारण यह स्थान पवित्र माने जाने लगा। इस प्रकार इसे गौरिकुमारिका क्षेत्र कहा जाने लगा। संकल्पों में भी इसी नाम का उच्चारण किया जाता है[७] गज सिंह प्रतिहार ने इस पहाड़ी पर किला बनाकर इसे गज–सिंह दुर्ग नाम दिया, किन्तु यह नाम प्रचलित नहीं हो सका। दो सौ वर्ष पश्चात् गोंड़ राजा आम्हणदास (संग्रामशाह) के अभिलेख में इसे श्रीगढ़ गौरिविषय दुर्ग कहा गया है।

राजा बाघदेव प्रतिहार – द्वितीय युग :

संवत् १३५७ (१३०० ई.) के एक अभिलेख में गजसिंह[१] नाम अंकित है जिसमें शासनकर्ता का नाम ''राजावाघदेव'' लिखा है इसी राजा का उल्लेख भोजवर्मा (१२८६–८८ ई.) तथा हम्मीर वर्मा चन्देल (१२८८–१३१० ई.) के अभिलेखों में चन्देलों के मांडलिक रूप में किया गया है। इन शिलालेखों के आधार पर गजसिंह वाघदेव का पूर्वाधिकारी प्रतीत होता है। गजसिंह के समय से ही सम्भवत: प्रतिहार राज्य की स्थापना केन घाटी में हुई।

बारहवीं शताब्दी में जब चन्देलों ने तमसा घाटी में कलचुरियों को खदेड़कर डाहल–चेदि क्षेत्र में प्रवेश किया तब मुड़वारा (कटनी) के पास विलहरी में अपना राज्यपाल नियुक्त

किया। कथन है कि दमोह–जबलपुर मार्ग के तेरहवीं मील पर नोहटा के ध्वंसावशेष है, जहां चन्देलों का प्रतिनिधि रहता होगा। सम्भवत: नौहटा ही महराज पुत्र बाघदेव का मुख्यालय रहा हो? तो भी उस युग में उक्त दुर्ग सैनिक मुख्यालय के अनुरूप था या सैनिक आवश्यकताओं के अनुरूप था। यद्यपि प्रतिहार चन्देलों के माण्डलिक तो थे, परन्तु केन घाटी के एक विस्तृत भूभाग के शासक थे। यहां से विंध्यपर्वत की श्रेणियां झांसी, बांदा, इलाहाबाद, मिर्जापुर को चली गई हैं। यहां इनका नाम विन्ध्याचल है, जबलपुर–दमोह क्षेत्र में इसकी दो शाखायें हो गयी, पहली कैमूर श्रेणी जो जबलपुर जिले के उत्तर कटंगी से प्रारम्भ होकर पूर्व की ओर कुछ फासले तक जबलपुर दमोह की सीमा बनाती हुई बहुरीबंध और झुकेही की तरफ मुखड़ा तहसील की सम्पूर्ण उत्तरी सीमा (आधुनिक कटनी जिले का भूभाग) के किनारे–किनारे चली गई है और बघेलखंड लांघकर बिहार चली गई है और दूसरी भांडेर श्रेणी कहलाती हैं जिसका कगार सीधी ऊँचाई वाला, जबलपुर जिले के पश्चिम में ऊँची दीवार बनाता है इस कगार का शिखर दमोह और जबलपुर जिलों के बीच की सीमा बनाता है उसके नीचे बिल्कुल समीप से हिरन नदी बहती है।[१०] भाण्डेर श्रेणी पन्ना की ओर चली गई है, कटंगी के पास से सड़क पहाड़ियों में से होती हुई जवेरा घाटी पर जाती है और सिगोरगढ़ से नीचे से गुजरती है। सिगोरगढ़ से संग्रामपुर चार मील रह जाता हैं संग्रामपुर के पास फलगू नदी, कैमूर श्रेणी को काटकर पूर्व की ओर निकल गई है। इस जगह को कटाव कहते हैं। यह नदी संग्रामपुर घाटी का सम्पूर्ण पानी समेटकर दक्षिण की ओर नर्मदा में ले जाती है। बाकी जिले का बहाव उत्तर–पूर्व दिशा में है। व्यारमा नदी बीचोंबीच में घने जंगलों से बढ़ती हुई गैसावाद के पास सोनार नदी में और सोनार केन में मिल गई है यह वहां हटा और (पन्ना जिले की) पवई तहसील की सीमा बनाती है। व्यारमा चट्टानी मार्ग से बहती है इसलिए उसका पाट अधिक चौड़ा नहीं है। सुन, गुरैया और पथरी इसकी सहायक नदियां हैं।

प्रतिहारों के गृह प्रदेश की भौगोलिक अवस्था ऐसी थी जहां सुन नदी के किनारे सिगोरगढ़ के लगभग १.५ मील पर कोंड ग्राम है यहां नदी के तट पर एक पत्थर पड़ा है जिसमें एक अश्वारोही अंकित है। इस पर 'श्री बाघदेवस्य दागी वैजू तथा सम्वत १३५९ लिखा है'[११] इससे ज्ञात होता है कि दमोह का पूर्वी भाग तेरहवीं शताब्दी के अन्त और चौदहवी शताब्दी के प्रारम्भ में सिगोरगढ़ के अन्तर्गत था और यही बाघदेव प्रतीहार राजा रहता था।[१२] सिगोरगढ़ से चार मील दूर, पूर्व में राजा संग्रामशाह गोड़ का बसाया संग्रामपुर दमोह मार्ग पर स्थित है। सिगोरगढ़ किले के पश्चिम में लम्बी चौड़ी एक विशाल झील थी। किला और झील राजा वेन वसोर के बनाये कहे जाते हैं[१३] सम्भवत:इसी राजा वेन से प्रतिहारों ने किला छीनकर उसको नये सिरे से बनवाया हो। यह भी सम्भव है कि राजा वेन अथवा वेलो, चन्देलों का कोई माण्डलिक रहा हो जिससे प्रतिहारों ने किला छीनकर कीर्ति स्तम्भ स्थापित करवाये हो। जोभी हो सिगोरगढ़ एवं नोहटा के केन्द्रों से बाघदेव प्रतिहार, जबलपुर तथा दमोह के आधुनिक जिलों के समूची भूभाग के साथ पन्ना जिले की पवई तहसील अर्थात केन नदी के दाँये किनारे तक राज्य करते हुये अजयगढ़ के चन्देलों का अधिपत्य स्वीकार करते थे, अनुश्रुति है कि ग्राम सलैया से आगे रैपुरा के समीप अमवा ग्राम में व्यारमा नदी के पूर्वी तट पर वरमेंन्द्रनाथ का मन्दिर और एक गढ़ी के खण्डहर विद्यमान है यहां बसंतपंचमी को मेला लगता है, आस–पास प्रतिहारों की आबादी है। जहां से लोग आकर इस स्थान पर बच्चों के मुण्डन संस्कार करवाते हैं।

इसी समय कोटरा क्षेत्र में महराजधिराज कोतपालदेव का शासन प्रारम्भ हुआ। वि.स. १४०१ (१३४४ ई.) के खलेसर सती अभिलेख से ज्ञात होता है कि महाराज वीरराज देव इस समय नरोगढ़ के शासक थे। संभवत: कोतपाल देव के नि:संतान होने से वीरराजदेव उनके अधिकारी हुये इसलिए वीरराजदेव कालीन खलेसर अभिलेख में कोतपालदेव को श्रद्धापूर्वक स्मरण किया गया है।

<u>प्रतीहार कालीन बुन्देलखण्ड के मन्दिर :</u>

देवगढ़ :

देवगढ़ उत्तरप्रदेश के ललितपुर जिले में स्थित है यहां पर प्राप्त अभिलेखिक साक्ष्य से प्रमाणित होता है कि यहां कन्नौज के गुर्जर प्रतिहारों का शासन था और उन्होंने यहां के मन्दिर निर्माण में उत्कृष्ट सहयोग दिया था। भोज प्रतिहार के अभिलेख में इसे लुअच्छगिरि और चन्देल कीर्ति वर्मा के अभिलेख में कीर्तिनगर कहा गया है। यहाँ का शान्तिनाथ मन्दिर एवं कुरैयावीर का मन्दिर प्रतिहार काल का निर्माण है।[१४]

ऊमरी :

यह स्थान टीकमढ़ जिला मुख्यालय से ४० कि.मी. दक्षिण पूर्व में है। यहां पर ग्राम के पश्चिम भाग में एक सूर्य मन्दिर है। मुखमण्डप के वाम प्रवेश द्वार में एक खन्डित अभिलेख की कुछ पंक्तियां दृष्टिगोचर होती है इस लेख के कुछ अक्षर पठन योग्य हैं, वास्तुकला के आधार पर इसका निर्माण कन्नौज के प्रतिहारों के द्वारा नवी शताब्दी में किया गया।[१५]

नचना–कुठरा :

यह स्थान पन्ना जिले से ५५ कि.मी. दक्षिण–पूर्व में स्थित है यहाँ गुप्तकालीन पार्वती जी का एक प्रसिद्ध मन्दिर है

बुन्देली संस्कृति का प्रतीक स्थल : अबारमाता

— डॉ. लखन लाल खरे

बुन्देलखण्ड में अनेक स्थल ऐसे हैं जिनका धार्मिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व है। खजुराहो जैसे स्थल अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चर्चित हो गये; जटाशंकर जैसे स्थल जिला व संभाग स्तर तक अपनी पहचान बना पाये। अबार माता ऐसा क्षेत्र है जो जन—मानस की श्रद्धा—कारा में कैद होकर क्षेत्र—विशेष तक संकुचित होकर रह गया। छतरपुर जिले के बड़ामलहरा विकासखण्ड मुख्यालय से ५० कि.मी. दूर रामटौरिया ग्राम है। अबारमाता स्थल इस ग्राम से तीन कि.मी. है। छतरपुर जिले के इस ध ार्मिक स्थल की सीमाएं सागर व उ.प्र. के ललितपुर जिले को स्पर्श करती हैं।

यह स्थल सैकड़ों वर्षों से लोक—जन—जीवन में धार्मिक मान्यता प्राप्त है। इस स्थल के सम्बन्ध में अनेक जनश्रुतियां हैं; किन्तु उन सबका आधार मात्र आस्था व भावना है।



मूर्ति अवार माता

अबार माता वस्तुत: 'अम्बामाता' का अपभ्रंश है। यहां स्थित चंदेलकालीन चतुर्भुजी देवी की प्रस्तर प्रतिमा लगभग ८२५ वर्ष प्राचीन है। आज से ५०—६० वर्ष पूर्व यहां घोर जंगल था। सन् १९६१—६२ में इस स्थान पर नवनिर्माण के समय अति प्राचीन मठ को तुड़वा दिया गया। मठ में लगे शिलालेख को एक ओर सुरक्षित रखवा दिया गया था; किन्तु दफीने का 'बीजक' समझकर धनलोलुपों ने उसे पार कर दिया। इसी शिलालेख में चंदेल नरेश परिमार्दिदेव के किसी सरदार द्वारा सम्वत् १२३३ में मठ के निर्माण व प्रतिमा की प्रतिष्ठा कराने का उल्लेख था। वर्तमान में यह क्षेत्र पर्याप्त विकसित हो गया है; परन्तु 'मठ' के खम्भे मन्दिर के पृष्ठ भाग में अब भी पड़े हैं। मठ—निर्माण के समय की एक बावड़ी व जलाशय अब भी है। जलाशय के अधिकांश भाग पर अतिक्रमण है जो कृषि—भूमि के रूप में प्रयुक्त हो रहा है। सन् १९५८—५९ में इस सरोवर के जीर्णोद्धार के समय मजदूरों को कुछ प्राचीन मुद्राएं भी प्राप्त हुई थीं।

देवी दुर्गा के अबार माता स्वरूप की प्रतिमा बलुई पत्थर के एक ही शिलाखण्ड पर निर्मित है। यह ३.५ फुट लम्बी व २ फुट चौड़ी है। यह अपने मूल रूप में सादी रही होगी; परन्तु इस पर सिन्दूर चढ़ाया जाता रहा है। जुलाई १९६८ में यह प्रतिमा

इसी पार्वती मन्दिर के समीप एक अन्य देवालय है जिसे चौमुखनाथ का मन्दिर कहते हैं, मन्दिर का गर्भगृह वर्गकार है जिसमें चतुर्भुज महादेव का उत्कृष्ट शिवलिंग प्रतिष्ठित है यह मन्दिर नवीं शती ईसवी के तृतीय चरण में कन्नौज के प्रतिहारी सत्ता के समय निर्मित किया गया।[१६]

मड़खेरा :

यह स्थान टीकमगढ़ जिला मुख्यालय से १८ कि.मी. उत्तर में स्थित है यहाँ का सूर्य मन्दिर बड़ी अच्छी हालत में है मडखेरा का अर्थ है मन्दिर का ग्राम इससे प्रतीत होता है कि इस ग्राम का नामकरण मन्दिर के आधार पर किया गया इस मन्दिर का निर्माण नवी शती ई. के उत्तरार्द्ध में हुआ।[१७]

बरुआसागर :

यह स्थान उत्तरप्रदेश के झांसी मुख्यालय से २२ कि. मी. उत्तर में झांसी—मऊरानीपुर मार्ग पर स्थित है। बरुआ सागर नगर में इसकी दूरी ३ कि.मी. है। स्थानीय लोग इसे जराईमाता अथवा जराई मठ कहते हैं। वास्तुकला के आधार पर इस मन्दिर का निर्माण ९५० ई. निर्धारित होता है। □

संदर्भ सूची —

१. इसी प्रकार केन धसान नदियों के बीच का भाग खटोला, धसान और बेतवा नदी का भाग काठर और दमोह क्षेत्र को हवेली कहते हैं।

२. १२८७ का हिन्डोरिया शिलालेख

३. कीर्तस्तम लेख उसे गज सिंह दुर्ग कहता है (१३६४/१३०७ ई.)

४. सं. १३५७ का शिलालेख दमोह दीपक पृ. १०८

५. इन्क्रिपसन आफ दि सी. पी एण्ड वरार पृ. ५७

६. दमोह दीपक पृ. १०८

७. वही

८. वही पृ. ७८

९. इन्क्रिपसन इन सी.पी. बरार पृ. ५६

१०. जबलपुर गजे. पृ. ३

११से१२ इन्क्रिपसन सी.पी. बरार पृ. ६३

१३. आरचोलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया भाग ९ पृ. ४८

१४से१८. टेम्पिलस आफ दि प्रतिहार पीरियड — आर.डी. द्विवेदी

— पतौरा हाउस, डालीबाबा, सतना

सहसा ही भारी आवाज के साथ खण्डित हो गयी, जिसमें दोनों ओर के ऊपर हाथ तथा धड़ से सिर अलग हो गया; किन्तु शेष भाग पर कहीं भी बाल के बराबर खरोंच नहीं है। प्रतिमा विखण्डन का कारण आज तक अज्ञात है। नयी प्रतिमा की स्थापना के उपरान्त भी प्राचीन खण्डित मूर्ति यथावत् है और उसकी मान्यता भी पूर्ववत् है। गर्भगृह के ठीक पीछे सपाट प्रस्तर की ४२.५ फुट ऊँची प्राकृतिक मीनार है, जिसे स्थानीय लोग 'चीरा' कहते हैं। नवविवाहित युगल इसके मूल में हल्दी के 'हांते' लगाते हैं, जो अगले–दिन शीर्ष पर या मध्य मे दिखलायी देते हैं। इसे मनोकामना (संतानप्राप्ति) पूर्ण होने का संकेत माना जाता है। इस सम्बन्ध में वैज्ञानिक तथ्य यह है कि बलुआ पत्थर में लोहे की न्यूनाधिक मात्रा होती है जो वातावरण की कमी से मोरचे में बदल जाती है और विभिन्न आकृतियों में पत्थर पर दिखायी देती है। धूप व ऊँचाई के कारण यह कुछ पीलापन लिये दिखायी देता है जिसे श्रद्धालु – "हांते उदर आये" कहते हैं।



मंदिर के पीछे के शिलाखंड

प्रतिवर्ष वैशाख माह की पूर्णिमा को लगने वाले मेले के लिए यह क्षेत्र विख्यात है। रामटौरिया निवासी स्व. पं. दयाराम रावत के पूर्वजों के सं. १९३० (सन् १८७३) के एक बहीखाते में अबार मेले का उल्लेख है; किन्तु बुजुर्गों का मानना है कि मेला हजारों वर्ष पुराना है। ढेठ ग्रामीण परिवेश के इस मेले का अपना अलग ही महत्व है। यह मेला बुन्देलखण्ड की संस्कृति का प्रतीक है। मेले में ग्रामोत्पाद व ग्रामोपयोगी वस्तुएं ही बिक्री का प्रमुख आकर्षण रही है। बैलों की जोड़ी, गायें, घोड़े, बकरियां, हल, बखर, हल के फार, हँसिये, खुरपी, देशी भेड़ों की ऊन के बने डोरिये, कम्बल, बिरचुन, डुबरी, प्याज, भटा, चिरौंजी, नारियल व विविध वस्त्र तथा वर्तन प्रमुख रूप से बिक्री हेतु आते थे। लोग गुदने भी गुदवाते थे। कठपुतलियों का खेल, नौटंकी, मौत का कुंआ ग्रामीणों के लिए कौतूहल की बात होती थी। माता की भगतें, जवारे और राई नृत्य रात–रात भर होता था। लोग पैदल तथा बैलगाड़ियों से दूर–दूर से आते थे और एक सप्ताह तक चलने वाले इस मेले में अबार माई को भटा–गकरियों का भोग लगाकर शान्ति प्राप्त करते थे। शहरी संस्कृति के नाग ने यह स्वाभाविक वातावरण तो अब विषैला कर दिया; किन्तु पुरातन मेले का स्वरूप न्यूनाधिक अभी भी परिलक्षित होता है।

अबार माता द्वारा मनोकमना–पूर्ति की अनेक घटनाएं जन–जीवन में प्रचलित हैं और यही तथ्य इस क्षेत्र के प्रति लोक की श्रद्धा व आस्था का कारण है। बुन्देलखाण्ड की दस्यु–परम्परा के महत्वपूर्ण सदस्य–दुर्गइयां, ठाकुर देवीसिंह, शंकरसिंह आदि की इष्टदेवी अबारमाता ही रही हैं। शाहगढ़ नरेश – बखतबली शाह और बानपुर नरेश मर्दनसिंह की श्रद्धा का केन्द्र अबार माता थीं। आज भी गौड़ों व लोधियों की कुलदेवी के रूप में ये मान्य है। मंदिर के पृष्ठ भाग में भूलुण्ठित मकानों की ईटों के अवशेष प्रमाणित करते हैं कि लगभग पांच–सात सौ वर्ष पूर्व यहां बस्ती रही होगी। प्राकृतिक पत्थरों से निर्मित एक गहरी गुफा भी यहां पर है।

अबार मेला लगने का समय अत्यन्त सटीक है। चैत–वैशाख में फसल कटकर तैयार हो जाती है। किसान के हाथ में पैसा आ जाता है और वह फुर्सत में होता है। मेला देखने दूर–दराज से लोग आते हैं तो रिश्तेदारों से सपरिवार मिलना भी हो जाता है। शहरों तक पहुंच न हो पाने के कारण ग्रामीणों को अपनी आवश्यकता का सामान मेले में सहज सुगम हो जाता है।



मंदिर के पीछे का विहंगम दृश्य

यह स्थल साम्प्रदायिक सद्भाव का अप्रतिम उदाहरण है। यहां हिन्दुओं के अतिरिक्त मुस्लिम, सिख, जैन आदि धर्मावलम्बी भी उसी श्रद्धा भाव के साथ आते हैं जैसे मुसलमानों से इतर धर्मानुयायी अजमेर शरीफ जाते हैं। जाति–पांत या वर्ग–भेद की तो यहां कोई चर्चा ही नहीं होती।

बुन्देलखण्डवासियों को प्राकृतिक सुषमा से आपूरित ऐतिहासिक, धार्मिक व सांस्कृतिक महत्व के इस तिमिराच्छादित तीर्थस्थल का तीर्थाटन अवश्य ही करना चाहिए।

– शास. महाविद्यालय कोलारस, शिवपुरी म.प्र. □

लोककवि ईसुरी का आध्यात्मिक चिंतन

— डॉ. दुर्गेश दीक्षित

हमारा देश विश्व—गुरु की उपाधि से विभूषित रहा है। यहां के चिंतक, दार्शनिक और मनीषी सारे विश्व में अपना आलोक विखेर चुके हैं। स्वामी विवेकानंद, रामकृष्ण परमहंस, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गाँधी, पं. जवाहर लाल नेहरू, आचार्य विनोवा भावे, आचार्य रजनीश ने अपने चिंतन और अनूठे दर्शन के बल पर सारे विश्व में अमर कीर्तिमान स्थापित किया है। बुन्देलखण्ड तो भारत का हृदय—प्रदेश है। यहाँ की सुरम्य वनस्थली और प्राकृतिक सौन्दर्य मानव—मन को आकर्षित किये बिना नहीं रहता। इस भू—भाग पर अवतरित होने वाले मनीषियों का मन श्रृंगार से आध्यात्म की ओर उन्मुख रहा है। यहाँ के कवि मनीषि आसक्ति से विरक्ति की ओर उन्मुख होते रहे हैं। विश्व कवि गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य केशवदास, विहारी और पद्माकर की काव्य—सर्जना का पुष्ट प्रमाण हमारे समक्ष है। रत्नावली की भर्त्सना में तुलसी की घोर आसक्ति दिखाई देती है —

''मांस चर्ममय देह यह, तामें ऐसी प्रीति।
होती जो श्रीराम सो, होत न तो भव भीति।।''

उन्हीं तुलसी ने विरक्त होकर रामचरितमानस जैसे अमर महाकाव्य का प्रणयन करके भक्ति का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया है। कविवर पद्माकर श्रृंगार से भक्ति की ओर उन्मुख हुए हैं। प्रारंभिक छंदों में प्रकृति के उद्दीपक चित्र दिखाई देते हैं और उन्हीं के जीवन के उत्तरार्द्ध में भक्ति के छंदों की अधिकता रही है। नखशिख वर्णन और नायिका भेद पर सैकड़ों दोहे लिखने वाले रीतिकाल के श्रेष्ठ कवि विहारी के दोहों में भक्ति—भावना और नीतिपरक विचारों के दर्शन होते हैं। कविवर बिहारी की जन्मस्थली भी बुन्देलखण्ड है। एक दोहे में इसका संकेत भी मिलता है।

''जनम बुदेले जानिये, मथुरा बसि ससुराल।''

निर्गुण संत कबीर आसक्ति से विरक्ति की ओर झुके थे। उन्होंनें एक दोहे में कहा भी था —

''नारी तो हमने करी, कीन्हा नहीं विचार।''
जब जानी तब परिहिरी, नारी बड़ा विकार।।''

मैथिल कोकिल विद्यापति को घोर श्रृंगारीकवि कहा जाता है एक सद्यस्नाता का चित्र देखिये —

''कामिनि करत सनाने, हेरई हनई पचबानें
विपुल नितम अति वेकत भेल''

यही घोर श्रृंगारी कवि जीवन के उत्तरार्द्ध में कह उठता है —

''तातल सैकत वारि—विन्दुसम, सुतवित समनि समाज।''

यदि लोककवि ईसुरी आसक्ति से विरक्ति की ओर मु[ड़े] हो तो इसमें आश्चर्य की बात क्या है? महान संघर्षों के बी[च] पले पुसे लोककवि ईसुरी की भी यही स्थिति रही है। उन्हें उप[ने] जन्मस्थान 'मेड़की' को छोड़कर ससुराल में डेरा डालना पड़ा उदरपोषण के लिए दर—दर की ठोकरें खानीं पड़ी। कभी बगौरा, कभी धौर्रा और कभी धवार के रहीसों की देहली प[र] माथा झुकाना पड़ा जीवन में आघातों और दुर्घटनाओं का क्र[म] चलता ही रहा। पत्नी की मृत्यु, बेटी गुरन का वैधव्य औ[र] माता—पिता की मृत्यु ने तो उनकी कमर ही तोड़ दी थी। इतन[ा] सब कुछ होने के बाद भी वह जीवत महापुरुष सारे जंजालों से ऊपर उठकर काव्य—धारा प्रवाहित करता रहा। 'रजऊ' के प्रति आकर्षण ने उनके जीवन की धारा ही मोड़ दी थी। 'रजऊ' की स्थिति को नकारा नहीं जा सकता। यह बात पूर्ण सत्य है कि ग्राम धौर्रा के मुसाहिब जू की रूपवती पुत्री का नाम 'रजऊ' था। मुसाहिब जू के पिछवाड़े में 'ईसुरी' का निवास था। दोनों घरों के बीच में एक छोटी सी खिड़की थी। उसी खिड़की से होकर उनका प्रेमालाप और रूप—दर्शन का क्रम चलता रहा बात अधिक बढ़ जाने पर मुसाहिब जू ने ईसुरी को नीम की डाल पर टँगवा कर पिटाई लगवाई थी। उनकी एक चौकड़िया में इस घटना का स्पष्ट संकेत भी है —

''जा भई दसा लगन के मारें, रजऊ तुमारे द्वारें।
जिनपै फूलछड़ी न लागीं, तिनें घलीं तरवारें।।
हमतौ टँगे नीम की डारन, रजुवा करें बहारें।
ठाँढ़ी हतीं टिकी चौखट सें, अब भईं ओट किबारें।।
का कर सकत अकेले 'ईसुर' सबरौ गाँव उतारें।''

रजऊ तो उनकी प्रेमिका थी, इसमें रंचमात्र भी सं[देह] नहीं है किन्तु उनकी रजऊ लौकिक होते हुए भी अलौकिक हो गई। कविवर घनानंद की अनन्य प्रेमिका 'सुजान' घनानंद जी के साथ घुलमिलकर एकाकार हो गई, जिस प्रकार आत्मा और परमात्मा मिलकर एकाकार हो जाते हैं। कुछ इसी प्रकार की स्थिति ईसुरी और रजऊ की हो गई थी। एक चौकड़िया में तो ईसुरी ने रजऊ को निराकर ब्रह्म के रूप में निरूपित किया है

''नइयाँ रजऊ काऊ के घर मे, बिरथाँ कोऊ भरमें।
सब में है औ सबसैं न्यारी, सब ठौरन में मरमें।।
को कयें अलख खलक की बातें, लखीं न जाय नजर में।
'ईसुर' गिरधर रयें राधे में, राधा रयें गिरधर में।

जो स्थिति राधा और गिरिधर की थी, वही स्थिति ईसुरी और रजऊ की मानी जाए तो अनुचित नहीं है। ईसुरी

आशुकवि थे। अपनी फागों को फड़ों पर स्वयं गाकर सुनाया करते थे। जिस दल में उनकी उपस्थिति होती थी वह टोली कभी पराजित नहीं हुई। लोक नर्तकी सुन्दरिया रंगरेजिन और गंगिया के प्रति उनके मन में बहुत लगाव था उस सुंदरिया रंगरेजिन ने यह प्रण किया था कि मैं केवल ईसुरी की ही फागें गा—गा कर नाचूँगी। उन्हे अपनी अनूठी फागों के बल पर बहुत लोकप्रियता प्राप्त हुई उनके जिह्वाग्रे पर सदा सरस्वती विराजमान रहतीं थीं। हर एक घटना पर तुरन्त चौकड़िया बन जाती थी। कहा भी है —

''नित नई फागें रचें 'ईसुरी', गावैं धरे पण्डा।''

बताइये! इससे बड़ी तल्लीनता और क्या हो सकती है कि कविवर घनानंद ने सुजान को ईश्वर मानकर आजीवन स्मरण किया। सुजान उनके लिए साक्षात परमात्मा बन गई। कुछ इसी तरह की स्थिति 'ईसुरी' और रजउ की है—

''विधना करी देह ना मेरी, रजउ के घर की देरी।
आउत जात चरनन की धूरा, लगत जात हर बेरी।।
लागी आन कान के ऐंगर, बजन लगी बजनेरी।
उठन चात अब हाट 'ईसुरी', बाट भौत दिन हेरी।।

यह आत्मा और परमात्मा के सम्मिलन की स्थिति है। कवि ने बड़े ही सहज भाव में अपनी तन्मयता का परिचय दिया है। जहाँ तक कवि के श्रृंगारीरूप की बात है सो हर कवि अपने युवा काल में घोर—श्रृंगारी दिखाई दिया किन्तु जीवन के उत्तरार्द्ध में वही कवि भक्त और आध्यात्मिक रूप में दिखाई देने लगता है। जिस रजउ को उनकी प्रेमिका के रूप में प्रतिष्ठा दी गई है उसी रजउ की स्थिति का वर्णन करते हुए कविहृदय मुखरित हो उठता है —

''देखी रजउ काउ नें नइयाँ, कौन वर न तन मुइयाँ।
कां तौ उनकी रहस रास है, कां दये जनम गुसइयाँ।।
पैलऊ भेंट हमई सैं ना भई, ललक लगी सब खइयाँ।
'ईसुर' हमनें रजउ की फागें, कर दई मुलकन मइयाँ।।''

भले ही उनका प्रारंभिक प्रेम लौकिक और मांसल रहा हो, किन्तु उनके जीवन के अंतिम क्षणों में वही प्रेम अलौकिक और ईश्वरीय बन गया। कवि ने एक चौकड़ी में सांग रूपकक के माध्यम से जीवन की क्षणभंगुरता का वर्णन करते हुए कहा है —

''बखरी रईयत हैं भारे की, दई पिया प्यारे की।
कच्ची भींट उठी माटी की, छाई फूस चारे की।।
वे बंदेज डरी वे बाड़ा, जेई में दस द्वारे की।
किबार किबरियाँ एकऊ नइयाँ, बिना कुची तारे की।
'ईसुर' चाय निकारौ जिदनाँ, हमें कौन वारे की।''

जिस कवि के मन में वैराग्यभाव उदित हो गया हो, उसे कामुक वासनाग्रसित और परस्त्रीगामी कैसे कहा जा सकता है? वे सब तो युवाकाल की अठखेलियां हैं। इस अवस्था में थोड़ा बहुत विचलन स्वाभाविक है। कवि को इस बात का अपने आप आभास हो गया कि यह शरीर नाशवान और क्षणभंगुर है। कहा नहीं जा सकता कि इस तन पिंजड़े को छोड़कर कब प्राण पखेरू उड़ जाँय। कवि का कथन कितना सटीक है। यह पूर्ण सत्य है कि जो इस संसार में आता है उसे एक न एक दिन इस संसार को छोड़कर जाना ही पड़ता है—

''तन कौ तनक भरोसों नइयाँ, राखें लाज गुसंइयाँ।
तरवर पत्र गिरत धरनीपै, फिर ना लगत डरइयाँ।।
जर बर देह मिलै माटी में, फिर न चुने चिरइयाँ।
'ईसुर' देही काम न आबै, पशु की बनत पनइयाँ।''

इसी तरह की दूसरी चतुष्पदी में कवि ने कुकर्म से दूर रहने की बात कही है —

''तन कौ कौन भरासौ करने, आखिर इक दिन मरनें।
जौ संसार ओस कौ बूंदा, पवन लगे सैं ढरनें।।
जोलौ जी की जियन जोरिया, तोलौं जे दिन भरनें।
'ईसुर' ई सिंसार आनकै, बुरे कामसैं डरनें।।''

इस बात की पुष्टि तो बड़े बड़े संत महंतों ने भी की है। यह तो कटु सत्य है। इसे किसी भी प्रकार से नकारा नहीं जा सकता है। इस परम दुर्लभ मानव शरीर को प्राप्त करके सदा सत्कर्म करना ही श्रेयस्कर है। तभी तो कवि ने बुरे कर्मों से दूर रहने की बात जोरदार शब्दों में की है। यह जीवात्मा प्रियतम परमात्मा से मिलकर एकाकार हो जाएगी। संत कबीर ने भी कुछ इसी तरह की बात कही है —

''रहना नहिं देश बिराना है।
यह संसार चहर की बाजी, हवा लगे उड़ जाना है।
०० ०० ००
घूँघट के पट खोलरे, तुझे पीव मिलेंगे।
घट घट में तोरे साँई बसत हैं, कटुक बचन मत बोलरे।''

यही बात लोककवि कितने सहज भाव में कह उठता है।

''इक दिन होत सबई कौ गोनौं, होनों उर अनहोनौं।
जाने परत सासरे साँसऊ, बुरो लगे चाय नोंनौ।
राखै चायै जोलौ 'ईसुर' देय उनई भर सोनौ।।''

कवि को संसार की असारता का अपने आप भान हो जाता है। इस मोहमाया को छोड़कर परमधाम जाना ही लाभकारी है। यहाँ रहकार तो केवल पापों की गठरी का बोझ बढ़ता जायगा। परमपद प्राप्ति का साधन तों केवल हरि—चरणों का स्मरण ही है। कवि इन जंजालों से ऊबकर अपने प्राण—पखेरू से कह उठता है —

''हंसा उड़ चल देस बिराने, सरवर जात सुखानें।
इतै रये की कौन भलाई, जितै बकन के थानें।
समुद भरे हैं अगम उतै चल, सख पाबैं मनमानें।
बचत बनें तो बचौ 'ईसुरी' तानें काल कमानें।।''

इस संसार—सागर से पार उतरने के लिए सत्य, अहिंसा,

गाव गीत फागुन के

— एन.डी. सोनी

गाव गीत फागुन के, चिड़ियन के संग।
परन लगो जाड़े कौ, फीकौ सौ रंग।।

पूस—माव जाड़े नें, भूबर दई ऐन।
फागुन के आँय परो, प्रानी खों चैन।
घाम लगै दिन नौनों, खुनकी सी रैन
चिड़ियन के झुन्ड भोर, मीठे कयें बैन।

लगन लगो मीठौ सौ, मौसम कौ ढंग।
गाव गीत फागुन के, चिड़ियन के संग।।

धरती कौ देखौ जौ, सोरा सिंगार।
रंग सें करोंदन के, लगो है महाउर।
बालन कौ घंगरा है, हरौ—हरौ रंग।
सरसों की फरिया है, उड़त है उमंग।

परी—फूल चोली सें, कसो—कसो अंग।
गाव गीत फागुन के, चिड़ियन के संग।।

टेसू की बोंड़न की, लटें रई झूल।
सेंदुर बन माँग भरें, टेसू के फूल।
आमन कौ मौर मुकुट, बेंदी कचनार।
ओंठन सें फूट रये, पके से अनार।

अतर लगो चम्पा कौ, छोड़ रओ तरंग।
गाव गीत फागुन के, चिड़ियन के संग।।

— राजमहल के पास, टीकमगढ़ म.प्र. □

बसंत

— जगदीश्वर

बासंती बोली हो, बासंती चोली हो,
बासंती हँसी हो, ठिठोली बसंतमय।
बासंती गान होवे, बासंती परिधान,
राग—द्वेष रहित हो रँगोली बसंतमय।
ओढ़ना बिछाना भी, खोना और पाना भी,
भोलापन और भाव—भोली बसंतमय।
चोला बसंती, राम बोला बसंती हो,
'जगदीश्वर' होवे हमजोली बसंतमय।

मुरझाये मन का बसंत

मन हैं जब मुरझाये से, का है बसंत के आये से,
टूटी खाट धँसी धरती में, आँखन नीर बहाये से।
फटी बिवाई, रकत चुचाबै, का है लेप लगाये से,
फटें चीथरा—थिगरा पैरें, का है आंग बचाये से।
मन है मैलौ, आंचर मैलो, का है गंग नहाये से,
दुख के दिन जब आवें भैया, अपने लगें पराये से।।
राग—द्वेष जब भीतर पल रये, का है रहस छुपाये से,
रोय आतमा होंठ हँसत हैं, का है मन भरमाये से।
जठरानल तक जगी पेट में, बुझै न अगन बुझावे से,
फाग बिसर गह फिर का होबै, राग बसंती गावे सें।

— कमला कॉलोनी, नया पन्ना नाका, छतरपुर म.प्र. □

करुणा का ही आश्रय प्राप्त करना चाहिए सत्कर्मों के द्वारा ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। कवि कह उठता है —

''दीपक दया धरम कौ जारौ, सदा रात उजयारौ।
धरम करे बिन करम खुलेंना, कुची बिना ज्यो तारौ।।
समझा चुके करें न रइयौ, दिया तरें अँदयारौ।
कात 'ईसुरी' सुन लेव प्यारी, लग जैय पार निवारौ।''

ब्रह्म में लीन होने की युक्ति लोककवि अच्छी तरह से समझ गया है। मोक्ष प्राप्ति का एक मात्र साधन योग और युक्ति है। इस यथार्थतत्व को कवि सहज भाव जनसाधारण के समक्ष व्यक्त करता है—

''जो कोऊ जोग जुगत कर जाने, चड़ चड़ जात बिमाने।
ब्रह्मा ने बैकुण्ठ रचो है, उनई नरन के लानें।।
होन लगत फूलन की बरसा, जिंदनाँ होत रमाने।
'ईसुर' कात सबई के देखत, ब्रह्म में जात समानें।।''

कवि के जीवन के अंतिम दिन ईश्वर की आराधना में ही व्यतीत हुए हैं। उनकी चतुष्पदियों में सद्वृत्ति के दर्शन होते हैं। अधिकांश विद्वान उन्हें अश्लील और घोरश्रृंगारी कवि कहकर उपेक्षा करते रहे हैं। लगता है कि विद्वान उनके आध्यात्म पक्ष को अनदेखा करते रहे हैं। यदि लोककवि के इस पक्ष की ओर ध्यानाकर्षित किया जाए तो पूर्व की मान्यतायें अपने आप खण्डित हो जाएंगी। और उनका आध्यात्म पक्ष खुलकर मनीषियों के समक्ष प्रकट हो जाएगा। तभी एक रसज्ञ और आशुकवि के साथ न्याय हो सकता है। यदि देश के विद्वान उन्हें निष्पक्ष भाव से काव्य की कसौटी पर कसें तो, वे सदैव खरे ही सिद्ध होंगे। ऐसे रससिद्ध रचनाकार के चरणों में मेरा शत—शत नमन्।

— कुण्डेश्वर, टीकमगढ़ म.प्र. □



बुन्देली लोकगीतों में सीता–वनवास

— रमेश शंकर सक्सेना

बुन्देली लोक जीवन पर 'राम–कथा' का साँस्कृतिक प्रभाव प्राचीन काल से चला आ रहा है। बुन्देलखण्ड के लोक मानस में राम–कथा प्राणों के समान बसी है। इसका कारण है — इस पुण्य भूमि की सुरम्य बनस्थली! जिसने भगवान राम का मन मोह लिया था, और वह 'चित्रकूट' में रम गये थे। वास्तव में बनवासी राम ने अपने निर्वासित (बनवासी) जीवन का सर्वाधिक समय बुन्देलखण्ड के चित्रकूट नामक सुरम्य स्थान पर व्यतीत किया था। इस निकटता के परिणाम स्वरूप रामचरित्र के नैतिक आदर्श बुन्देली माटी की साँस्कृतिक एकरूपता से इतने जुड़ गये कि लोक–मानस ने अपने परिवेश के अनुसार उनका मानवीय रूपान्तरण कर लिया, फलतः भगवान राम और सीता बुन्देली स्त्री–पुरुष के प्रतीक बन गये।

बुन्देलभूमि को इस बात का भी गौरव है कि उसने 'रामकथा' के अनेक अमर गायकों को जन्म दिया; जिन्होंने राम–कथा के परम्परागत् शास्त्रीय स्वरूप का वर्णन किया है। इसके अलावा इस जनपद की अन्तर्धारा में बहने वाली लोकसंस्कृति में भी रामकथा का व्यापक प्रभाव है। अपनी आँचलिक विशिष्टता के साथ बुन्देली लोक–साहित्य में श्री राम–कथा का इतना सरस और हृदयग्राही वर्णन है; कि मन–प्राण आनन्द बोध से आपूरित हो उठते हैं। इन गीतों में बुद्धि की अपेक्षा हृदय की निश्च्छलता और भोलापन जीवंत हो उठा है। मूर्तरूप हो गया है। इन गीतों के भावपूर्ण, सरस और मार्मिक वर्णन श्रोता और वक्ता की हृदयतंत्री को झंकृत कर देते हैं।

राम–कथा के पारम्परिक शास्त्रीय स्वरूप के कुशल चितेरे महर्षि बाल्मीकि, बाबा तुलसी, आचार्य केशव और गुप्त जी की पेनी दृष्टि से जो बात छूट गई। उसे लोक–गायकों ने बड़ी सूक्ष्मता से पकड़ा है। लोकगीतों में रामकथा के ऐसे अछूते प्रसंगों के बड़े ही भावपूर्ण, हृदयस्पर्शी, मार्मिक वर्णन हैं। इसका कारण है — लोक मानस का राम–चरित्र से आत्मीय लगाव या इस प्रकार कहें कि भगवान राम के हृदय का नाता। जिसके कारण लोक मानस के राम न तो ईश्वरीय अवतार हैं, और न ही ऐतिहासिक महापुरुष। बल्कि वह तो उसके अपने राम हैं; बुन्देली बीथिकाओं में विचरण करने वाले, सहज विश्वासी मन के भोले–भोले राम हैं, जो जन–जन के हृदय में रमण करते हैं, और उसके अपने हैं। यही कारण है कि लोकगीतकार न तो बाबा तुलसी जैसा भक्त है, और न ही वह महर्षि वाल्मीकि जैसी इतिहास दृष्टि से राम–कथा को संजोता है। बल्कि लोक–विश्वासों, लोक–मान्यताओं और लोक–परम्पराओं के आधार पर श्री रामचरित्र को लोक बुद्धि ने जितना स्वीकारा, गायकों ने उतने की सराहना की और जिसे लोकबुद्धि ने ग्राह्य नहीं किया, उसकी खुलकर निंदा करने में भी संकोच नहीं किया। वस्तुतः लोक–गायक इतना निर्भीक है कि उसे जो अच्छा लगता है, उसे सराहता है और जो लोक–मनस को ग्राह्य नहीं है, उसकी खुलकर निंदा भी करता है।

रामकथा के अन्य प्रसंगों की चर्चा विस्तारभय से न करके मात्र 'सीता–वनवास' के कथा प्रसंग को ही लें, तो हम पाते हैं कि इस कथा प्रसंग को लोक–गायकों ने इतनी सूक्ष्मता से भावपूर्ण वर्णन किया है कि हृदय करुणा से भर जाता है, और नेत्रों से अश्रुपात होने लगता है। आँखें डब–डबा आती हैं। नेत्र सजल हो जाते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस कथा प्रसंग को श्री रामचरित मानस में छोड़ दिया है। महर्षि वाल्मीकि ने इसका उल्लेख विशिष्ट ढंग से किया है। किन्तु लोक–गायकों ने इस कथा को इतनी तन्मयता से संजोया है कि सीता की व्यथा सजीव हो उठती है। सर्व–विदित है कि लोकापवाद से बचने के लिए श्री राम ने गर्भवती सीता को त्याग दिया था। यद्यपि सीता जी सभी प्रकार से शुद्ध थीं, निर्दोष थीं। उनकी अग्नि परीक्षा ली जा चुकी थी। तथापि लोकादर्श की स्थापना के लिए, लोक–मर्यादा की रक्षा के लिए श्री राम ने तिल–तिल छीजना स्वीकार किया और सीता जी को त्याग दिया। लोक मानस इन तर्कों से असहमत है। वह सीता के परित्याग से छुब्ध है वह इस अन्याय को आत्मसात नहीं कर पाता। पचा नहीं पाता, उसके मन सें सीता के साथ हुए अन्याय के दुख की चुभन है। वह सीता की व्यथा को अपनी व्यथा मानकर रोता है; उसकी सम्पूर्ण सहानुभूति बनवासिनी सीता, परित्यक्ता सीता के साथ है। व्यथित हृदय से वह कभी रोता है, कभी गाता है और भरे कंठ से सजल नयनों से शून्य में निहारता है; अपनी सीता मईया के लिए दो बूँद आँसू टपका देता है। बुन्देली लोक–गीतों में इस कथा प्रसंग को लोक–रंग की सतरंगी चूनर ओड़ा कर प्रस्तुत किया गया है। ध्यान दें —

श्रीराम महापराक्रमी रावण को मारकर लौट आये। अयोध्या के राज–वैभव का सुख राजा बनकर भोग रहे हैं। राम–राज्य की परिकल्पना साकार हो रही है। तभी गुप्तचर संदेश देता है। राम स्तब्ध होकर रह जाते हैं; लोक–निंदा और लोकापवाद की

आशंका से वह भयभीत होकर सीता को त्यागने का निश्चय करके भईया लक्ष्मण को आदेश दे देते हैं। "सीता को बनवास दिया जाता है। उन्हें घनघोर जंगल में छोड़ आओ।" लक्ष्मण आदेश का पालन कर सीता को राजमहल से जंगल में लिवा ले जाते हैं। सीता इस रहस्य से अनभिज्ञ हैं, उन्हें 'बनवास' का अथवा यों कहें कि 'त्यागने' जैसा आदेश नहीं बतलाया जाता है। वह तो सैर–सपाटे के हिसाब से ही वन श्री की शोभा निहारने को निकलीं हैं – ऐसा मान रही हैं। उन्हें क्या पता कि राम ने उनको त्याग दिया है, और लक्ष्मण जी उन्हें जंगल में छोड़ने जा रहे हैं। तनिक कल्पना करें – लक्ष्मण का रथ घनघोर जंगल में चला जा रहा ह, उसमें सरल ह्दया, भोली–भाली सीता बैठी चलीं जा रही हैं। चारों ओर सन्नाटा ही सन्नाटा है। यदा–कदा बन–पखेरू ही पंख फड़फड़ाकर सन्नाटा तोड़ देते हैं। देवर लक्ष्मण और सीता में कोई बात नहीं हो रही है, दोनों ही अपने अपने चिंतन में हैं। तभी सीता को प्यास लगती है, और देवर लक्ष्मण से पानी माँगती हैं। लक्ष्मण को मौका हाथ लग गया, वह सीता को कदम्ब वृक्ष की छाँह में नीचे बैठने को कह कर पानी खोजने का बहाना करके चल देते हैं। प्यासी सीता लक्ष्मण की बाट जोहते–जोहते थक गई और झपकने लगती हैं। (नींद आने लगी) इस करुण दृश्य को देखकर लोक कवि की संवेदना जाग जाती है और वह द्रवित होकर गाता है – गीत के बोल हैं –

"सरग की पटकी है सीता अभागिन, धरती ने लई है झेल।
इक बन लाँघो, दूजो बन लाँघो, तीजे बन लगी है प्यास।।
न इतै ताल, न इतै पुखरिया, न इतै जमुन जल नीर।
तुम बैठो भौजी कदंब की छईयां, लौट लखन कब आँय।।"

सीता जी आसमान से गिरीं हैं। जिसे धरती ने थाम लिया है। सरग से गिरने का तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से होता है, जिसका चाहने वाला कोई न हो, जिसका कहीं–कोई अस्तित्व न हो। खैर लक्ष्मण जी गर्भवती सीता को जल खोजकर लाने का बहाना करके जंगल में छोड़ आये। कितनी निर्मम कल्पना है? कोई गर्भवती स्त्री को सुनसान घनघोर जंगल में बिना बताये, दिलाशा देकर छोड़ आये। लक्ष्मण जी जल खोजकर लाने का बहाना करके, सीता को कदम्ब वृक्ष की छाँह तले बैठाकर लौट गये। सीता प्रतीक्षा करते–करते थक गई और झपकी सी आने लगी पर देवर लक्ष्मण को नहीं लौटना था, सो न लौटे। घबड़ाकर सीता जी उठीं और –

"सीता उठी है अकुलाय, इतै मोरो कोऊ न दिखाय।
माँय सें निकरो एक तपसी, सीता कों रहो समझाय।।
चलों न बेटी सीता कुटी में, तुम मोरे धरम की बेटी आय।
इक रात सिया रही हैं कुटी में, लव–कुश लये अवतार।
कुसई कौ ओड़न, कुसई बिछावन, बनफूल करें अहार।"

हायरे! हत्–भाग्य् कितनी वेदना है – इन पँक्तियों में – *"सीता उठी हैं अकुलाय बिसूरै! इतै मोरो न कोऊ दिखाय।"* 'बिसूरै' शब्द में जो वेदना है। विह्लता है उसे सभी जानते हैं। इस अवसार पर सीता के अर्न्तमन की व्यथा के एक–एक क्षण को लोक गीतकार ने बड़े ही मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है। तनिक विचार करें – अपने युग के चक्रवर्ती सम्राट राजा दशरथ की पुत्रवधू सीता, कंदुक इव ब्रह्मांड उठावों का दावा करने वाले बलशाली, कर्मवीर लक्ष्मण ठाकुर की भौजाई सीता सर्व समर्थ परम पराक्रमी राज–राजेश्वर महाराज राम की पत्नी सीता। राजा जनक की पुत्री सीता। वह सुकुमार सीता जो राजमहल के चित्रों को देखकर डरती थीं; वह सुकुमारी सीता जो सुखों में पली और फूलों में तुली। जो दो डग–मग में पग रखाने पर पसीना पसीना हो जाती थीं। उसी राज–दुलारी–राजकुमारी सुकुमारी सीता की कोख में प्रथम पुत्र का जन्म जंगल में एक बाबा की कुटी में होता है। जहाँ ओढ़ने–बिछाने को भी ढंग से कपड़े भी नहीं है। बल्कि "कुसई कौ ओड़न और कुसई बिछावन है।" इतना तो हम आप साध ारण मनुष्यों के यहाँ भी नहीं होता। प्रथम प्रसव की बड़ी–बड़ी तैयारियाँ बहुत पहले से ही कर लीं जाती हैं। फिर यह तो राजकुमारी हैं। भला! सीता के मन पर क्या बीती होगी? यहाँ महर्षि बाल्मीकि चुप हैं और बाबा तुलसी मौन साध गये। लेकिन लोक कवि ने इस पीड़ा को समझा है, वह भाव विह्लल होकर भरे कंठ में गाने लगता है –

"सीता के वन में लाल हुआ, गोपाल किवईया कोई नहीं।
सासु जी उनकी अजुद्या में, चरुवा रखईया कोई नहीं।।
जेठ जिठानी उनकी अजुद्या में, पलना उरईया कोई नहीं।
देवरानी उनकी अजुद्या में, चौक पुरईया कोई नहीं।।
ननद रानी तपोवन में, सौहर गवईया कोई नहीं।
सीता के बन में लाल हुआ, गोपाल किवईया कोई नहीं।।"

भाग्य की विडम्बना देखिये। हजारों दास–दासियों से घिरी रहने वाली सीता आज कितनी अकेली हैं और कितनी विवस? कितना आत्मीय और सजीव वर्णन है; सीता के वन में लाला हुआ, जहाँ न उसे कोई हरीरा पिलाने वाला है, और न कोई चौक पूरने वाला। उसके लाल को पलना डारने वाला भी कोई नहीं है। क्योंकि सासू जी तो अयोध्या में हैं। यहाँ चरुवा कौन रखेगा? हरीरा कौन पिलायेगा? इतना ही नहीं उनके बालक को 'मुन्ना' कहने वाला भी कोई नहीं है। कितनी वेदना है, करुणा है इस पंक्ति में – "सीता के बन में लाल हुआ, गोपाल किवईया कोई नहीं।" सीता के लाल तो हुआ लेकिन उसे 'मुन्ना' कहने वाला भी तो कोई नहीं है? दूसरी ओर ...

यदि आज यह पुत्र अयोध्या के राज महलों में होता तो अनेक दास–दासियाँ सीता की सेवा करतीं; पुरजन–परिजन

नजर न्योछावर करते और आँगन में बधाईयाँ गाई जातीं। सोहरों की ध्वनि से आकाश गूँज उठता। लोकगायक ने इस अवसर की नाजुक स्थिति का बड़ी ही बारीकी से वर्णन किया है। गीत के बोल हैं –

''होते जो पूत अजुदया, रानी सोनो लुटाउतीं।
लाला लछमन लुटाउते पूरी अजुद्‌या के राज।
सोने के चरुवा गंगाजल पानी, अँगना में होतीं बधईयाँ आज।।

सीता के अन्तर्मन की वेदना, कसक, पीड़ा चुभन कुछ भी कह लें – मानो साकार हो उठी है इस गीत में। यदि आज इस बालक का जन्म अयोध्या में होता तो रानी कौशिल्या सोना लुटातीं, देवर लक्ष्मण पूरी अयोध्या का राज लुटा देते। (कहीं–कहीं राजा दशरथ लुटाउते, पूरी अजुद्‌या के राज' भी गया जाता है। मुझे लक्ष्मन ज्यादा सटीक लगा अत: लक्ष्मण ही लिखा है; जबकि अधिकाँश 'राजा दशरथ' की छाप से गाते हैं।) सोने के मटका में गंगाजल से चरुवा रखा जाता पूरी अवध में धूम मचती, अंगना में बधईयाँ और सौहरे गाये जाते। हर्ष और उल्लास की सरिता उमड़ी फिरती। लेकिन हाय रे दुर्भाग्य? यहाँ तो जंगली फलों का भोजन और कुश का ओड़न व कुश का ही बिछावन है। ढंग के कपड़े भी नहीं है। सीता के मनस्ताप का उनकी व्यथा का इससे अधिक हृदय बिदारक–भावपूर्ण और करुण वर्णन भला क्या होगा?

लोककवि ने सीता की वेदना को अपनी वेदना समझा है। भाषा के सीमित और संयत् परिवेश में सीता की व्यथा को कुवेर के कोष की नाईं संजोया है। प्राण–वेदना के एक–एक छण को ऐसे–ऐसे चित्रों से उकेरा है कि चित्र बोलते से जान पड़ते हैं। उसने भाषा की शब्द शक्तियों से गागर–सें सागर भर दिया है। जिस राम–राज्य के गुणों का वखान करते वाल्मीकि नहीं अघाते, जिस राम–राज्य के गुणों की दुहाई देते बाबा तुलसी नहीं थकते– उसी राम–राज्य के आदर्श के लिए राम को कितनी रातें तनहाई में गुजारना पड़ीं? सीता को कितना त्याग और तप करना पड़ा? लक्ष्मण ने कितनी व्यथा के जहर को पिया? उनकी आत्मा, उनका स्वाभिमान कितना कसमसाया होगा? कौन जाने। स्वयं के सुख और स्वजनों के सुख को बलिदान करके राजा–राम ने अपने राम–राज्य के आदर्श की स्थापना की, व्यक्ति से बढ़कर समष्टि को समझा। खैर...

महर्षि की सहायता से बन का नाई बुलवाया गया और अयोध्या पुत्र जन्म की खबर भेजी गई। इस शुभ समाचार के साथ बुन्देलखण्ड में दूब और लड्डू भी भेजे जाते हैं। राजमहलों को पारम्परिक रीति अनुसार 'दूव और लड्डू' भेजे गये और नाई से कहा गया– लोककवि के शब्दों में –

''पहलो रोचना दियो राजा दशरथ, दूजो कौशिल्या माय।
तीजो रोचना दियो लक्ष्मण देवरा, पिया खों दियो बरकाय।।
अरे–ऽ–अरे–ऽ–! भईया लछमन, माथे को रोचन कहाँ पाईये हो।
भईया! भौजी के भये नंदलाल, नैना, हिया जुड़ाईये हो।।''

नाई! तुम अयोध्या के राजमहल जाओ और यह दूव व लड्डू (रोचन) ले जाओ। पहला रोचन (लड्डू) राजा दशरथ को, दूसरा माता कौशिल्या को और तीसरा लड्डू देवर लछमन को देना। फिर कुछ सोच कर कहती हैं –''पियाखों दियो वरकाय'' प्रसन्नता के इस अवसर पर अपनत्वपूर्ण उपालम्भ की कड़ुवाहट मूर्त हो उठी। चित्र सजीव हो उठता है; लगता है – वह खड़ी है लोक–सीता, महर्षि की कुटी के द्वार की देहरी पर। अश्रुपूर्ण नेत्रों से विसूरती, मलिन वेश में अपने दाँतों से नीचे का ओंठ काटती हुईख पाँव के अँगूठे से जमीन खुरचती हुई नयनों में नीर और भरे कंठ से कहती – ''पिया खां दियो बरकाय'' कितनी व्यथा है इस पंक्ति में और कितनी कसक? नाई ने ऐसा ही किया। राजा–राम को पुत्र जन्म की खबर ही नहीं दी गई। लक्ष्मण के मस्तक पर हल्दी–अछ्त से लगा तिलक और रोचना के लड्डू खाते देख राम पूँछते हैं – भईया लछमन मस्तक पर यह तिलक कैसा? और यह रोचना (लड्डू) कहां पाये हो? लछमण उत्तर देते हैं – भईया ! भौजी के भये नंदलाल, हिया, नैना जुड़ईये हो'' भाभी के पुत्र हुआ है, मेरा हृदय प्रसन्न हो गया है मेरे नेत्रों को शान्ति मिल गई। सोचिये–इस खबर से राम को कितनी प्रसन्नता हुई होगी और उन्हें रोचना न भेजे जाने से कितनी पीड़ा। लेकिन, एक राम हैं, जो कड़ुवा–तीता सब हजम कर जाते हैं, और धीर–गम्भीर बने रहते हैं। यह खबर परिजनों और पुरजनों में विद्युत–गति से फैल जाती है। सब प्रसन्न हैं गुरुदेव और माताओं का आग्रह, पुरवासियों की अभ्यर्थना से राम की मानवता जाग उठती है; वह पिघल जाते हैं, और लक्ष्मण के साथ सीता को लिवाने जंगल में जाते हैं। जंगल का दृश्य–कवि के शब्दों में –

''लव–कुश दोऊ वनवासी बालक, खेलें धनईयाँ कौ खेल।
ठाँड़े लछमन पूँछ रये, कौन बाबूल तुम्हारे बीर
राजा दशरथ के हैं हम नाती, लाला लछमन के हैं भतीज।
पिता अपने कौ हम नाम न जानें, सीता है माँई हमार, जो ठाडी पछीत।।''

कितनी करुणा है? हम अपने पिता का नाम नहीं जानते। पर इतना जरूर जानते हैं कि हम राजा दशरथ के नाती हैं। लछमन ठाकुर के भतीजे हैं। सीता हमारी माता हैं जो आपके पीछे खड़ी हैं। हृदय को बेधने वाले इन व्यंग्य वचनों को सुनकर लछमन जी व्यथित हो उठते हैं। राम सहम कर रह जाते हैं। लछमन ने पीछे खड़ी सीता की बंदना की और सीता तथा दोनों बालकों को समझा–बुझाकर राजधानी श्री अवध ले आते हैं।

आगे का वर्णन लोक परिवेश में गुम्फित है। सभी जानते हैं – लोक व्यवहार में ननद–भौजाई की पटरी कम ही बैठती

है। अतः कवि आगे कहता है कि जैसे ही सीता को लछमन जी के साथ आते देखा कि ननद बाई ने यानी श्री राम की बहिन ने तेल की उरहिन डाली। बुन्देलखण्ड में किसी के आगमन पर दरवाजे पर गोवर से लीपा जाता है, इसे 'उरैन' कहते हैं। यह आगन्तुक के स्वागत् का मूक संकेत माना जाता है। सीता के आगमन् पर गोवर से न लीपकर तेल की 'उरहिन' डाली, और सीता के आने पर बोलीं – ''सत्त् की साँची है सीता, तो उरहिन जावे सूख''। भला तेल भी कभी सूख सकता है। उसके तो निशान बने ही रहते हैं। ननदवाई के बोल सुनकर सीता का हृदय चीत्कार कर उठा। उनका अन्तस हृदय विदारक बोलों से विदीर्ण हो गया। भाई अग्नि में प्रवेश कराकर अग्नि–परीक्षा लेता है और बहन कहती है – ''सत्य की साँची है सीता'' तो तेल की उरहिन सूख जाये। आखिर यह कैसा घर है? कैसा परिवार है? और कैसे स्वभाव के यह लोग? सारा जीवन परीक्षायें देते देते, अपने पतिव्रत धर्म की सच्चाई का प्रमाण बतलाते बतलाते निकल गया। अब और कितनी परीक्षाएं देनी पड़ेगी? लोककवि विह्वल हो उठा। उसका हृदय रोने लगा। वह आगे कहता है –

''फट जा री धरती फट जा। जामें सीता जाय समाय।
फट गई धरती, समा गई सीता, लोग रहे हहराय।।
झपट रामजी ने चोटी पकरी, जा जोड़ी कोनें बिछुराई।...

गीत बड़ा है। सीता बोलीं– तेल की उरहिन क्या? यदि मैं सत्य की साँची हूँ और अपने पतिव्रत पर आरूढ़ हूं तो हे धरती माँ तुम फट जाओ, जिसमें सीता समा जाए। कहते हैं कि सीता की प्रर्थना से धरती माँ फट गई और उसमें सीता समा (प्रवेश) कर गई। लोग अचम्भित होकर देखते रह गये। तुरन्त ही रामजी ने दौड़कर सीता को पकड़ना चाहा पर वह सीता को न पकड़ सके, उनके बालों को अवश्य पकड़ लिया। जिससे उनकी चोटी के बाल उखड़ गये। सीता पृथ्वी में समा गई और उनके बालों की लटें श्रीराम के हाथों में रह गईं। राम ने बालों की लटों को धरती पर फेंक दिया, जिन्होंने छोटे–छोटे सर्पों का रूप धारण कर लिया।

आज भी बुन्देलखण्ड में एक प्रकार के पतले सर्पों को 'सीता की लट' कहा जाता है। इन सर्पों को मारना बर्जित है क्योंकि बुन्देली लोक मानस की मान्यता है कि यह तो सीता के बालों की लटें हैं, जो सर्पों के रूप में अपनी मालकिन सीता को इधर–उधर खोजतीं फिर रहीं है।

सीता का दुख लोक मानस का दुःख है क्योंकि लोककवि सचाई के अधिक निकट हैं। वह कथानक के प्रति ईमानदार है यही कारण है कि उसके मन में राम का चित्र तब तक नहीं बनता, जब तक उनके साथ उसकी सीता नहीं हैं। पहले सीता बाद में राम! क्योंकि सीता का आदर्श, सीता का त्याग, सीता की व्यथा राम से बढ़कर है। इसीलिये वह सीता को अधिक महत्व देता है। सीता का नाम पहले लेता है, राम का बाद में लोक जीवन में जब भी कहा जायेगा ''जय जय सीता राम'' कहा जायेगा। पहले सीता बाद में राम और अब सीताराम।

– पंकज पुल के पास, मु.पो. बल्देवगढ़, टीकमगढ़ म.प्र.

एकता की भांवना कौ संदेशौ देती बुन्देली संस्कृति

— आशा चौरसिया

संसकिरती भौतई वियापक शब्द है। जी में लोक–संसकिरती ई कौ भौतई महत्व को अंग मानो जात है। कायसें कौनऊँ देश की संसकिरती उतै की कई लोक–संस्कृतियन से मिल कै बनत है। ई लोकसंसकिरती के सोई अपने कैऊ अंग होत हैं। जी में लोक–चिन्तन, लोक–मूल, लोक–विश्वास, लोक–दरशन, लोक कलायें, लोक–आचरण, लोक–परम्परायें, लोक–देवता, उतै को खान–पान, रहन–सहन, पैरबो–ओड़बो सबै आ जात है। अपने बुन्देलखण्ड की लोक–संसकिरती सोऊ भौतई अनूठी है। जी के कारन बुन्देलखण्ड की कीरत–पताका दसऊ दिसन में फैरा रई है।

बुन्देली संसकिरती के साँचे–सूदे दरशन गाँव की गैलन में, खेत की मेड़न में, औ धूल–धूसरित लरका–वारन में खूबई मिलत हैं। आज जितै चारउ तरफ मानवता कौ पाठ पढ़ाओ जात है, अनेकता और भेदभाव खों भूले कैं एक हो कैं रैबे की सीख दई जात है, उतैं बुन्देली संसकिरती सदा सें हिल–मिल कैं रैबे के कारण अपनी न्यारी छवि में चार चाँद लगाउत हैं। बुन्देलखण्ड की माटी में जुर मिल कैं रैबे की सौंधी सुगंध सोउ आउत है।

बुन्देली संसकिरती में सोरा संसकार होत हैं, जी में बाल–बच्चन के धरती पै आबे के पैलईं सें, ई लोक सें सिधारवे के बाद लौ जे संसकार चलत हैं। पै इनमें कौनऊँ काज अकेलें नई होत हैं। काय सें इतै के रैबे वारे अपने–अपने भैया–भतीजन, पुरा–परौसन, रिश्तेदारन और माई–मायके के सबइ जनन खौं बुला कैं करत हैं।

बालक के जनमबे के पैलई जौन संस्कार होत है, उये आगन्नो कओ जात है। ई में सब खौं बुलाकें सबइ के सामूं जौ संस्कार करो जात है। फिर बालक के जनम के समय और ऊ के बाद पुरा परोस की जेठी–स्यानी औरतें एवं घर–परिवार की सबइ जनें जुर–मिल कैं बेइया, चरुआ आदि के नेंगचार करवाउती हैं और बाद के संस्कार पथ, चौंक–चन्दन तथा कुंआ पूजन आदि भी मिलजुरकैं पूरो कराउती हैं। और सबई जने ललना के भये की बधाई एक सुर में संगे–संगे गाउती हैं। जब बालक कछु स्यानों हो जात, तौ ऊकी पासनी कौ संस्कार बालक के ममाने में करो जात है। ई के अलावा नामकरन, कनछिदनों, मूड़नों में सोऊ सबै खों बुलौआ देत है। बालक के जनमवे पै और ब्याव–चलायन में अपने सगे सम्बन्धियन कौ भोज सोऊ होत है। ई भोज के काजन में सब जने जुर मिल कें आउत हैं, और काम–काज में तन–मन–धन सें सहायता भी करत हैं। जी में सब–छोटे–बड़े अपनौं मान–गुमान विसार कें उतनी देर खों एक हो जात हैं।

ऐसई कछु बड़ी बिरादरियन में जनेऊ संस्कार सोऊ होत है। जो भी सबके सांमू, पण्डितन खों बुलाकें मंदिर में हो करो जात है। ई के बाद ब्याह को संस्कार भओ करत। जी में लरका–मोड़िन की ब्याव की बात चलवे से लैंकें लगुन लिखवे, घान (छेइ माटी) निकरबे, मड़वा बनवे, मैर भरवे, पक्यात होवे, चीकट आदि से लैंकें बारात के बिटिया बारन के द्वारे पै पाँच कें टीका, चढ़ाव, भाँवर, बिदाई उर ऊ के बाद तक के सबइ नेग–चारन में वर औ कन्या दौनऊँ पक्षन में अच्छी भीड़–भाड़ रात है। ई संस्कार में भी हर काम सामूहिक रूप सें नौने–नौने बनरा–बनरी और गारी गाकें होत हैं। जिनकौं बुन्देली संसकिरती कौ मीठो–मधुर रस झर–झर कें सबखाँ सरावोर कर देत है।

मानुस जनम कौ सबसें आखरी संस्कार मृत्यु के बाद कौ होत है। ई में सब जने मिल कें 'राम नाम सत्य है' कहत भये, चार जने डोला कंधन पै धर कें बड़े घरे पौंचा आउत। जाँ कौ गओ मान्स (प्रानी) कभँऊ लौट कें नईं आउत। काय सें ओई अपनो असली घर कहाउत है।

'बखरी रैयत है भारे की दई पिया प्यारे की।'

इतै हम देखत हैं कि बुन्देलखण्ड को कौनऊँ संस्कार अकेले पर कें नईं होत है। जनम सें मरबे लौ प्रानी समूह में भाव–विचारन खाँ एक करत भओ अपनौ सुखी–सुखी जीवन बिताउत है।

हमारौ बुन्देलखण्ड तीज–त्यौहारन की खान कहाउत है। इतै के मान्स बारउ–मंइना हंसत–गाउत रत हैं। ऐसों कओ गओ है कै इतै हर दिन एक त्यौहार होत है। जी की मस्ती में भरी सबरीं बुन्देली आत्मायें भगवान के नीरैं बनी रातीं हैं। दसैरा, दिवारी, बुड़की, राखी, होरी तो सबरे भारत बरस में मनाई जात है। पै इतै की अपनी अनोखी रिवाज है। दसैरा खों सबजनें हाले–फूले सबखौं पान ख्वाउत और गले मिलत हैं। दिवारी की पूजा–पाठ को भोग परसाद घर–परिवार में पुरा परौस में बाँटत हैं, उर सब भैया हिलमिल कें दिवारी नचत–गाउत गाँवन–गाँवन में फिर–फिर कें प्रेम संदेश फैलाउत हैं। बुड़की खों सब जने कौनऊ तीरथ पै नईंतर कौनऊ नदी–तालाब में बुड़की लगावे जे रमटेरा गाउत भये जात हैं —

'निकर चलो दै टटिया रे, टै टटिया रे,
धंधे में लगन देव आग, निकर चलौ हो।

दरस की तो बेरा भई रे, बेरा भई रे,

पट खोलो छबीले भैंरो लाल रे, निकर चलौ हो।'

राखी कौ त्याहार भैया–बैन के मिलन को पावन औसर है। होरी तो बुन्देलखण्ड में सबसें जादों दिन तक मनावे वारौ त्योहार है, काय सें जौ बसन्तन की अमरैया से लैंकें रंग–पांचे लौ मनाओ जात। ई सें फागुन के मंइना भर गाँवन की चौपालन–चौपालन झाँझ, मंजीरा, ढुलिकिया के संगै फागें अपनो रस बरसाउतीं रातीं। होरी के रंग में रंगे–रंगाये सबके मन औ हंसत–मुसक्यात चेहरा देख कैं बसंती–बहार भी लजान लगत।

ई के बाद भी बुन्देलखण्ड के कछू अपेन विशिष्ट त्यौहार होत हैं। जी में अक्ति, नौ देवीं, जवारे, पिसुआ सोमवार, गनगौर, तीजा, हरछठ, कन्हैया आठें, संतान सातें, जेठ दशारा, नौरता, मामुलिया, कजरिया आदि सबइ तीज–त्योहार उर धरम–करम के अनुष्ठान एवं पूजा–पाई सबइ जुर मिल कें किस्सा कहानियन खों कै कें, गा–बजा कें मनाये जात हैं। जीमें कार्तिक तो पूरे मइना भर कौ ब्रत होत है। ई में सोऊ गाँव की गुजरियाँ भुनसारें सें झुण्ड बना कें गाउतीं चली जाती –

'आ जाऊँगी बड़ी भोर दईरा लैकें, आ जाऊँगी बड़ी भोर।

न मानों मटकी घर राखौ, सब गैंइयन को मोल

दईरा लैंकें आ जाऊँगी बड़ी भोर।'

पूरे मास कन्हैया की पूजा करत–करत, सखियन से हिल–मिल जातीं और कन्हैया में इतनी रम जातीं कै उनै बिछुरवो दुखदायी लगन लगत। जी में वे अपनो प्रेम दिखाउतीं भई गाउतीं –

'मिल कें न बिछड़ जिन जाव कन्हैया प्यारे

दिन–दिन लगत सुहावने।'

ई के अलावा पुरान–पूजन, सत्यनारायन, कन्या भोज आदियन में सोऊ सबकी मिली–जुरी भगत रात है।

बुन्देलखण्ड में मौड़ा–मौड़िन के खेल होंय चाय बूड़े स्यानन के, कौनऊँ चौंतरा पे, पौर या दालान में बैठ कें संग–साथ खेले जात हैं। जी में लरकन कौ अटकन चटकन होय, चाय चंदा पौआ होय, चाय स्याने–समानन कौ चौसर।

बुंदेली संसकिरती से परिपूरित गाँव की पनिहारनें चार–छ: जनीं जुरकें घैला–गगरी सिर पै धरकें कुआ पै पानी भरवे खौं जाती हैं। तला–तलैयन में नदियन के घाटन में इनकौ जमघट रोजऊँ देखवे खों मिल जात है। इतै की नारियाँ हाट–बाजार भी सबके संगे जाती। वे बुलाउतीं भई कातीं हैं कि –

'चलो सखी हटिये चलिये, बजरिये चलिये हो'

जे बोल इतै की गुइयन की हिलमिल कै रैबे की बातें आय सुनाउत हैं। चकिया पीसवें की बैरा दो जनें बैठ कें, फागन की धुन में तनकई देर में सेरन चून पीस कें धर देतीं। सावन के मइना में मँहदी, चपेटन के संगे डारन–डारन झूला डर जात हैं। इन झूलन पै, हिडोरन पै बुन्देलखण्ड की संस्कृति किलोरें करत दिखान लगत। अपने ललनों को झूला तक वे अकेलें नई झुलाउतीं।

'झुला दो माई स्याम परे पलना में'

गाउतीं भई बे सबखाँ अपनी खुशियन में समेटतीं रातीं। हमाये किसान भैया जाड़े, वर्षा, घाम खेतन की मेड़न पे हो बिताउत भये फसल के आवे लौ जेई गीत एक सुर में गाउत रत–

'खाई गकरियाँ गाये गीत, जे चले चैतुआ मीत'

बुन्देली संस्कृति की गैराई की थाह लेतई नईं बनत। पूरे गांव के गांव एकई घर घांई बने रैत। गाँव की एक मौड़ी सबकी मौड़ी मानी जात, गाँव की बहू पूरे गाँव की बहू कुआउत है। अपने गाँव की बिटिया जौन गाँव में ब्याह जात, वे उतै कौ पानी तक नईं पियत। ई के लाने वे ऊ गांव में जाकें जो कन लगत –

'ई गांव में ब्याही मोरे गांव की बिटिया रानी

ई सें मोंखां पीने नैया ई मेड़े कौ पानी'

बुन्देलखण्ड में मेहमानन खौं देवतन घां साई पूजो जात है। मेहमानन कौ स्वागत–सत्कार, मान–पान करकें लोग अपने खौं धन्य मानत हैं। अपने मानुस जनम कौ सफल बनावे तीरथ यात्रा के लानें गांव भरे के सबई नर–नारी हिल–मिल के गाउतीं भई संग–साथ जाती हैं।

अथौली बिरियां ब्यारी कर–कुरूं के कौनऊं बिरछा के तरें या कौनऊ चौंतरा पै झुण्ड के झुण्ड आ–आ कें बैठ जात। जीपै कभऊँ पंचयात के पंचपरमेसुर अपनी न्याय की धरम–ध्वजा फैराउत भये सबकी दुख–पीर मिटाउत, तौ कौनऊँ दिना ओई चबूतरा पै राम लीला खेलन लगत, औ कौनऊँ दिना वे हुक्का–चिलम पियत भये सबखाँ किस्सा–कहानियन की सैर कराउत। उर गाँव के मेलन–ठेलन में तो इतै की संस्कृति की सामूहिकता निगत–फिरत दूरई से दिखान लगत।

सार रूप में हम जेई कै सकइत हैं कै बुन्देलखण्ड की रसीली–मोहक संस्कृति में एक जुटता की भावना के झिरना झरत फिरत। हम अपनौ मानुस जनम पावे खों धन्य मानइत हैं काय सें हमें ई पावन, सुनहरी, देवतन की धरती, वीर बुन्देलन के गौरव की भूमि पै जनम लेवे, पलवे–पुसवे और सुसंस्कारित होवे कौ सुघर मौका मिलो है। बुन्देलखण्ड के कन–कन में एकजुटता की भावना समाई । इतै के जनमानस खों हमेसई अपने आँचर से बाँधे रई, जीसें उनके भाव–विचार पूरी तरां सें एक हो कें, भारती भैया की एकता–अखण्डता बनाये रखवे में सोऊ शामिल रई है। ऐसी गौरवमयी संस्कृति खाँ हमें अपने करमन सें और भी महान बनाओ चाहिये। हमाई बुन्देली लोकसंस्कृति अपने लोकगीतन के माध्यम से एकता की भावना को सँदसौ दै रई है।

— खंदिया मुहल्ला, महाराजपुर □

आचार्य कन्हैया लाल शर्मा 'कलश' से भेंटवार्ता

— भेंटकर्त्ता वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक'

उमर के नौवें दशक में चल रए बुंदेली के यशस्वी कवि–साहित्यकार श्री कन्हैया लाल कलश मोरी २१ जून २००१ की चिठिया पाकें फूले नई समाए। उन्ने तुरतई मोय जो चिठिया लिख भेजी —

भैया वीरेन्द्र, गुरसराय झांसी, उ.प्र.

शुभाशीष। २१–६–२००१

तुमाई पाती पाकें मोय भौतई नौनो लगो। पढ़कै विलात खुशी आय भई। 'अनामिका' की गोष्ठि में तौ मैं न आ पाँव। इतै थोरो जरूरी काम हतो सो न आपावे के लानें छिमा करियो। फिर कभऊँ देखौ जै। अपुन ने जो पूँछो है, सो ऊमें पूंछने की बातई का हती चाय जबें चले आव इतै। हम तबई आमने–सामनें हुइयें सो जो जानौ सो पूँछ लइयों। अपुन इतै आऔ तौ बड़ी प्रसन्नता हुइये। अकेले जौन दिना आउने होय सो पैला सें खबर कर दइयो। सबखों यथोचित अभिवादन कइयो।

आपकौ अपनोई

ह. कन्हैया लाल शर्मा 'कलश'



जा चिठिया जैसई मिलीं सो हम फौरनई दूसरे दिना फोन सें खबर करके बड़े भुंसारे उनके इतै गुरसराय पौंच गए। शिष्टाचारिक अभिवादन के बाद उनकी बैठक में आमूं–सामूं बैठ परस्पर बतकाव करन लगे —

◆ *अपुन कौ जनम कबै और कितै भऔ तो? संक्षिप्त पारिवारिक परिचयात्मक विवरण सोऊ देवें। शिक्षा–दीक्षा, पढ़ाई–लिखाई?*

उत्तर — मोरो जनम् सन् १९१८ ई. की ३ मार्च खों भसेह गांव में एक सामान्य ब्राह्मण परिवार में भओ तो। दद्दा को नाव आचार्य चतुर्भुज और बाई कौ नाम हीरा देवी हतौ। पाँच भैयन में जेठो हों — सब भैया पढ़कैं ऊचे पदन पै शासन की सेवा में लगे हैं। आपकी भौजाई, जे देख लेव तेरासी बरस की हो गई। कैसी स्वस्थ–सलौनी हैं। एक बेटा और एक बेटी भए हमायें। दो नातिनें, दो नाती हैं — भौत अच्छे हैं। बेटा की बधू नुनार के कौशिक परिवार की आय। अच्छौ सुभाव है। जा समुझौ कै हमाए घर में कभउं फिसाद नई होत। मैं इंटर, बी. टी.सी. हों। हिन्दी विश्वविद्यालय विक्रमशिला से शोध पै आचार्यत्व (Ph.D.) पदवी पाई।

◆ *पत्रकारिता, लेखन, कविताई आदि करवौ, लिखवौ कब सें शुरू भओ तो? पैली रचना कबै, कितै छपी ती? ऊकौ नाव (शीर्षक) का हतो?*

उत्तर — कविताई करवौ तो कक्षा ३ सें शुरू हो गओ तो। ई की घटना बड़ी मजेदार है। ऊ दिना भूगोल पढ़वे पै मास्टर नें मार ऐसी दई तौ सबरी भूगोल कविता में बना कैं रट डारी। बानगी देख लेव —

"उत्तर में है ग्वालियर, उरई और जालौन,
दक्खिन में सागर जिला जाने जिये न कौन।।"

श्री घनश्याम दास पांडे, घासीराम व्यास सें हमाये संबंध रये। पिताजी खुद कवि हते। पत्रकारिता कौ बीज श्री पद्‌मकांत मालवीय, प्रयाग और श्री गणेश शंकर विद्यार्थी, कानपुर जैसी महान विभूतियों तथा 'शारदा' अयोध्या और 'आर्य–महिला' वाराणसी जैसी पत्रिकाओं से सम्पर्क में आवे सें जमो। मोरी पैली रचना 'शारदा' में सन् १९३७ में छपी। मोय वा रचना भौत अच्छी लगत। शीर्षक है — 'शारी की रानी'। ऐसी रचना मैं अबै कम बना पाऊत।

◆ *प्रेरक कवि–लेखक कौ नाव?*

उत्तर — प्रेरक तौ घरई के दद्दा हते। श्री मैथलीशरण गुप्त जैसे बनन चाऊत ते और वृन्दावन लाल जी बर्मा सोउ नौने लगत ते। एक बेर दोऊ जनन सें मिलबे चिरगांव और झांसी गओ सो उनने तौ मोय फटकार कें भगा दओ। मैंने गुस्सा में लिख दओ—

"हिन्द विन्ध्य सर मध्य दो साहित्यिक घड़ियाल।
एक जपै श्रीराम खौं, एक जपै नन्दलाल।।"

अब समुझ गए हुइऔ। फिर श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान से बड़ौ सहारौ मिलौ। तबई 'दीपशिखा' काव्य लिखो। ऊके कारन पुरस्कृत भए–सराहना–सम्मान दोऊ मिले। बच्चन जू, निराला जू कौ प्रभाव परौ। काव्य के दंगल में झाँसी के

अपनो गाँव

— नवल किशोर सोनी 'मायूस'

जो गाँव हमें अपने प्रानन सें प्यारो।
विपता में हमखौं ऐंनई देत सहारो।।
ई गाँव की माटी है प्यारी चन्दन सी।
जीसें जा देय मिली हमखौं कन्चन सी।।
जंगल पहार नें डग—डग हमें समारो।। जो गाँव हमें...
नँइ जानत कितनी भूलैं हमसें भई हैं।
सब जान हमें नादान क्षमा कर दँइ हैं।
डाटो जी भरकैं जी भरकैं पुचकारो।। जो गाँव हमें...
मिल तइ रए खैबे मउवा बेर अचरवा।
बन तइ रए ईमैं कुआ मदरसा तलवा।।
लरकन बिटियन खौं भूको कभँउ न पारो।। जो गाँव हमें...
संतन की सेवा इतै होत राजी सें।
नातेदारन को मान करत हैं जीसें।
भूले भटकन खौं खुलो रात है द्वारो।। जो गाँव हमें...
दुख सुख में सबके काम सबइ आ जाबैं।
स्वारथ को मन में भाव कभउँ नइँ ल्यावैं।
नइँ बैर भाव को तनकऊ इतै गुजारो।। जो गाँव हमें...
जो धरम तीज तेभार काउ के आबैं।
'मायूस' न होबै सबइ जिया हरसाबैं।
सबखौं सब भाँतन सुख को दैवे बारो।। जो गाँव हमें...

— छतरपुर (म.प्र.) ☐

जो बीती गजराज पर, सो बीती अब आय।।
बाजी जात बुन्देल की राखो बाजीराय।।

महाराज का यह पत्र पाते ही बाजीराव पेशवा एक लाख सेना लेकर आये और उन्होंने जैतपुर के किले में बंगस खां को घेर लिया अंत में बंगस खां की सेना पराजित हुई और बंगस खां को रण छोड़ना पड़ा। इस विजय के बदले में छत्रसाल ने बाजीराव पेशवा को अपना पुत्र मानकर अपने राज्य का चौथाई हिस्सा प्रदान किया। अब छत्रसाल के अच्छे दिन आ गये। पौष सुदी ३ वि.सं. १७८८ शाम चार बजे २० दिसम्बर सन् १७३१ को इस महान् विजेता ने अंतिम सांस ली?

छत्रसाल ने बुन्देलखण्ड में स्वतंत्र राज्य स्थापित किया वे एक वीर सैनिक योग्य संगठनकर्ता कुशल प्रशासक, हिन्दू धर्म के रक्षक के रूप में जाने जाते रहेंगे उन्होंने इस धरती को आक्रांताओं से मुक्त करके अन्य लोगों को रास्ता खाया। उस महान् वीर सेनानी को शत् शत् नमन्।

— सहा. प्राध्यापक, महाराजा महाविद्यालय छतरपुर म.प्र. ☐

सांची कात चिनचिनी लगने

— डॉ. हरिसिंह घोष

सांची कात चिनचिनी लगने, झूँठी मोसें बनने नइयां।
ईसें मोखां चुप्प रान दो, कये सें गहन उबलने नइयां।।
नई मानत तौ सुनौ, बनैला यार बने बारी के,
का औकात बिजूका की, जो बीच करै यारी के,
रखवारौ स्वारथ की गुटकें, और काऊ की चलने नइयां।।
ईसें मोखां......
बांध रचौ, सागर उगरालो (पै) कमल खिलावे तला चाउने,
का होने कागद रंगबे सें, तनक करे कौ मनक गाउने,
हल्ला भौत पुरैन फूल रई, बूंदा एक तलन में नइयां।।
ईसें मोखां......
खेतन में बरसें ओरे तौ, चांदी बरसै उनके घर में,
को है जो कैबो नई चाहत, (पै) जीभ बंधी है उनके डर में,
गाकें गीत भुमानी घर में, को बुलवाय संभलने नइयां।।
ईसें मोखां......

— घोषयाना, संकटमोचन मार्ग, छतरपुर म.प्र. ☐

लघु कथा —

देखौ कोऊ रह न जाय

— निहाल अहमद सिद्दीकी

हमाये भइया के लरका कौ व्याव मनचाई जांगा से अच्छी जांगा हो गओ। ऐसौ लगो जैसें सोने पै सुहागा। सो भइया जो चाहत्ते कै ई मौका पै कोऊ न्यौते के लाने न रै जाये। ढूंढ़—ढूंढ़ कैं पूंछ—पूंछ कें न्यौते लिखे गये और बांटे गयै। सादी के मौका पै हर तरा की हंसी—खुशी, मौज—मस्ती और नांच—गानन के खूब झंका—मंका कराये गये। औ खाबौ—पीबौ भी खूबई—खूब भऔ। येई बीच में एक जनन नें नजरें चुराकें धीरी आवाज में बगल वारे से पूछौ — 'काये भइया हलके भइया नईं दिखा रये।' बगल वारे ने तुरतई कई — 'जब उन्हें न्यौतौ दओ गऔ होय।' हमाये कानन में बे शब्द गूँजत रयै ते 'देखौ कोऊ रै न जाये।'

— बेनीगंज, छतरपुर (म.प्र.) ☐

चली गई मोरी घरवारीं, देखन बुन्देली कौ मेला।
मौड़ा मौड़ी घरैइ रमा गई, दै गई दो—दो धेला।।
बड़े भुन्सरां गई इतै सें, लेकें बेर कलेवा।
छबला तरें ढांक गई रोटी, धर गई गुरकौ ढेला।।
खेल तमासे गई देखवे, होने ठेलम ठेला।।
अँदयाई सें बाट निहारें, बैठो घरै 'अकेला'।

— काशीराम 'अकेला', जिला संघ प्रेस छतरपुर ☐

बम्बुलिया में निहित नर्मदा के प्रति आत्मीय–संवेदनाएं

— डॉ. सुश्री शरद सिं

प्रकृति की गोद में जन्म लेने एवं जीवन व्यतीत करने वाला मनुष्य भौतिक सुख–सुविधाओं में चाहे कितना भी लिप्त न हो जाए, वह अपने भीतर मौजूद प्रकृति–प्रेम को मिटा नहीं पाता है। गमले में लगे मानव की प्रकृति के प्रति आसक्ति का सबसे सहज उदाहरण हैं। ग्रामीणजन भी आज आधुनिक भौतिक चमक–दमक की ओर आकृष्ट होते हैं किन्तु उनके हृदय एवं मानस में विद्यमान परम्परायें उन्हें आज भी प्रकृति और उसके तत्वों से आत्मीय ढंग से जोड़े रखती हैं। यही कारण है कि साल के तीन सौ पैंसठ दिन अपनी रोजी–रोटी के सवाल हल करने में उलझे रहने वाले ग्रामीण त्यौहार के विशेष अवसर पर नदी–तालाब में नहाने निकल पड़ते हैं। यह यात्रा उन्हें अपने बिछुड़े हुए माता–पिता से मिलने जाने वाला यात्रा के समान असीम उत्कंठा से भरी हुई प्रतीत होती है और जब वे अपने आत्मीय स्थल पर पहुंचते हैं तो उनका अंत:करण भावविभोर हो उठता है।

बुंदेलखण्डी लोकगीतों में प्रकृति के प्रति आत्मीयता के भाव खुलकर मुखर हुए हैं। मकर संक्रांति के अवसर पर गाए जाने वाले लोकगीतों को बम्बुलिया अथवा भोलागीत कहा जाता है। भोला गीत में शिव, गणेश, भैरव, गौरी, नर्मदा एवं त्रिवेणी की प्रशस्ति निबद्ध रहती है। इसके अतिरिक्त सामाजिक संबंध, आर्थिक समस्यायें, पारस्परिक संबंधों का भी उन्मुक्त विवरण इन गीतों में होता है। सभी गीत अपने भाव–बोध के कारण एक से बढ़कर एक रहते हैं किन्तु इनमें नर्मदा–गीतों को भाव–बोध के परिष्कार का उत्तम उदाहरण कहा जात सकता है। ये गीत नर्मदा नदी के प्रति जिस आत्मीय संवेदना से परिपूर्ण रहते हैं, वह अद्भुत है। बुंदेलखण्ड के जन–जीवन में नर्मदा का स्थान पतित पावन गंगा से भी ऊँचा है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो नर्मदा बुंदेली जन–मानस में गंगा से भी अधिक घनिष्ठ है। इसीलिए जब नर्मदा स्नान करने वाली टोली तट पर पहुंचती है तो वह नर्मदा के जल का स्पर्श करते ही गा उठती है —

नरबदा मैया ऐसें तौ मिली रे
अरे, ऐसें तौ मिले जैसे मिल गए मताई औ बाप रे
नरबदा अरे हो...

यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि आखिर ऐसी कौन–सी विशेषता है नर्मदा में कि वह अन्य नदियों से अलग अपने परिवार के वरिष्ठ सदस्यों जैसी लगती है? उत्तर बहुत आसान है, नर्मदा ही है जो अपने जल के द्वारा किसानों को जीवन की विपरीत परिस्थितियों से बचाये रखती है, यही तो है इस क्षे की सबसे बड़ी नदी। किन्तु भोले–भाले ग्रामीणों का तर्क इस भी सहज और सीधा–सादा है। वे कहते हैं कि त्रिवेणी (गं यमुना, सरस्वती) एक ही दिशा में बहती है लेकिन नर्मदा अ विशिष्ट है क्योंकि यह विपरीत दिशा में बहती है।

नरबदा मैया उलटीं तो बहे रे
अरे, उलटीं तो बहे रें, तिरबेनी बहें सूधी धार रे
नरबदा अरे हो...

नर्मदा के प्रति बुंदेली जनमानस में आत्मीयता का स्थ सुनिश्चित है, वहां कोई भ्रम या विभ्रम की गुंजाइश नहीं है। नर्मदा से अपने संबंध के बारे में स्पष्ट हैं। वे नर्मदा को अप माता का दर्जा देते हैं, वहीं त्रिवेणी को बहनों का स्थान प्रद करते हैं। बहनें आत्मीय होने के बावजूद ब्याह के उपरान्त चली जाती हैं। माता दूर होकर भी सदा पास रहती है अ बहनें पास हो कर भी दूर गांव की रहवासी रहती हैं।

नरबदा मोरी माता लगें रे
अरे, माता तौ लगें रे, तिरबेनी लगें मोरी बैन रे
नरबदा अरे हो...

भारतीय संस्कृति में गंगा को पतितों का उद्धार क वाला कहा गया है। यह भी माना जाता है कि गंगा का ज अमृत के समान होता है। बुंदेलीजन अपने जातीय सांस्कृति गौरव की प्रतीक नर्मदा के जल को गंगा के जल में भी अधि महत्व देते हैं। वैतरणी पार करने के लिए भी किसी न कि सहारे की, माध्यम की आवश्यकता होती है किन्तु नर्मदा जल बिना किसी सहारे अथवा माध्यम के मोक्ष दिला देता

नरमदा को पानी इमरत रे
अरे, पानी इमरत, मैं तो तर गई बिना नौका–नाव
नरबदा अरे हो...

बम्बुलिया में नर्मदा का जो वर्णन मिलता है, अनगढ़ होते हुए भी किसी तराशे हुए गीत से अधिक भाव– की चमक रखता है। इस भाव–बोध के सम्मुख छंद, अल एवं गीत–विधान में रचे गए गीत भी बनावटी ही प्रतीत हैं।

नरबदा में रेता बहैं रे
अरे, रेता तौ बहैं, मैं तो जानूं बहैं मोरे पाप रे
नरबदा अरे हो...

जो आत्मीय हो, अपना हो उसकी हर बात अ लगती है, यह मानवीय प्रकृति है। नर्मदा को अपनी

सुनवा की विदा

— आर.बी. सिंह

(सुनवा की विदा कविता बुन्देली के बनाफरी रूप में कवि द्वारा लिखी गयी है। कवि ने रचना की पृष्ठभूमि में पहले अपनी बात रखकर पाठकों के समक्ष कविता की व्यंजना में वृद्धि की है – संपादक)

रचना के पहले रचना की बात –

भोजन के पहले भोजन की बात करने का स्वाद ही कुछ और होता है। इसी उद्देश्य से हम रचना के पहले रचना के प्रेम प्रसंग की बात कर रहे हैं।

हमारे भारतीय समाज और लोक संस्कृति में यह रीति चली आ रही है कि जाने वाले को कम से कम सात कदम चलकर विदा दें। यह सगुन माना जाता है। शादी के बाद लड़की को डोली में बिठाकर ससुराल भेजते हैं उसे भेजने सब उसके साथ गांव के गेवड़े तक जाते हैं। डोली में बैठने के पहले लड़की परिवार व मुहल्ले के सभी आत्मीयजनों से रोरोकर, आंसू बहा–बहाकर अपने बिछुड़ने का दुखड़ा बड़ी विह्वलता से प्रकट करती है। रोती–गाती वह शिकायत करती है कि वह इतनी उपेक्षित क्यों हो गई? इतनी अभागिन क्यों हो गई कि उसे इस प्रकार परदेश जहाँ उसकी ससुराल होगी– भेजा जा रहा है। सब इतने कठोर क्यों हो गए? यह दृश्य बड़ा करुणाजनक होता है। उस समय सभी की आँखें भर जाती हैं।

विदा करने के पहले उसकी मां, भाभी, सहेलियाँ उसका श्रृंगार कराती हैं। चटकीले रंग की चोली, जरी–गोटे का लहंगा सतरंगी चूनर, काली चूड़ियां पहनाई जाती हैं। काजल, बिन्दी, गहनों और विशेष चुटीले से उसे सजाया जाता है। सिन्दूर से मांग भरी जाती है। इसी करुणाजनक अवसर पर उस पर दिल लुटाने वाले छैल–छबीले विदाई समारोह में आँखें गीली किए नजरे बचाते डोली के चारों ओर दूर–दूर भौंरे की तरह मंडराते नजर आते हैं। ये गुपचुप बातें हैं।

ये रसिये शादी से पहले उस लड़की की जवानी को उभरते देख उसे तालाब, पनघट, हार–खेत, खलिहान, मन्दिरों पर छेड़ते, मौका पाकर प्रणय निवेदन करते हैं। अपनी वंशी के मादक स्वरों से उसका हृदय तरंगित करते हैं। फिर भी अपने लक्ष्य तक पहुँचने में असफल रहते हैं अब विदाई के वक्त इस मकसद से घूम रहे हैं कि उससे नजरें चार हों और वे अपने दिल की बातें उससे कहें। ईसुरी ने इस परिस्थिति का बड़ा सजीव एवं मार्मिक चित्रण किया है –

'चलती बेर नजर भर हेरौ मन भर जावै मोरौ,
मिला लेव आँखन से आँखें घूंघट तनक उगेरौ।।

मानने वाले ग्राम्यजन जब नर्मदा की रेत के लिए बिम्ब चुन सकते हैं, तो नर्मदा के घाट की सीढ़ियां भला कैसे अछूती रह सकती हैं?

नरबदा जू की लम्बी छिड़ियां रे
अरे, लम्बी छिड़ियां रे, गौरा रानी नहा रईं केश रे
नरबदा अरे हो...

पुण्य की प्रतीक नर्मदा में वही डूबते हैं जो पापी होते हैं और जो डूबते–डूबते बच जाते हैं, वे किसी न किसी पुण्य के अथवा सौभाग्य के सहारे ही बचते हैं। इस भाव को गीत में जिस सहजता के साथ पिरोया गया है वह बरबस ही हृदय को छू लेने में सक्षम है –

नरबदा में डूबत बची रे
अरे, डूबत तौ बची, पतरैयां बलम तोरे भाग रे
नरबदा अरे हो...

जो आत्मीय होता है उसका ही स्मरण किया जाता है, उसका ही पूजन किया जाता है, फिर माता का स्थान तो जीवन में सबसे उच्च रहता है, उसके चरणों में सब कुछ अर्पण कर देने की अभिलाषा अत्यंत स्वाभाविक है।

अतर की दो–दो सिसियां रे
दो–दो सिसियां रे, एक संझा चढ़ाऊँ एक भोर रे
नरबदा अरे हो...

बुन्देली लोकगीत बम्बुलिया में नर्मदा के प्रति प्रकट किया जाने वाला स्नेह, समर्पण एवं आत्मीयता संस्कृत के उस श्लोक का सहज ही स्मरण करा देता है जिसमें ईश्वर के लिए कहा गया है – "त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव...।"

संक्रांति के समय नर्मदा स्नान करने जाने वाले यात्री पीढ़ियों से बम्बुलिया के माध्यम से नर्मदा के प्रति अपनी भावांजलि अर्पित करते चले आ रहे हैं, इसका कारण यही है कि वे अपने बुन्देलखण्ड की प्रकृति को और इस प्रकृति की प्रतिनिधि नर्मदा को अपने परिवार के वरिष्ठ सदस्य के समान प्रिय मानते हैं अपना समझते हैं। अतः नर्मदा गीतों को अंतःकरण में उतारे बिना बम्बुलिया के मर्म की गहराई को नहीं जाना जा सकता है।

— एम.–१११, शांतिविहार, रजाखेड़ी, सागर ☐

टप–टप अँसुआ गिरत नैन से चितै–चितै मुख तोरौ,
ईसुर कात बिदा की बेरा होत विधाता डेरौ।।

जिस रचना पर हम विचार करेंगे उस रचना के सन्दर्भ में देखें। अवसर मिलते ही वे उस लड़की के समीप जाकर पूँछते हैं कि हम तुम्हारे मदभरे यौवन के याचक हैं। किस भरोसे जियें? अभी तक तो तुमसे कुछ मिला नहीं और तुम ससुराल चलदीं। तुम यह तो बतलाओ हमारे लिए क्या छोड़ कर जा रही हो जिसके सहारे हम अपने व्यथित प्रेमी हृदय को ढाढ़स बंधा सकें। इस सिलसिले में जो बात चली वह आगे रचना में दी गई है।

वे कहते हैं यह मन को रिझाने वाला श्रृंगार जो तुमने किया है – रंगीली सुआपंखी चूनर ओढ़ी है, लाल फूलों की छींटवाली जो अंगिया पहनी है जिसको देख दिलमें वासना की आग भड़कती है क्या यह हमारे लिए है? कटीली आँखों में जो गहरा काजल डाला है, जो सूने रास्ते छोड़े जा रही हो, ये माटी के घैला और रेशम की डोर जिन्हें लेकर तुम नित्य पानी भरने पनघट पर पहुँचती थीं, ये कटीले विरह के क्षण, ये तुम्हारे रोने से गिरे आँसुओं के हार, यह तुम्हारी यौवन की चम्पा की बगिया जो फूलने को मचल रही है, यह बेला के फूलों की गमकती रात क्या हमारे लिये है? यह पूनों के चन्दा की तरह खिला तुम्हारा यौवन कहाँ ढल जायेगा? यह कजरा की धार कहाँ बह जायेगी? किसके लिए तुम ताजिन्दगी विलाप करोगी? भरने के बाद तुम्हारे प्राण पखेरू कहां बसेंगे? क्या जलने के बाद तुम्हारी राख हमको गंगा में प्रवाहित करने को उपलब्ध होगी? कितने सारे प्रश्न इन प्रेमियों के हृदय में उठते हैं। हर प्रेमी अपना अलग प्रश्न है। हर प्रश्न का उत्तर वह एक–एक छन्द की अन्तिम दो पंक्तियों में देती है।

रचना सात छन्दों में है। सात छन्दों की प्रथम दो पंक्तियों में प्रश्न है अंतिम दो पंक्तियों में उसका उत्तर है। इस प्रकार सात कदम सात छन्दों में चलने में पूरे होते हैं और प्रेमकथा इन्हीं सात छन्दों के साथ पूरी होती है। रचना बनाफरी बुन्देली भाषा में है। जो महोबा हमीरपुर जिले के ग्राम्य अंचल में बोली जाती है।

बुन्देलखण्ड की क्या भारत की सभी लोकसंस्कृतियों की धरोहर है ऐसी प्रेम कथाएं। हीर–राँझा, सोहनी–महवाल, ढोला–मारू, सारंग–सारंगा, लैला–मजनूं, शीरी–फरिहाद जैसी प्रेम गाथाएँ इसी प्रकार जन्म लेती हैं और अमरता तक पहुँचती है। प्रेम और यौवन की तरंगों का क्या कहना? जब यौवन की नदियां सावन–भादौं का पानी पी उमड़ती है तो समाज की सारी मर्यादाएँ तोड़ बहती हैं और रेतीले प्यासे किनारे उसे बाहुओं में बाँधने को व्याकुल हो कहां–कहां तक नहीं भागते जाते? जब वह अपने प्रियतम सागर में आत्मसमर्पण करती है तो प्रेम के दीवाने किनारे रेत के दूहे बन अपनी खण्डित प्रेम कथा लिए मौन उसकी स्मृति में चिरकाल तक खड़े रहते हैं। जिन लोगों की जवानी ऐसे क्षणों से गुजरी है वे इस रचना की तीव्र अनुभूति से निश्चय संवेदित हो जायेंगे। कवि को उनके प्रति हार्दिक सहानुभूति है।

साहित्य की परम्परा में हम देखें तो ऐसे प्रेम प्रसंगों से सूरदास, घनानन्द से लेकर बुन्देलखण्ड के कवि ईसुरी तक जुड़े हैं। ईसुरी जिन्दगीभर रजउ के गीत गाते रहे –

इक दिन होत सबई कौ गौनो हौनों उर अनहौनो;
जाने परत सासुरे साँसऊँ बुरौ लगै चाय नौनों।

आइये अब उस रचना से रूबरू हो जिसकी बात अभी तक हमने की है उसका रसास्वादन करें –

कहे रँगलई सुआ पंखी चुनरिया?
कहे अँगिया मा फूले अगनियाँ फूल?
बीरन खाँ रंग लई सुआपंखी चुनरिया,
बलमा खाँ फूले अगनियाँ फूल।।१।।
केखाँ छोड़ी गोरी, सूनी रे डगरियाँ?
केपै घाले गोरी, कजरारे वान?
बाबुल खाँ छोड़ी सूने रे डगरियाँ,
सजना पै घाले कजरारे वान।।२।।
केखाँ दये गोरी माटी के घैला?
केखाँ दयी गोरी रेशम की डोर?
भाई खाँ दये रे माटी के घैला
भौजी खाँ दयी रेशम की डोर।।३।।
केखाँ बोई गोरी काँटन की बरियाँ?
केखाँ गूँथे गोरी अंसुवन के हार?
छैलन खाँ बोई रे काँटन की विरियाँ।
सखियन खाँ गूँथे अँसुवन के हार।।४।।
कहाँ फूलें गोरी चम्पा की बगिया?
कहाँ मँहकै गोरी बेला की रात?
ससुरे मा फूलै रे चम्पा की बगिया
सिजिया मा महकै रे बेला की रात।।५।।
कहाँ ढर जानै गोरी जोवन कौ चन्दा?
कहाँ बहजानै गोरी कजरा की धार?
पूतन मा ढर जानै जोवन कौ चन्दा,
अँचरा मा बह जानै कजरा की धार।।६।।
कहाँ बस जैहै गोरी प्रान चिरय्या?
कहाँ बह जैहै गोरी सुनवा की राख?
पीतम मा बस जैहै प्रान चिरय्या।
नदिया मां बह जैहै सुनवा की राख।।७।।

– रानी की बगिया, छतरपुर (म.प्र.)

बुन्देलखण्ड का एक अद्वितीय अभिशप्त प्रासाद नरसिंहमहल दतिया

— हरिविष्णु अवस्थी

बुन्देलखण्ड में दुर्ग, प्रासाद एवं विभिन्न आकार–प्रकार के स्थापत्य का शुभारम्भ ओरछा राज्य के संस्थापक रुद्र प्रताप (१५०१–३१ ई.) ने किया था। बेत्रवती के वनाच्छादित सुरक्षित ब्राँये सूड़ा पर वैशाख सुदी १३ संवत् १५८८ वि. को ओरछा दुर्ग का शिलान्यास कर ओरछा नगर की स्थापना की थी।[1] रुद्रप्रताप के पश्चात् राजा भारतीचन्द (१५३१–५४ ई.) ने अपने पिता द्वारा आरंभ की गई इस स्थापत्य परंपरा को आगे बढ़ाते हुए ओरछा के दुर्ग को पूर्ण कराया तथा दुर्ग का विशाल परकोटा, राजमंदिर, एवं रानी महल आदि का निर्माण कराया।



महाराजा वीर सिंह जू देव प्रथम
(१६०५–२७ ई.) ओरछा

भारतीचन्द के सहोदर राजा मधुकरशाह (१५५४–९२ ई.) ने इस स्थापित परंपरा अनुसार चतुर्भुज मंदिर राजमहल एवं उससे संलग्न दीवाने आम तथा अन्य कई स्मारकों का निर्माण कराया। राजा रामशाह (१५९२–१६०५ ई.) का शासनकाल मुगलसम्राट शाहजहां की वक्रदृष्टि, पारिवारिक कलह, बन्धु–विरोध के कारण निर्मित अराजकता की स्थिति में व्यतीत हुआ। फलस्वरूप रामशाह के राजकाल में कोई उल्लेखनीय निर्माण कार्य ओरछा नगर अथवा राज्य के अन्य किसी भाग में नहीं हुआ।

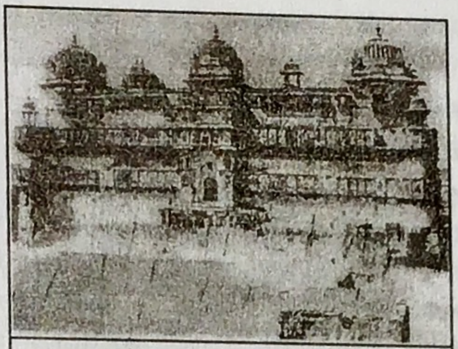
सन् १६०५ ई. में अकबर के निधन होने पर जहांगीर गद्दी पर बैठा। मुगल सम्राट जहाँगीर ने अपने मित्र, परमहितैषी बड़ौनी के जागीरदार तथा ओरछेश रामशाह के भाई वीरसिंह देव को ओरछा राज्य का अधिपति नियुक्त कर रामशाह को पदच्युत कर दिया। १६वीं १७वीं ई. में सुदूर दक्षिण भारत को छोड़कर शेष भारत में स्थापत्य की नई शैली विकसित हो चुकी थी। यह शैली हिन्दू एवं मुस्लिम स्थापत्य शैलियों का मिला जुला रूप था। विद्वानों ने इसे इंडो–इस्लामिक शैली के नाम से परिभाषित किया है।[2] इसमें कुछ परिवर्तन एवं परिवर्द्धन कर 'वीर सिंह जू देव प्रथम' (१६०५–२७ ई.) के शासनकाल में भवन निर्माण की एक नवीन शैली का जन्म हुआ था, जिसे कला मर्मज्ञों ने स्थापत्य की 'बुन्देली शैली' नाम दिया है। यद्यपि इस शैली में मुगलशैली, राजपूत शैली और कई छोटी स्थानीय शैलियों का मिश्रण था परन्तु बुन्देलखण्ड के निर्माताओं ने इस शैली में कुछ अनूठी विशेषताओं का समावेश कर दिया था जिसके कारण यह बिल्कुल अलग सी प्रतीत होने लगी थी।[3]

वीरसिंह जू देव प्रथम के शासन (१६०५–२७ ई.) में राज्य का सर्वांगीण विकास हुआ। इस अवधि में बुन्देला स्थापत्य शैली में निर्मित भव्य एवं विशाल राजप्रासाद वीरसिंह देव की कलाप्रियता के साक्षी हैं। चंदेलों के पश्चात् वीरसिंह देव ने बुन्देलखण्ड में महान् निर्माता के रूप में ख्याति अर्जित की थी।[4]

वीरसिंह जू देव के निर्माण उनके राज्य की सीमाओं तक ही सीमित नहीं थे। "Bir Singh was not only a great warrier but a mighty builder and has left many monuments of his activity in this direction as the great palace-forts at orchha and Datia, and the chaturbhuj tempole and many other edifices within and without the limits of central India testity."[5] कहा जाता है कि उन्होंने एक ही तिथि माघ वदी ५ संवत् १६७५ वि. में बावन इमारतों की नीव एक साथ डलवाई थी और ५२ तालाब भी बनवाये थे।[6] इनके अतिरिक्त और जो भी निर्माण कार्य उनके द्वारा कराये गये उनकी एक लम्बी सूची है। बुन्देली स्थापत्य शैली में निर्मित वीरसिंह देव की तीन कृतियाँ सर्वश्रेष्ठ मानी जाती हैं। पहली कृति के रूप में जनश्रुतियों में चर्चित केशवराय या केशवदेव का मंदिर। द्वितीय कृति के रूप में ओरछा में विद्यमान जहांगीर महल तथा तृतीयकृति दतिया का नरसिंह देव महल।

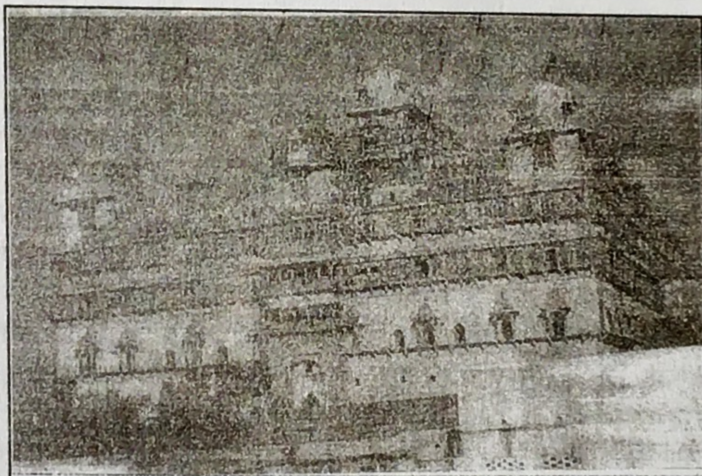
(१) श्रेष्ठतम कृति केशवराय मंदिर मथुरा — का निर्माण श्री कृष्ण की जन्मभूमि (जो कभी कंस के राज्य का कारागार था) के पवित्र स्थल पर कराया गया था। जनश्रुति के अनुसार केशवराय मंदिर की ऊँचाई २५० फुट थी। डॉ. भगवान दास गुप्त के अनुसार–वीर सिंह देव ने मथुरा का केशवराय का प्रसिद्ध मंदिर बनवाया था। इस मंदिर को औरंगजेब के राज्यकाल में तोड़कर मस्जिद में परिवर्तित कर दिया गया था। मासिर–इ–आलमगीरी और मासिर–उल–उमरा के लेखकों के अनुसार केशवराय का मंदिर ३३ लाख की लागत से बना था। इसकी सुन्दरता और मजबूती अद्भुत थी और इसमें सजावट एवं पच्चीकारी का काम बहुत ही उच्च कोटि का था। सम्राट शाहजहां के ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह ने इस मंदिर में पत्थर की

एक सुन्दर रेलिंग लगवाई थी; जिसे १६६६ ई. में मथुरा के फौजदार अब्दुन्नवी ने हटवा दिया था। धर्मान्ध औरंगजेब ने जनवरी १६७० में इस मंदिर को तोड़ कर मस्जिद बनाने का आदेश दिया। मंदिर को जमीदोज कर दिया गया और उसकी रत्नजड़ित मूर्तियों को लाकर आगरे की वेगमसाहिब की मस्जिद की सीढ़ियों में पद दलित होने के लिए लगा दिया गया।[7] इस प्रकार बुन्देला स्थापत्य की एक अनुपम कृति धर्मान्ध औरंगजेब की शनिदृष्टि का शिकार होकर सदैव के लिए अपनी स्मृतियाँ (अनुश्रुतियां) छोड़कर समाप्त हो गई।



जहांगीर महल, ओरछा, १७वीं सती ई.
(बुन्देल का पुरातत्व के सौजन्य से)

(२) द्वितीय कृति जहाँगीर महल ओरछा — के संबंध में है — Eastern states (Bundelkhand) Gazetteer में उल्लेख है कि — 'The Jahangir mahal so called from the emperor Jahangir having stayed in it during a visit to his friend Birsingh Dev, is a much finer building. Also built in reetangular form, it is relieved by a circular tower at each corner surmounted by a chhatri, while two lines of graceful balconies supported on brackets, mark the two central storeys. These balconies are closed in with the fine scereens of piereed stone work, Above the roof is crowned with eitht large fluted domes with ornamented balustrades. The whole building is magnificent in its combination of massive strength and delicate ornament, perhaps unsurpassed as a specimen of Hindu donrestic architecture.'[8] तीन मंजिली इस इमारत का मुख्य द्वार (सिंहपौर) पूर्व दिशा में बेत्रवती की ओर है। द्वार के दोनों ओर प्रस्तर के विशाल हाथी निर्मित है जो अपनी सूड में फूलों की माला तथा घंटी लिये हैं। ललाट बिम्ब (द्वार के ऊपर की चौखट) पर विघ्न विनाशक विनायक की मूर्ति है तथा उनके दोनों ओर वीणा–पाणि माता शारदा की मूर्ति चित्रित है। मुख्य द्वार से भवन के अन्दर जाने हेतु दोनों ओर दो गलियारे निर्मित हैं। यह भवन २२०x२२० फीट के वर्गाकार क्षेत्र में निर्मित है।



वीरसिंह देव महल दतिया, (दतिया गजेटियर के सौजन्य से)

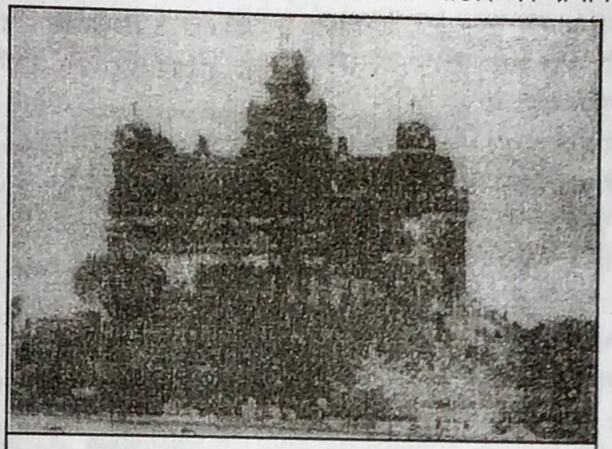
इस तीन मंजिले भवन का प्रथम तल (भौयरा) बन्द कहा जाता है उसमें एक सौ कमरे बने हुए हैं तथा ऊपर खण्ड में एक सौ छत्तीस कमरे हैं। बीचों बी में १२० फीट वर्गाकार आँगन है।[9] बाह दीवालों पर बने हुए चित्र धूमिल हो ग हैं। कुछ समय पूर्व ही इसी महल एक छोटा सा किन्तु महत्वपूर्ण पुरात संग्रहालय भी स्थापित हो गया है सामान्यतः दर्शनार्थी प्रासाद के पि भाग खिड़की से ही इसमें प्रवेश कर हैं।

(३) तृतीय कृति नरसिंह महल दति — इसे स्थानीय लोग पुराना महल विरसिंहदेव महल भी कहते हैं। मासिर–उल–उमरा में इस उल्लेख 'दतिया का राजमहल' के रूप में किया गया है। मह के निर्माण में ३५ लाख रुपये व्यय होने का भी उल्लेख इ किया गया है। इसके निर्मा में लगभग ९ वर्ष लगे इस महल का निर्माण उ स्थान पर कराया गया ज जहाँगीर के साथ वीरसिंह दे की दतिया में भेंट हुई थी

ऐसी जनश्रुति है कि स १६१४ ई. में मथुरा में कृ जन्मभूमि पर निर्मित केशवदे मंदिर में प्राणप्रतिष्ठा के स वीरसिंह देव ने विश्रांत मथुरा में इक्यासी मन स्व की तुला दी थी। मथुरा तुलादान कर जब वे वापिस ओरछा लौट रहे थे तब दति प्रवास के समय उनके मन में इसके निर्माण का विचार आ डॉ. एस.डी. त्रिपाठी के अनुसार "बुन्देल महाराज वीरसि कला एवं स्थापत्य के अपने इन प्रयासों से (अभिप्राय यह इसके पूर्व कराये गये निर्माणकार्यों से लेखक) संतुष्ट नहीं उन्होंने एक और वास्तु सम्बन्धी प्रयोग १६२० ई. के आस दतिया में एक भव्य महल बनवाकर पूरा किया। यह म जहाँगीर महल से थोड़ा छोटा है।[10]

कैसी विडम्बना है कि जो साकार वस्तु (प्रासाद) ह दृष्टि के सामने है उसके सम्बन्ध में हम यह निर्णय नहीं पाते कि प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर हो रहे प्रासाद में कि मंजिले हैं। ठाकुर लक्ष्मणसिंह गौर की दृष्टि से यह महल खण्डों का है[11] डॉ. रमेशचन्द्र श्रीवास्तव इसे सतखण्डा

हैं।[१२] डॉ. रामस्वरूप ढेंगुला भी इसे सातखण्ड का ही मानते हैं। डॉ. एस.डी.त्रिवेदी इसे पांच खण्ड का मानते हैं श्रीऋषि मोहन श्रीवास्तव भी इसे पांच खण्ड का ही मानते हैं।[१३] दतिया जिला गजेटियर के अनुसार "It is built in the form of a square, the monotony being relieved by four Octagonal towers one at each corner, and string courses of stone lattice work defining the fir storeys." Foot note - Local belief is that it has seven or nine storyes as Maharaja Bir Singh Deo was generally called Narsingh Deo by the mughal historians, of which only five are seen and the remain ing are underground.[14] वास्तविकता यही है कि यह प्रासाद पांच मंजिला ही है।


राज महल दतिया, १७वीं शती ई. (बुन्देलखण्ड का पुरातत्व के सौजन्य से)

महल दो सौ फीट लम्बाई–चौड़ाई की एक वर्गाकार इमारत है और इसके केन्द्रीय भाग की ऊँचाई लगभग एक सौ तीस फीट है। महल के निर्माण के लिए टीले के मध्यभाग में नीव की भित्तियों पर महराब और डाट बांधकर समतल कर निर्माण किया गया है। ऊपर के पांच खण्ड स्वास्तिक के मांगलिक चिन्ह के आधार पर दो सौ फुट वर्गाकार भूमि पर निर्मित है प्रत्येक खण्ड में चार चौके और मध्यभाग में मण्डप है। प्रथम खण्ड के धरातल पर भित्तियों का आकार दस फुट नौ इंच है। सर्वोच्च मण्डप के शिखर पर आसार संकुचित होकर चार फुट रह गया है।

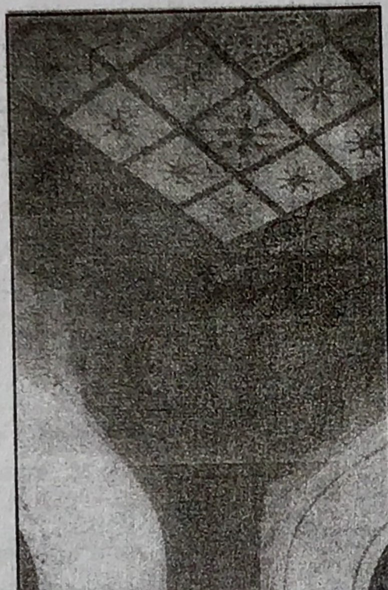
महल का प्रवेश द्वार कई मंजिला होने के कारण बड़ा भव्य दिखाई पड़ता है। जिसे सिंह पौर कहते हैं। अन्दर प्रवेश करते ही प्रत्येक खंड के केन्द्रीय भाग में दूसरे खण्ड के लिए आधार होता है। ये केन्द्रीय भाग चारों दिशाओं की समानान्तर रेखाओं में गैलरी द्वारा प्रकोष्ठों से जुड़े हुये हैं और इस प्रकार गैलरी द्वारा प्रत्येक खण्ड का आंगन चार भागों में बट जाता है। प्रत्येक कखण्ड के चारों ओर सुन्दर पान के आकार के कंगूरे और बीच–बीच में मंडप बने हुए हैं जो मुगल और बुन्देली शैली के मिलाप के प्रतीक हैं। प्रकोष्ठों की छतें कोनों में गोलाई लिए कटी हुई बड़ी सुन्दर लगती हैं। प्रत्येक कोण में आयताकार प्रशस्त कक्ष है। ऊपरी खण्डों में वर्गाकार अट्टालिकाओं के ऊपरी भागों पर अर्द्धकुम्भ की भांति गुम्मदें हैं। बीच बीच में कुंभी युक्त चंदोल जिन्हें बुन्देली भाषा में चौकीनुमा हौदा भी कहते हैं और वायु के समागम के लिए झंझरी है। महल के छज्जों का भार मयूर की कलगियां समाले हुये हैं। भित्तियों पर वर्षा की बोछार का प्रभाव न पड़े इसलिए सर्पाकार और गजसूंड युक्त टुडियों पर आकर्षक छज्जें लगाये गये हैं कमरों और चौकों के अर्न्तलम्ब के किनारे किनारे सुदृढ़ परछेवे तथा दुआरीदार औसारे हैं। बायी ओर पक्षद्वार से संलग्न वाजिशाला की दीर्घाकार भित्तियां अश्वारोहियों की साढ़े तीन सौ वर्ष से प्रतीक्षा करते हुए आज तक खड़ी हैं।[१५]

प्रासाद का चौथा खण्ड चित्रकारी से पूर्णत: सज्जित है। जो बुन्देली चित्रकला की श्रेष्ठता को प्रदर्शित करते हैं। इन चित्रों को बनाने में प्राकृतिक रंगों का ही प्रयोग किया गया है। जिनके प्रयोग से चित्रों की अद्‌भुत छटा दर्शक को बरवस अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। मण्डप स्तंभ भित्तियों आदि सभी पर चित्रांकन किया गया है। इसी खण्ड में किसी की एक 'मजार' तथा एक अखाड़ा बना हुआ है। कहते हैं कि विश्वप्रसिद्ध पहलवान गामा यहां आकर नमाज पढ़ते थे तथा कुश्ती का अपने शिष्यों के साथ अभ्यास करते थे। इसी खण्ड में एक स्थान को भूल–भुलैयाँ कहा जाता है।

भवन निर्माण में स्थानीय ग्रेनाइट पत्थर ईंट एवं चूने का प्रयोग हुआ है। किसी धातु अथवा लकड़ी का उपयोग इसमें नहीं किया। चंदोबा बांधने के लिए कतिपय लोहे के छल्लों (कड़े–करे) के अतिरिक्त प्रत्येक सात–सात सीढ़ियों के बाद विश्राम स्थल जैसी भी व्यवस्था है जिससे चढ़ने वाले अपनी थकान दूर कर सकें। किसी दरवाजे में फाटक (किवाड़) नहीं लगे हैं। भवन का एक भाग अपूर्ण सा है जिससे ऐसा आभास होता है कि इस भवन के हर दृष्टि से पूर्ण होने के पूर्व ही इसके निर्माता वीरसिंह जू देव स्वर्गवासी हो गये होंगे।

मध्यकाल में निर्मित बुन्देला स्थापत्य का यह अद्वितीय प्रासाद सन् १९२४ ई. तक उपेक्षित बना रहा। दतिया के नरेशों अथवा जनता ने कभी इसकी सुन्दरता, विशालता एवं भव्यता पर ध्यान नहीं दिया। दतिया गजेटियर के अनुसार 'Considerable damage done to it in 1925 by lightning, attracted the attention of Datia darbar. Efforts to repair and preserue it were started with help of grant-in-aid of the contral Archacology department.[16] इस प्रकार ठीक तीन सौ वर्षों बाद इस भव्य भवन की सुरक्षा पर ध्यान दिया गया।

अभिशप्त भवन — नरसिंह देव भवन में उसके निर्माण के बाद से किसी ने भी उसे अपना आवास नहीं बनाया। इतने विशालकाय भव्य सुसज्जित राज प्रासाद का सदैव रिक्त पड़ा रहना इसे अभिशाप नहीं तो और क्या कहा जायेगा। दिसम्बर सन् १९३५ में कर्नल स्लीमैन बुन्देलखण्ड में ठगों का दमन करने के सिलसिले में भ्रमण करते हुए दतिया पहुँचा था। इस राज प्रासाद को देखकर वह स्तब्ध रह गया। जब उसे यह ज्ञात हुआ कि इस प्रासाद में कोई नहीं रहता है। बनने के बाद से यह रिक्त पड़ा हुआ है तो उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। उसने जब एक राज्य कर्मचारी से इसका कारण जानना चाहा तो महाराजा के सेवक ने उत्तर दिया — "No Prince in these degenerate days could muster a family and court worthy of such a palace, the family and court of the largest of tham would, within the walls of such a building, feel as if they were in a desert. Such palaces were mode for princes of the older times, who were quite different being from those of the present day The noble palaces and temples which you around you, sir, mouldering in ruins, were built by princes who had beaten emperors in baottle, and whose-spirits still hover over and protect the place. Several times under the late disorders, which preceded your paramount rule in Hindustan when hostile forces assembled around us, and threatened our capital with destruction, lights and elephants innamerable were seen from the top of those battlements, passing and re-passing under the walls, ready to defend them had the enemy attempted an assault, and everybody knew that they were the spirits of men like Bir singh Dev and Hardaul Lala that had come to our aid and we never lost confidence.[17] इस प्रकार के अंध विश्वासों के चलते देश की स्वतंत्रता के पूर्व तक इस भव्य प्रासाद में रहने का कोई साहस नहीं जुटा सका।



वीरसिंह देव महल के खंभे में चित्रकला का एक दृश्य

सिन्धी शरणार्थियों की शरणस्थली — "During the fifties this building was occupied by the refugees from pakistan, who effected several alterations and additions to it. These accretions were dismantled when in about 1956-57 the refugees vacated the palace"[18] अपने निर्माण के सवा तीन सौ वर्षों तक रिक्त पड़े रहने पश्चात् सिन्धी शरणार्थियों ने इसे अपना आवास बनाकर सैकड़ों वर्षों से चले आ रहे अंधविश्वासों का समाप्त कर दिया।

इस अद्वितीय भवन के सम्बन्ध में डॉ. वासुदेवश[रण] अग्रवाल ने लिखा कि "दतिया में सारे भारत का तीर्थ ओ[र] के बुन्देला महाराज वीरसिंह देव का सतखंड़ा महल है[।] ईस्टर्न स्टेट गजेटियर के अनुसार Th[e] palace is one of the finest examples [of] domestic architecture in India.[20] पर्सी ब्रा[उन] के अनुसार — 'By this time Bunde[la] Rajas had became paramount is cen[tral] India, and BirSingh represented [the] dynasty at the height of its power, as sho[wn] by this magnificent architectu[ral] conception, which adequately illustra[tes] the style.[21]

सैकड़ों वर्षों से उपेक्षित रहा यह अद्वि[तीय] अभिशप्त राजप्रासाद नरसिंहमह[ल] मध्यप्रदेशीय मानचित्र में ही नहीं भारत[ीय] पर्यटकीय मानचित्र में अपना महत्व[पूर्ण] स्थान रखता है। देश–विदेश के स[भी] पर्यटक इसकी भव्यता एवं विशिष्ट 'बुन्[देली] स्थापत्य' कला का अवलोकन करने हेतु प्रतिवर्ष दतिया आ[ते] रहते हैं।

— अवस्थी चौक, किले का मैदान, टीकमगढ़, म.प्र.

संदर्भ ग्रंथ सूची —

१. डॉ. के.पी. त्रिपाठी—बुन्देलखण्ड का बृहद इतिहास पृ ३६

२. ओरछा के स्मारक — पुरातत्व एवं अभिलेखागार संग्रहालय संचालनालय म.प्र.

३. डॉ. रामस्वरूप ढेंगुला — बुन्देलखण्ड का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक अनु[शीलन] पृ. १५

४. डॉ. बी.डी. गुप्ता टीकमगढ़ दर्शन पृ. ३३

5. Eastern states (Bundelkhand) Gazetteer. page23

६. पं. कृष्णदास (कृष्णकवि) बुन्देलखण्ड का इतिहास ओरछा खण्ड पृ. [illegible]

७. डॉ. बी.डी. गुप्ता — टीकमगढ़ दर्शन पृ. ३४

8. Eastern states Gazetteer p. 81-82

९. डॉ. एस.डी. त्रिवेदी, बुन्देलखण्ड का पुरातत्व पृ. ३९–४०

१०. वही पृ. ४०

११. ठाकुर लक्ष्मण सिंह — ओरछा का इतिहास पृ. ८१

१२. डॉ. रमेश चन्द्र श्रीवास्तव — बुन्देलखण्ड साहित्यिक ऐतिहासक [illegible] वैभव पृ. २३७

१३. ऋषि मोहन श्रीवास्तव — बुन्देलखण्ड विविध संदर्भ पं. कृष्ण किशो[र] अभिनंदन ग्रंथ पृ. ३१६

14. Datia Gazetteer p. 303

१५. डॉ. रामस्वरूप ढेंगुला बुन्देलखण्ड का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक अ[नुशीलन] पृ. १५४–५५

16. Datia Gazetteer p. 304

17. Colonel Sleeman - Rambles and Recollections p. 287-88

18. Datia Gazetteer p. 304

१९. डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल — कला और संस्कृति पृ. २९५

20. Eastern states (Bundel Khand) Gazetteer p. 127

21. Percy Brown-Indian Architecture (Islamic Period) Vedition p. [illegible]

मदन वर्मा और महोबा

— कृष्ण किशोर द्विवेदी

चन्देल नरेशों की परम्परा में महाराज मदन वर्मा का राज्यकाल चन्देल राज्य का स्वर्णकाल कहा जाता है। ग्यारहवीं शताब्दी का अन्तिम भाग एवं बारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध मदन वर्मा का शासन काल चन्देल राज्य का चरम उत्कर्ष और वैभव का काल माना जाता है। वे कालंजराधिपति थे किन्तु राजधानी महोबा थी। मदनवर्मा के शासन के अंतिम काल संभवतः ११५० ए.डी. में महोबा पर गुजरात के सिद्धराजा जयसिंह ने आक्रमण किया और इतिहास की पोथियों के अनुसार मदनवर्मा को पराजित किया और सिद्ध राज के एक दरबारी कवि के अनुसार सिद्धराज ने मदनवर्मा से ९१७ करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ वसूल कर उसके अभिमान को चूर कर दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि सिद्ध राज ने उसके राज्य पर अधिकार नहीं किया। केवल लूट खसोट से ही वह सन्तुष्ट हो गया। इसी को उसकी विजय कह दिया गया। परन्तु सिद्धराज के इस अभियान के विषय में गुजरात के, यानी सिद्धराज के ही राज्य के एक जैन (श्वेताम्बर) मुनि जिन मण्डन सूरि ने कुमार पाल प्रबन्ध' में जो विवरण दिया है, उसमें मान मर्दन की बात तो मिथ्या सिद्ध होती ही है साथ ही मदन वर्मा का विराट् और भव्य व्यक्तित्व, उसकी उदारता, चन्देल राज्य की विपुल वैभव सम्पन्नता के साथ ही उसकी राजधानी महोबा का एक भव्य शब्द चित्र भी कल्पना के नेत्रों के आगे साकार हो उठता है। मुनि जिन मण्डल का समय पीटरसन ने १४३५ ए.डी. निर्धारित किया है। जिन मण्डन ने गुजरात के अन्य जैन पण्डितों—मेरुतुंग (प्रबन्ध चिन्तामणिकार) आदि की परंपरा में यह वृत्तान्त संस्कृत (पाश्चात्य विद्वानों के शब्दों में Highbrid sanskrit) में लिखा है। इसमें अनेक देशी शब्दों एवं क्रियापदो का प्रयोग किया है — उदाहरण के लिए 'कवाड़ी' (आत्यन्त आधुनिक अर्थ में) 'रुल्यते' (जंगल झाड़ियों में भटकने के अर्थ में) इसकी तुलना हम बुन्देली के रूलते फिरना से कर सकते हैं। बस इसी परिचयात्मक भूमिका के साथ आचार्य जिन मण्डन के प्रबन्ध का अनुवाद प्रस्तुत है। प्रबन्ध का यह शाब्दिक अनुवाद है। केवल कोष्टकों के शब्द स्पष्टीकरण के लिए जोड़ दिये हैं।

''(किसी समय सिद्धराजा की) सभा में (किसी) परदेसी भाट ने कहा — आहा सिद्धराज की सभा मदनवर्मा की (सभा) के समान मन में विस्मय पैदा करती है? भाट ने कहा — राजन् यहां से पूर्व दिशा में महोबक नामक नगर है। वहाँ के राजा श्रीमदनवर्मा बुद्धिमान, त्यागी, भोगी, धार्मिक और राजनीतिज्ञ हैं। उन राजा की राजधानी (नगरी) का हजारों वार देख कर भी कोई (पूरा) वर्णन नहीं कर सकता। यदि मेरे कथन पर विश्वास न हो तो किसी समझदार मंत्री को (वहां) भेजा जाय। वह (स्वयं) देख कर महाराज से निवेदन करें।'' (ऐसा) सुनकर मंत्री को भेज दिया। (उस) भाट के साथ छः महिने तक (महोबा) का अवलोकन कर लौटकर मंत्री ने (सिद्धराज) से निवेदन किया। 'श्रीमहाराज, आप की आज्ञा से हम लोग चलकर वहाँ बसन्तोत्सव (होली) पर वहाँ पहुंचे। वहाँ वसन्तोत्सव पर बसन्त, हिन्दोल आदि रागों में गीत गाये जा रहे थे। दिव्य श्रृंगार किये हुए नारियाँ घूम रहीं थीं। (रूप से) कामदेव का भ्रम पैदा करते हुए लाखों युवक (नगर) की शोभा बढ़ा रहे थे। हर गलियों में यक्षकर्दम (एक प्रकार का सुगन्धित यौगिक) छिड़का जा रहा था। हर महल में संगीतोत्सव हो रहे थे। प्रत्येक देवालय (समारोह के साथ) पूजन—अर्चन हो रहा था। प्रत्येक घर उत्तम भोजनों की तैयारी हो रही थी। राजा के अन्नसत्र में (सार्वजनिक भोजनालय में) भात का निकाला हुआ मांड (जमीन पर) नहीं बहाया जाता था। किन्तु गहरे गड्डे खोदकर भर दिया जाता था। यदि (उसको) खुला बहा दिया जाता तो उसमें सजावजा हाथी डूब जाता। नगर में राजा के घुड़सवार लोगों को पान के बीड़े बाँटते घूम रहे थे। (वहाँ) कपूर के चूरे से धुलेंडी का उत्सव मनाया जा रहा था। (वहाँ) रात में दुकानदार अपनी दुकानों को बन्द नहीं करते, खुला ही छोड़ देते हैं और सबेरे आकर (फिर) बैठ जाते हैं। ऐसा ही वहां चलन है। (वहां लोगों के लिए) धन्धा तो दिखावा भर है। क्योंकि उसके बिना भी उनकी सम्पन्नता में कोई कमी नहीं रहती। राजा को मैं नहीं देख पाया। लेकिन सुना कि वह नारीकुंजर (हथनियों से घिरे हाथी के समान सुन्दरियों से घिरा) राजदरबार में कभी नहीं बैठता। केवल हास विलास में ही साक्षात् इन्द्र के समान निमग्न रहता है।''

ऐसी मंत्री की बात सुनकर अगणित सेना साथ लेकर सिद्धराज महोबा की ओर चल पड़ा। और महोबा से आठकोश दूर पड़ाव डाल लिया। देश में (राज्य की प्रजा में) घबराहट फैल गई। महोबा नगर की निश्चिन्तता भी भंग हो गई। (तव) दिव्य उद्यान में स्थित हजारों सुन्दरियों से घिरे राजा से मुख्य अमात्यों से निवेदन किया — ''प्रभु गुजरात का सिद्धराज नगर के निकट आ पहुँचा है। उसे कैसे लौटाया जाए।'' मदनवर्मा ने मुसका कर पूछा — ''यह वही सिद्धराज है न, जो पिछले बारह वर्षों से धरती लड़ता फिरता है? आप लोग उस कबाड़ी राजा

से कहो यदि (तुम) हमारी भूमि लेना चाहते हो तो हम युद्ध करेंगे। किन्तु यदि तुम धन से सन्तुष्ट होते हो तो धन लो। (और जाओ)। तब वह तुच्छ व्यक्ति जो (धन) मागे वह दे देना।

धन देने से हमारा कुछ नहीं बिगड़ता। और धन पाने के आकाश पाताल एक करता हुआ वह वेचारा भी जी जाए'' राजा की बात को सुनकर मंत्री उस जगह (सिद्धराज के पड़ाव) गये। तब सिद्धराज ने मंत्रियों से कहलाया कि जुर्माना भरो। मंत्रियों ने कहा ''हमने महाराज मदन वर्मा से आप के आने की खबद दे दी है। हमारे स्वामी ने कहा है कि उस कबाड़ी राजा को धन देकर सन्तुष्ट करो।'' सिद्धराज मदनवर्मा की इस लीला से विस्मित हुआ। उसने सोने की १७ करोड़ मुद्राएं मंत्रियों से मांगी। मंत्रियों तत्काल (स्वर्णमुद्राएं) दे दीं। तब राज्य में शान्ति लौट आई (परन्तु सिद्धराज ने अपना पड़ाव डाले रखा) तब मंत्रियों ने पूछा – 'आप लौटते क्यों नहीं?' सिद्धराज ने कहा – ''मंत्रियों, मैं आपके लीलानिधि स्वामी को देखना चाहता हूँ। मंत्रियों ने मदनवर्मा से निवेदन किया। हमने उस धन लोभी राजा को सन्तुष्ट कर दिया है पर वह कहता है कि हम उन राजाधिराज के दर्शन करना चाहते हैं।'' तब मदनवर्मा ने कहा – ''आ जाए वह'' तब पूरी सेवा को पड़ाव पर छोड़कर थोड़े सैनिकों के साथ वह उद्यान तक आया, जहाँ ऊँचे परकोटे से घिरेमहल में मदनवर्मा निवास करता था। परकोटे के बाहर मदनवर्मा के लाखों सैनिक थे। महल के भीतर जाने के मार्ग में ज्योंही उसने प्रवेश किया तो द्वार रक्षकों ने सिद्धराज से कहा – ''आप केवल चार व्यक्तियों के साथ भीतर पधारें'' उसी के अनुसार जब सिद्धराज ने उद्यान में प्रवेश किया तो उसने ऐसे सात द्वार पार किये जिन पर सोने के बन्दनवार लगे थे। वहां उसने चांदी से मढ़ी सीढ़ियों वाली वावड़ियां देखीं। अनेक देशों की भाषा बोलने और वेशभूषा धारण करने वाली असीम सौन्दर्य धारण करने वाली स्त्रियां देखीं। (वहां) कहीं पर कलाकारों की मंडली पणव (एक प्रकार का तालवाद्य) वंशी वीन और मृदंग बजाने में लगे थे। कहीं गीत सुनाई पड़ रहे थे। वह बगीचा इन्द्र के नन्दन वन से सुन्दर था। कहीं हंस सारस आदि पक्षी क्रीड़ा कर रहे थे। कहीं शीतलता के साधन संजोये थे। कहीं केले के पत्ते के समान मुलायम वस्त्रों के ढेर लगे थे। कहीं काम को बढ़ाने वाले अंगराग रखे थे। कहीं बड़े बड़े फूलों के गुलदस्ते सजे थे। इस प्रकार के अनेकानेक सुन्दर दृश्यों को देखता जब वह आगे बढ़ रहा था तो अचानक उसने अपने सामने साक्षात् कामदेव के समान सुन्दर युवावस्था वाले मदन वर्मा को देखा। अनेक मणियों और मोती जड़े आभूषणों से उनके अंग सुशोभित थे। सभी शुभ लक्षणों से युक्त उनके शरीर की कांति सुवर्ण के समान थी। उसकी आवाज मीठी, आंखों का रंग रक्त कमल के समान था। उसकी देहयष्टि लम्बी और पुष्ट थी। नासिका ऊँची थी। मदनवर्मा ने सिद्धराज की सम्मुख आया देख सिंहासन त्याग आगे बढ़कर उसको ग[illegible] लगाया। फिर स्वर्ण सिंहासन पर बैठाकर मदनवर्मा ने कहा – ''सिद्धराज, आज हमारे पुण्यों का उदय हुआ कि तुम [illegible] अतिथि हुए'' सिद्धबाबा बोला ''महाराज! आपकी यह आप[illegible] मुंह देखी बात तो है झूँठी। और जो अपने मंत्रियों के आगे मु[illegible] कबाड़ी कहा, वही सच है।'' यह सुनकर मदनवर्मा हंसने लो[illegible] पूछा – ''राजन आपसे किसने कहा।'' सिद्धराज ने उत्तर दि[illegible] ''आपके मंत्रियों ने''। आखिर मेरी निन्दा करने में आपको क्[illegible] अभिप्राय था?'' तब मदनवर्मा ने (गम्भीरतापूर्वक) कहा – राजन् यह तो कलिकाल है। आयु बहुत थोड़ी। राज्यलक्ष्मी भ[illegible] सीमित। सेना की शक्ति भी तुच्छ। इतने पर भी अनेक पुण्[illegible] के फल स्वरूप राज्य मिल पाता है। उसे पाकर भी भोगा नह[illegible] देश–परदेश से रुलते फिरे तो यह कवाड़ीपन नहीं तो क्या है[illegible] तब सिद्धराज ने कहा ''महाराज यह सत्य है आप धन्य हैं [illegible] इतने सुख के भागी हैं आप को देख मेरा तो जीवन सफल ह[illegible] गया। आप चिरकाल राज्य भोगो।'' ऐसा कह सिद्धराज चुप ह[illegible] गया। तब मदनवर्मा ने उसे अपने देवता का स्थान औ[illegible] कोशागार दिखाया। दोनों में अत्यधिक प्रेम हो गया। त[illegible] मदनवर्मा ने सिद्ध राज्य को १२० (एक सौ बीस) वाहन औ[illegible] अनेक व्यक्तिगत सेवक भेंट दिये। तब सिद्धराज, प्रभास प[illegible] को सदलवल चला। मदनवर्मा ने वाहन आदि बड़े जतन [illegible] पाले गये थे अत: मार्ग के कष्ट में आधे नष्ट हो गये, शे[illegible] पट्टन पहुंच पाये। तब सिद्धराज के कबिने उसके यश का [illegible] वर्णन किया –

महोवक पुराधीशात् जितात् मदनवर्मण:।
कोटी: षण्णवती: हेम्नां य स्तन्मान मिवाददे॥

(अर्थात् – महोवाधीश मदनवर्मा को जीतकर १७ करोड़ स्व[illegible] मुद्राएं लीं, मानों उसका सारा मान ही छीन लिया)

अन्त में लेखक की ओर से पाठकों से निवेदन है कि इतिह[illegible] की पोथियों में इसे जीत ही लिखा है। राजकवि भी जीत [illegible] बात कहेगा ही। परन्तु सिद्धराज के देश के वासी द्वारा घटना [illegible] २०० वर्ष अंकित यह विवरण क्या कहता है, इसका निर्[illegible] पाठक स्वयं करें। वैसे हार–जीत का निर्णय करना तो ए[illegible] प्रकार की पहेली है वास्तविक बात तो यह है कि यह चन्दे[illegible] कालीन बुन्देलखण्ड की श्रीसमृद्धि की एक दस्तावेजी आख्यायि[illegible] है। हो सकता है कि इस कहानी में कुछ आलंकारिक अतिश्योक्ति [illegible] हो। ऐसा भी लोक विश्वास है कि चन्देलों के पास पारसम[illegible] थी। शायद उनकी अत्यधिक समृद्धि को देखकर ही लोगों [illegible] ऐसी धारणा बनी हो। परन्तु चन्देलों के राज्य की सुद[illegible] अर्थव्यवस्था उनकी समृद्धि का मुख्य कारण थी, जिसके जी[illegible] जागते नमूने प्रदेश के गाँव–गाँव में बनवाये चन्देली तालाब [illegible] जिनसे बुन्देलखण्ड की ऊबड़–खाबड़ धरती शताब्दियों [illegible] शस्यश्यामला है और आज भी इनसे हजारों एकड़ भूमि [illegible]

लुप्त होते बुंदेली शब्द

(गतांक से आगे) — सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष'

(विभिन्न दबावों के चलते आज विश्व में लोकभाषाओं, लोकसंस्कृतियों, लोकाचारों और लोकमूल्यों के समक्ष उनके अस्तित्व का प्रश्न खड़ा हो गया है। भूमण्डलीकरण के प्रभाव से आज लोक भाषाओं के कई शब्द विलुप्त हो रहे हैं इसके साथ कई आवश्यकताएं भी खत्म होने से उनसे संबंधित शब्द भी समाज मे चलन से बाहर हैं जिससे उनके सामने भी जीवन का प्रश्न उत्पन्न हो गया है। बुन्देली की शब्दावली में भी ऐसे शब्दों की संख्या बहुतायत हैं, जो आज चलन में सीमित हो रहे हैं। ऐसे शब्दों को संकलित करने का काम कवि श्री सुरेन्द्र शर्मा'शिरीष' कर रहे हैं। विगत वर्ष इन्होंने काफी शब्द 'बसंत' में प्रकाशित किये थे। इस वर्ष भी कुछ शब्द यहां प्रस्तुत हैं आशा है कि भविष्य में भी वह भाषा के संरक्षण का कार्य सतत जारी रखेंगे — सम्पादक)

अलकतरा—डामर
अलफा — कुर्ता
अरुवा — उल्लू पक्षी
अड़बंगौ — ऊटपटांग
अटालौ — अटारी के ऊपर की छत/भंडार
अटे परे — भरे हए
अतकारौ — तौल या नाप से अधिक
अँदरसुट्ट — अनायास प्राप्ति
अटकरपेंड़ौ — अनुभव
अवाँइं तवाँई — हवाई बातें
अंदरा—अंदरू — अंधा—अंधी
अंगड़—खंगड़ — सभी तरह का सामान
असलो—बसलो — गृहस्ती का सब सामान
अब्बई — शीघ्र
अटकर पंचें — अनुमान से
अचक — लज्जा
अंत—पंत — अन्यत्र
अड़ुवा भाँवौ — बात घुमाना
अंत गांव — दूसरे गांव
आन गांव — दूसरा गांव
अनी — लड़ाई

अंगारूँ — आगे, भविष्य
अटाबौ — स्पर्श से होने से कुछ होने की अनुभूति
अक्कल बहार — बैजन्तीफूल
अगतां से — पूर्व से
अनोई — कर्मशील
आड़मर्याद — लाज, शर्म, मर्यादा
अरोरवौ — छांटना
अरोरा के — छांटे हुये
अटक्कें — जान बूझ के
अटकाबौ — किवाड़ बंद करना/अवरोध करना
अपुन—तुपुन — हम तुम
अटर — उलझाऊ कार्य
अनस — संकोच
अट्टकोसट्ट — ऊलजलूल
अरौ — शैतानी, उपद्रव
अगोटबौ — कब्जे में करना
अलच्छ — कलंक
अंदयाई — सुबेरे
अंगा पिच्छू — आगे पीछे
अछुद्दर — पूजा के बाद संकल्प मयदान

अट्टाचड़ी — होड़
अनडौलो — ऊटपटांग
अक्कबक्क — होशहवास
अट्ट कौ मूसर — ऊल जलूल
अलरबलर — भोज्यं अभोज्य सब पदार्थ
अलायबलाय — विघ्न बाधा
आग लूगर — सभी तरह के खाद्य पदार्थ/भोजन योग्य और अयोग्य भी
अकबकाई — ऊब
अकबकाबौ — घबरा जाना
आयेबांये — निरर्थक
आननफानन — तुरन्त
अजा आजी — दादा दादी
आसों — इस वर्ष
पर — बीते वर्ष, अगले वर्ष
आपौं — तैस, होश
आंसबौ — बुरा लगना
आबर जाबर — कूड़ा करकट
आधान — आश्रय
आमछू — गायब होना
आस औलाद — बाल बच्चे
आलो—बालो — बच्चों का खेल

सिंचाई होती है। इन में संग्रहीत जल भूमिगत चल के स्तर को ऊँचा रखकर कुओं में भी हल की उपलब्धता बढ़ाकर कृषि में परोक्ष सहयोग करते हैं। जतारा और अहार का विशाल मदन सागर तो मदन वर्मा की कीर्ति का सागर है।

कृषि ही उस समय की अर्थ व्यवस्था की रीढ़ है। जिस राज्य ने कृषि की उन्नति के इतने उपाय किये हों, उसकी ऐसी समृद्धि होना असंभव नहीं। इसके अतिरिक्त खजुराहो का मन्दिर—संकुल, जो विश्वप्रसिद्ध भव्य, कलात्मक और स्थापत्य का अद्‌भुत नमूना है तथा अन्यत्र बनवाये गये दुर्ग, मन्दिर बावड़ियां आदि कोई टुटपुंजियां राजा तो बनवा ही नहीं सकता था। यह तो एक स्थायी सुदृढ़ और समृद्ध राजवंश का ही कार्य हो सकता है

— बड़ापुल, टीकमगढ़ म.प्र. □

अटकन चटकन – शिशुओं का खेल
आड़िया – बेंड़ा, किवाड़ों के पीछे सुरक्षा हेतु लगायी जाने वाली लकड़ी
आबड़ – सामने आना
इकड़ा – अकेलापन पसन्द करने वाला
इकड़ दुकड़ – ऊटपटांग बकना
ईंटौरा – ईंट का या गुम्मा का बड़ा टुकड़ा
इकारी – दुबरी
इकारौ – दुरबल
इठक्कौ – एक साथ
इखट्टौ – एकत्र
इकमिल – मिला हुआ
इकजाई – एक बार में
इक्कर – एक ओर झुकी/झुका
ईतरां – इस प्रकार से
ई – इस
उरचट्टौ – छेड़ना, शैतानी हेतु उकसाना
उलात – शीघ्रता, जल्दबाजी
उमजबौ – मन मे आया
उकलाबौ – व्याकुलता
उसेबौ – उबालना
उपतकैं – अपने आप, बिना प्रेरित किये
उरझंटा – झगड़ने वाला
उस्काफुस्की – हिलना डुलना
उरानौ – उलाहना
उन्ना – कपड़ा
उन्नन सें – स्त्रियों की मासिक धर्म अवधि
उरीलबौ – बाल सुलझाकर कंघी करना
उदन – तेज हवा में फसल सूखना
उल्टभदेकी – अन्य पर किया प्रहार स्वयं पर हो जाना।
उपटयाबौ – निशान चोट का दिखना।
उपनय – नंगे पैर।
उरैन – दरबाजे बाहर जमीन पर गोबर व मिट्टी की लिपाई पुताई।
उगबौ – उगना
उट्टी – बोलचाल तोड़ना
उठाबैठी – सम्पर्क
ऊकोदीं – उस तरफ, दूसरी ओर
ऊंग – नींद
ऐंरन – स्त्रियों का कान का आभूषण

ऐंड़बौ – ऐंठना, ताव दिखाना
ऐंगर – समीप
औंदा – उतराने वाला खपरा
औंटी – काढ़ा, क्वाथ
औंछबौ – कंघी करना
और तरां – दूसरे प्रकार से
औलट – परोक्ष में, ओट में
कुबड़ाई – बुराई करना
कारोंच – कालिमा, बदनामी, कलंक
किवैया – कहने वाला
कुरका – टुकड़ा
कोंने आँतर – कहीं
कुल्ल बिलात – बहुत ज्यादा
कैनों – अंजुरी भर गल्ला
किकोरबौ – सिकोड़ना
कुड़चन – घृणित कार्य
कुड़पनया – घृणित या वर्जित काम करने वाला
कुड़पनयाऊ – घृणित या वर्जित काम करने वाली
कारेकोसन – बहुत दूर
कुची – कुंजी, चाबी
करौंटा – करवट
कोती – बदले में
कुलटइयाँ – कुलाट लगाना
किच्चा पिच्चा – बाल बच्चे
कनख्याबौ – कनखियों से देखना
कुटोंय – पिटने लायक
कन्नारी – खूब काम करने वाली महिला
कनारी – नरा, नवजात की नाभि से जुड़ी नली
कुजानें – अन्जान होना
कानों – कब तक, एक आंख का
कांलौ – कब तक
कुतका – अंगूठा
कचयावौ – मन हारना
किलबिलौआ – शोरगुल
कत्तीके – जी भर कर
कनांत – सण्डासघर
खखेटबौ – पीछा कर के भगाना
खोंड़ा – भूमिगत स्थान अनाज रखने का
खोंटबौ – फुनगी तोड़ना
खुन्नस – चिढ़, ईर्ष्या

खपना – जहां पैर धसे
खबना – खजरी के पत्ते
खोंखयाबौ – चिढ़ चिढ़ाना
खुतकैलयाऊ – जिस पर खुदे होने के निशान हो
खिजबौ – घिसने से घटता जाना
खलबलाटौ – शोरगुल
खटाबौ – टिकाऊपन
गाबौ – हथेली का अंगूठा के पास का अंग, वृक्ष के तने का मध्य भाग, गायन
गिनागुथी – गिनती करना
गतकौ – घूंसा
गुनिया – झाड़फूंक करने वाला
गंठ्यावन – दण्ड, आर्थिक बोझ
गोली गट्टी – औषधि
घरौंट – घर का संबंधी, नजदीकी
घरीस्यात – विशेष समय
चिनार – पहचान
चिनारी – निशानी
चूंचपाट – शोर, बोलना
चकचोंदयाबौ – भ्रम में पड़ना
जरीं बरीं – खरी खोटी
फिन कें – फिर से

—शुक्लाना मोहल्ला, छतरपुर (म.प्र.) □

लघुकथा

अर्थ

नये अफसर ने बाबू सें कई – 'देखौ हमाये समय में रिसवत लेवौ और देबौ दोऊ पाप हैं।'

बाबूजी ने लम्बी जम्हाई लई और मनईमन कई – 'रिसवत लेबी तौ, पै देबौ पाप है।'

सहारौ

कक्का जू जौन लट्ठ के लानें जिन्दगी भर जाने जात रये। ओई लट्ठ के सहारें आजकल चलफिर रये।

— निहाल अहमद सिद्दीकी, छतरपुर

बुन्देली उत्सव 2002 में पधारे सभी कलाकारों का
हम हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

एस.पी. होम्योपैथिक मेडिकल कॉलेज एण्ड हास्पिटल, छतरपुर (म.प्र.)

●

चिकित्सा शिक्षा विभाग म.प्र. शासन, केन्द्रीय होम्योपेथी परिषद, नई दिल्ली, डॉ. हरि सिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर द्वारा मान्यता प्राप्त बी.एच.एम.एस. डिग्री कोर्स का संचालन।

●

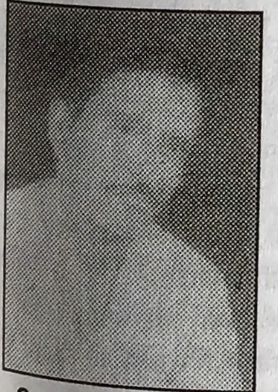
योग्य एवं अनुभवी शिक्षकों द्वारा शिक्षण व प्रशिक्षण।

●

आधुनिक उपकरणों से सुसज्जित प्रयोगशालायें तथा ऑपरेशन थियेटर।

●

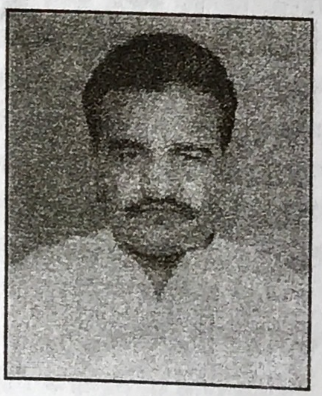
होम्योपैथिक चिकित्सा के द्वारा जन सेवा में समर्पित



हीरा सिंह बुन्देला
अध्यक्ष

लखन लाल दुबे
कोषाध्यक्ष

डॉ. के.एन. यादव
प्राचार्य



मन्नूलाल बेलदार
सचिव

बाबू गुलाबराय का बुंदेलखण्ड प्रवास

— श्रीनिवास शुक्ल

सन् १९१३ की बात है। बाबू गुलाबराय ने प्रयाग विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र में एम.ए. साथ ही एल—एल.बी की उपाधि प्राप्त कर ली थी। यद्यपि एक कालेज में एक वर्ष प्रोफेसरी करके उन्होंने अपना प्रभाव भरपूर जमा लिया था और उससे उनके पैर उखाड़ने वाला कोई नहीं था किन्तु उन्हीं का मन अन्य नौकरी की खोज में विचरता रहा। अचानक 'पायनियर' समाचार पत्र में एक विज्ञापन पर आंख टिक गई। उसमें छतरपुर राज्य के लिये दर्शन शास्त्र के ऐसे अध्यापक की मांग थी जो पूर्वीय और पश्चिमी दर्शन में दक्ष हो। मांग मन को भा गई और उन्होंने चलते चलाते आवेदन—पत्र भेज दिया। आवेदन पत्र देकर भूल भी गये कि एक माह पश्चात् छतरपुर राज्य के प्राइवेट सेक्रेटरी का पत्र मिला कि महाराजा साहब उनसे मिलने के लिये उत्सुक हैं। वे छतरपुर पहुंच गये। महाराजा साहब के सामने उपस्थित किये गये। बड़ी प्रसन्नता और कृपापूर्ण मुद्रा में महाराजा साहब ने उनका स्वागत किया और तपाक् से एक प्रश्न दे मारा ''क्या हर्बर्ट स्पेंसर का अध्ययन किया है? पं. बाबू गुलाबराय क्षणमात्र के लिये मौन रहे। संभव है दूसरे क्षण कोई उत्तर उनके मुंह से निकलता कि महाराजा साहब ने कहा ''बड़ा आश्चर्य है, बिना स्पेंसर को पढ़े एम.ए. कैसे हो गये? अस्तु महाराजा साहब ने प्रेम से उन्हें पान दिया और एक माह पश्चात् नियुक्ति दे दी। महाराजा साहब के दार्शनिक सहचर Philosopher Companion के रूप में रियासत की नौकरी में उनका प्रवेश हुआ।

महाराजा साहब छतरपुर श्री विश्वनाथ सिंह जी स्वत: बड़े स्वाध्यायी विद्या—व्यसनी, विद्वान तो थे ही साथ ही विद्वानों का बड़ा आदर करते थे। उनके दरबार में अनेक उच्च कोटि के विद्वान थे, जिन्हें वे अपने नवरत्न की संज्ञा दिये थे। उन्हीं नवरत्नों में बाबू जी भी एक थे। बाबू जी पर महाराजा साहब का विशेष स्नेह, कृपा और विश्वास था। बाबू जी के निश्छल, सरल विनम्र और कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्तित्व से वे इतने अधिक प्रभावित थे कि कुछ ही समय में उन्होंने बाबू जी को अपना निजी सचिव Private Secretary बना लिया। कालान्तर में राज्य के मुख्य न्यायाधीश एवं दीवान के रूप में भी अनेक वर्षों तक कार्य किया।

दार्शनिक सहचर के रूप में बाबू जी के सामने महाराजा साहब अपनी व्यक्तिगत गहन से गहन समस्याओं को भी रखते और कभी ४—५ बजे प्रात: कभी १०—११ बजे रात तक मन खोलकर चर्चायें करते और बाबू जी के चिंतनपूर्ण और विवेकजन्य समाधान से पूर्णत: आश्वस्त होते, संतुष्ट होते इसलिये महाराजा साहब उन्हें मास्टर साहब कहने लगे। बाद वे सेक्रेटरी साहब या बाबू साहब के नाम से अधिक लोकप्रिय हुए। महाराजा साहब रात में बहुत कम सोया करते थे। इस रात में साहित्यिक, दार्शनिक अथवा किसी पुस्तक—विशेष पर चर्चा—वार्ता के लिये या वैयक्तिक—समस्याओं पर विचार—विमर्श के लिये बाबू जी को बुला लिया करते थे और रात—रात भर यह दौर चलते थे। राजकीय—सेवा—कार्य के साथ यह अतिरिक्त दायित्व—निर्वहन भी बाबू जी को करना पड़ता। इस गुरुतर दायित्व—भार से कभी—कभी उनका मन उचाट भी खाता किन्तु महाराजा साहब उन्हें अपनी आत्मीयता मे ऐसा बांध रखा था कि वे मुक्त नहीं हो पाते थे।

राज्य में बाबू जी को हर संभव सुख—सुविधा सम्मान और वैभव उपलब्ध था। किन्तु अपनी सहज, सरल और सादगी प्रकृति के कारण वे समस्त वैभवों में निर्लिप्त ही बने रहे। अपने आगे—पीछे नौकर—चाकर घुमाना उनके स्वभाव से अनुकूल नहीं था। पद—वैभव—अभिमान उनसे कोसों दूर था। उनका चपरासी रमोला या तांगे—वाला फत्ते खां यदि आने में देर—अबेर करते तो वे उनकी प्रतीक्षा किये बिना बगल में फायलें दबाये दफ्तर को पैदल ही चल देते, किन्तु उन छोटे कर्मचारियों पर कभी नहीं बिगड़ते। कभी—कभी देर से आया तांगा पीछे—पीछे और पैदल चलते हुए आगे—आगे बाबू जी। इस कौतुक को देखकर लोग आनंद लेते और कहते बाबू जी की दार्शनिकता का प्रभाव तांगा—घोड़े पर भी पड़ गया है। उनकी दार्शनिकता की यहां अनेक कौतुकपूर्ण कहानियां प्रचलित हैं। एक बार उनकी कहारिन ने उनकी गाय का गोबर ऊँचे आले में रख दिया और अन्य काम में लग गई। बाबू जी दफ्तर से आये और ऊँचे आले में पड़े गोबर को देखकर सोचने लगे ''इतनी ऊँचाई पर गाय ने गोबर कैसे किया'' इस समस्या में उलझ गये। कहारिन ने घंटे भर से उलझन में खड़ा देख कर पूछा ''बाबू जी क्यों खड़े है घंटे भर से, क्या बात है? बाबू जी बोले — ''कुछ नहीं, यूं ही, अरे ये तो बता, गाय ने इतने ऊपर गोबर कैसे किया? कहारिन बोली — यह तो मैंने रख दिया है'' धत् तेरे की, पहिले क्यों नहीं बताया। एक बार घूमफिर कर हारे—थके आये। बिस्तर पर छड़ी को विश्राम दिया और स्वयं कोने में खड़े हो गये। घर का नौकर कुछ देर रस लेता रहा फिर बोला बाबू जी कोने में टिके—टिके क्या कर रहे है? तब मुद्रा भंग हुई और बोले — ''अरे उल्टा हो गया, छड़ी

की जगह मैं और मेरी जगह छड़ी हो गई।'' इसी प्रकार की अनेक कहानियाँ हैं।

बाबू जी रियासत के हितों का सदा ध्यान रखते थे। राज्य–धन को अपने धन की भांति सुरक्षित रखते थे और अपव्यय से सदा बचाते। रियासत की मोटरकारों के लिये प्रतिकार चार ट्यूब और एक टायर बदल कर नये टायर ट्यूब खरीदने का मासिक बंधेज था। यह बात सभी के ज्ञान में थी कि इतनी जल्दी टायर ट्यूब खराब होने का कोई प्रश्न ही नहीं है। बाबू साहब ने यह बंधेज बंद किया और खराब होने पर ही इस बदलाव पर व्यय करने की व्यवस्था की। एक बार हजारों रुपये का सौदा एक सौदागर से किया गया। सौदागर ने बाबू जी से अपना कमीशन लेने का प्रस्ताव किया बाबू जी ने कमीशन–राशि बिल से काट कर दाम चुकता किया। ऐसी अद्भुत ईमानदारी पर महाराजा साहब अत्यन्त प्रभावित हुए। आखिर बाबू जी बाबू भवानी प्रसाद जी जैसे ईमानदार पिता के सुपुत्र थे जिनकी ईमानदारी के अनेक उदाहरणों में एक यह उदाहरण वे सुनाया करते थे कि एक बार उनके पिता मैनपुरी से आगरा आते समय गाड़ी छूटते समय स्टेशन पर पहुंचे और ट्रेन छूटने के भय से बिना टिकिट लिये गाड़ी में बैठ गये। आगरा उतरने समय तक किसी ने उनसे टिकिट नहीं पूंछा फिर भी उन्होंने बाहर निकल कर डेढ़ टिकिट खरीदा और उसे फाड़ कर फेंक दिया। अपने पिता जी की ईमानदारी का संस्कार उनके जीवन का अंग बन गया। एक बार जब अंगरेज सौदागर से अनेक वस्तुऐं क्रय करने की बात चल रही थी। वस्तुऐं अधिक मूल्य की होने के कारण बाबू जी आना कानी कर रहे थे। तब अंगरेज सौदागर ने महाराजा से व्यंग्य किया कि आप महाराजा हैं या आपका प्राइवेट सेक्रेटरी? सब सुना तब महाराजा साहब ने कहा यद्यपि मैं ही महाराजा हूं किन्तु रुपये पैसे के मामले में अपने राजा–हितैषी एवं विश्वास–पात्र प्राइवेट सेक्रेटरी के अनुशासन में चलता हूं। रियासत में उनके मुख्य–न्यायाधीश रूप में उनके कार्य–काल में अनेक बार उन्हें भारी लांच–घूस और प्रलोभन दिये जाने के प्रसंग आये किन्तु वे भ्रष्टाचारण से सर्वथा अछूते अपनी न्यायप्रियता और ईमानदारी में सदा–सर्वदा खरे उतरे। रियासत में चाटुकारों की कमी न थी। ऐसे लोगों की पृष्ठभूमि पर ही उन्होंने ''ठलुआ क्लब'' नामक व्यंग्य पुस्तक लिखी थी।

बाबू गुलाबराय रियासत छतरपुर की सेवा में सन् १९१३–१४ से महाराजा विश्वनाथ सिंह जी के देहावसान सन् १९३३ तक रहे। उनका महत्वपूर्ण साहित्यिक अवदान इसी अवधि में प्रकाशमान हुआ। इसी बीच अनेक प्रख्यात साहित्य महारथियों से उनका संसर्ग हुआ जिनमें रियासत के दीवान मिश्रबंधु पं. श्यामविहारी मिश्र, पं. शुकदेव विहारी मिश्र, वियोगी हरि, लाला भगवानदीन 'दीन' प्रभृति उल्लेखनीय है।

बाबू गुलाबराय ने जितनी कर्त्तव्य–निष्ठा से रियासत की सेवा कार्य सम्पादित किया उतने ही मनोयोग से साहित्य–सर्जना में लगे रहे। उनकी समस्त रचनाओं को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। जो मौलिक रचनायें, सम्पादित ग्रंथ और भूमिकाओं की श्रेणी में परिगणित की जाती है। मौलिक रचनाओं में उनका (१) दार्शनिक–साहित्य (२) निबंध–साहित्य (३) आलोचना–साहित्य और (४) विविध–साहित्य है। इसमें से यहां उसी साहित्य का उल्लेख करना प्रासंगिक है जिसका प्रणयन और प्रकाशन बुंदेलखण्ड में उनके इस प्रवास–काल में हुआ है।

(१) 'शांति–धर्म' नामक उनकी पुस्तक सन् १९२७ में प्रकाशित हुई जिसमें आत्म–रक्षा, संघर्षण युक्त आत्म–रक्षा, साम्यमयी आत्म–रक्षा, शांति–धर्म तथा शांति धर्म के अंग ये पांच अध्याय हैं। (२) 'कर्त्तव्य–शास्त्र' सन १९१९ में प्रकाशित हुई जिसमें ग्यारह अध्याय हैं। कर्त्तव्य–शास्त्र का विषय और उसकी आवश्यकता, कर्त्तव्य–शास्त्र का अन्यान्य शास्त्रों से सम्बन्ध, कर्त्तव्यीकर्त्तव्य, निर्धारण व निर्णय, सुखवाद, उपयोगितावाद, आत्म–विजय, आत्म प्रतीति, समाज़ और कर्तव्य–पालन, एवं कर्त्तव्य–परायण जीवन का विवेचन इस पुस्तक में है। (३) तर्क शास्त्र (भाग १) सन् १९२५ में तर्क–शात्र (भाग २) सन् १९२७ में और तर्क शास्त्र (भाग ३) सन् १९२९ में प्रकाशित हुए। व जिनमें तर्क–शास्त्र का विषय और उसकी उपयोगिता, तर्काभास, विचार, सापेक्ष–निरपेक्ष अनुमान, निरीक्षण एवं प्रयोग, कल्पना और सत्य, कार्य–कारण सिद्धान्त, विज्ञान की सीमायें और ज्ञान का समन्वय आदि का शास्त्रीय विश्लेषण किया गया है। सन् १९२६ में ''पाश्चात्य दर्शनों का इतिहास'' प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथ में प्राचीन, मध्यकालीन और अर्वाचीन दर्शन के तीन खण्ड हैं। इसमें पैथागोरस, सुकरात, प्लेटो, अरस्तु, हाव्स, वेकन, कांट, हेगेल वेरट्रेंड रसल आदि दर्शनिकों एवं उनके दर्शन का विशद् विवेचन है। इसमें परमाणु–वाद, चित्–शक्ति, वितंडावाद, प्रत्ययवाद, यांत्रिक–संयोग, रासायनिक–योग, जीवन–शक्ति, प्रत्यक्षवाद, विकासवाद, वस्तुवाद, एकानेकवाद दार्शनिक–रीति, मनोविज्ञान, मन का विश्लेषण, प्राकृतिक द्रव्य, कर्तव्याकर्त्तव्य, धर्म–तत्व, दर्शन की वर्तमान स्थिति और भविष्य की विस्तृत मीमांसा की गई है।

निबंध साहित्य में ''फिर निराश क्यों'' सन् १९१८ में प्रकाशित हुई। इसमें मनुष्य की प्रमुखता, सत्ता–सागर, व्यष्टि–समष्टि, कर्त्तव्य और कठिनाइयां, सौदर्योपासना, विश्व–प्रेम, विश्व–सेवा, अपूर्ण की पूर्णता, पुनीत पापी, स्वयंभू सुधारकों का सुधार, हमारे नेता कौन, कर्म–योग, संघर्ष,

विफलता और चिर–वसंत आदि अध्यार्पित हैं। सन् १९२६ में ''मैत्री–धर्म'' प्रकाशित हुआ। इसमें हमारी–आवश्यकता, मित्र–परीक्षा, मित्रता का स्वरूप तथा मैत्री–धर्म एवं विश्व प्रेम नामक चार अध्याय हैं। ''ठलुआ–क्लब'' सन् १९२८ में आया जिसमें मधुमेही लेखक की आत्म–कथा, बेकार–वकील, विज्ञापन युग का सफल युवक, निराश–कर्मचारी, समालोचक, प्रेमी वैज्ञानिक, सिद्धांती, आलसी भक्त, आफत का मारा दार्शनिक पर उन्होंने व्यंग्य–विनोद रस में डुबाकर अपनी लेखनी चलाई। वे न केवल एकान्तप्रिय चिन्तक और सतत् अध्येता के नाते केवल गहन दार्शनिक विषयों के महाग्रंथ लिखने में सफल थे बल्कि ''ठलुआ–क्लब'' जैसी पुस्तक रचकर औरों के साथ हँस खेल भी सकते थे। वे दार्शनिक होते हुए भी रूखे नहीं थे बल्कि विनोदी स्वभाव के थे। समन्वयवादी प्रकृति उनकी शासन–प्रशासन शैली में, साहित्य में, जीवन के हर व्यवहार में लक्षित थी। 'मेरी असफलतायें' नामक उनकी आत्म–कथा हिन्दी साहित्य में संभवत: एक अनूठी और अप्रतिम कृति है। समालोचना के क्षेत्र में अद्वितीय मासिक पत्रिका ''साहित्य–संदेश'' को प्रकाशित करके उन्होंने न केवल साहित्यकारों को दिशा दी बल्कि परीक्षार्थियों को भी आलोक दिया।

छतरपुर में वे अत्यन्त लोकप्रिय रहे, निरन्तर चर्चा के विषय रहे हैं और रहेंगे। बुंदेलखण्ड और विशेषत: छतरपुर के मन–मानस में बाबू गुलाबराय की छवि कौतुक और जिज्ञासा–बिंदु दार्शनिक रूप में, सम्मान और श्रद्धा केन्द्र एक निष्कलुष, कर्तव्य–निष्ठ, विवेकशील, न्यायशील–संवेदनशील, प्रशासक रूप में यशस्वी साहित्य मनीषी रूप में और सर्वोपरि एक ऋषि तुल्य पावन व्यक्ति के रूप में चिर–अंकित रहेगी।

कहते हैं ''राजा की अगाड़ी और घोड़े की पिछाड़ी'' से बचना चाहिये किन्तु बाबू गुलाबराय तो दोनों मोर्चों पर सफल रहे। रियासत की नौकरी करना कांटों और तलवार की धार पर चलने के समान मानी जाती रही है किन्तु बाबू जी बिना लहु–लुहान नहीं हुए और न कभी घोड़े की लात खाई सबके प्रिय थे, वे अजात शत्रु थे, वे सचमुच सुंदर, सुग युक्त गुलाब ही थे, जो बुन्देलखण्ड के अंतर जो सुगंधि कर गये, जिसकी सुरभि यहां के वायु मण्डल में चिर स्थ होकर बस गई है।

छतरपुर महाराज श्री विश्वनाथ सिंह जी के स्वर्गवास पश्चात् बाबू जी का मन यहां नहीं रम सका और वे आगरा च गये। परवर्ती काल के उनके ग्रंथों के मुख्य हैं ''प्रबंध–प्रभा विज्ञान–विनोद, जीवन–पथ, आत्म–निर्माण, मन की बातें, निबंध, कुछ उथले कुछ गहरे, विद्यार्थी जीवन, मेरी असफलत अध्ययन–आस्वाद, राष्ट्रीयता, जीवन रश्मियां, भारतीय संस् की रूपरेखा, सांस्कृतिक–जीवन, नवरस, हिन्दी नाट्य–विम आलोचना–कुसुमाञ्जलि, काव्य के रूप, सिद्धान्त और ययन, हिन्दी साहित्य का सुबोध–इतिहास, हिंदी साहित्य संक्षिप्त इतिहास, साहित्य और समीक्षा, हिन्दी–काव्य–विम हिन्दी गद्य का विकास और प्रमुख शैलीकार, फिर उनका वि ा–साहित्य, बाल साहित्य, टिप्पणी–साहित्य, जीवन साहि जिसमें उल्लेखनीय है अभिनव भारत के प्रकाश–स्तंभ त सत्य और स्वतंत्रता के उपासक नामक ग्रंथ। पहिले में महा गांधी, जवाहर लाल नेहरू, सरदार पटेल, डॉ. राधाकृष्णन्, मदन मोहन मालवीय, सरोजनी नायडू, रामकृष्ण परमहंस, यो अरविंद, कवीन्द्र रवीन्द्र, भारतेन्दु हरिश्चंद्र, सर चंद्रशेखर वें रमण, तथा तेनसिंह, की जीवनियां हैं और दूसरे में भगवान् बु सुकरात, स्वतंत्रता की देवी जोन, अब्राहम लिंकन, कार्लमाक महात्मा टाल्स्टाय, जार्ज बर्नार्ड शॉ, झांसी की रानी लक्ष्मीबा विश्व का महान् वैज्ञानिक आइन्स्टीन आदि का मूल्यांकन कि गया है।

उनके द्वारा भूमिका–लेखन और साहित्य–सम्पादन प्रचुर मात्रा में हुआ जो अपना विशिष्ट महत्व रखता है। सोल ग्रंथ उनके द्वारा सम्पादित हुए है।

— शुक्लाना, छतरपुर म.प्र.

पाँचवे बुन्देली उत्सव की संक्षिप्त प्रतिवेदन —

बुन्देली लोककलाओं व खेलकूदों का उत्कृष्ट प्रदर्शन

— प्रस्तुति भरत श्रीवास्तव

हमारा देश गाँवों में बसा है। बुन्देलखण्ड तो पूरी तरह गाँवों में रचा बसा है। हमारी संस्कृति, परम्परायें, बोलचाल, खान–पान, रहन–सहन सभी गांवों से उपजे हैं। अत: लोक संस्कृति ही हमारे जीवन का शैली का आधार हैं लोक परम्परायें ही हमारे जीवन को स्पंदित करती हैं लोक गीत संगीत और नृत्य ही हमारे जीवन को आनंदमय बनाते हैं। लेकिन चिंता इस बात की हो रही है कि हम इन लोक परम्पराओं, लोककलाओं, लोकसंस्कृति से दूर होते जा रहे हैं। शहरों की चकाचौंध पश्चिम की बयार और कथित सभ्यता जो आज की बाजारवादी संस्कृति से उपजी है की ओर से हम तेजी से भाग रहे हैं ऐसे में यदि कहीं लोककलाओं लोकसंस्कृति और लोक खेलों में आयोजनों को देखा जाता है तो सुखद लगता है और वह भी ऐसा आयोजन यदि किसी गांव में हो रहा हो, तब तो सोने में सुगन्ध जैसा हो जाता है।

यही हो रहा है छतरपुर जिले के ग्राम बसारी में जिसे अब न केवल छतरपुर जिला वरन् पूरा बुन्देलखण्ड यहां तक कि म.प्र. और उत्तर प्रदेश सहित देश के कई भागों में इसकी चर्चायें हैं, पहचान हैं। बुन्देलखण्ड के लोगों में तो इसका बड़ी बेचैनी से इंतजार रहता है कि कब बसन्त आये और बुन्देली उत्सव प्रारंभ हो? पिछले वर्ष यह आयोजन २९ जनवरी से ४ फरवरी सन् २००१ तक चला।

छतरपुर से पन्ना मार्ग पर १७ कि.मी. दूर स्थित ग्राम बसारी में बुन्देली उत्सव की शुरुआत १९९५ में ही हो गयी थी लेकिन १९९८ से इस उत्सव ने भव्य रूप लिया और तब से लगातार यह उत्सव ऊँचाईयां अर्जित करता जा रहा है और इसका सबसे बड़ा कारण है ग्रामीण जनता का बुन्देलीजनों का इस उत्सव से गहरा लगाव। इस उत्सव के प्रति तीव्र आकर्षण और उत्साही जनों की इस आयोजन में सक्रिय भागीदारी। इसके साथ ही इस उत्सव की सफलता के पीछे एक मुख्य बात यह है कि इसे कुशल नेतृत्व, उत्कृष्ट मार्गदर्शन, और सफल संचालन के लिये क्षेत्र के तपे और बुन्देली में रचे बसे नेता शंकर प्रताप सिंह मिले हैं उनके पूरे समर्पण भाव और अथित परिश्रम से इस बुन्देली उत्सव का रुख निखरता ही चला जा रहा है।

सप्ताह भर के इस मनमोहक आयोजन में कई विधायें शामिल हैं इसके दो विभाग हैं एक खेलकूदों का जिसको महाराजा छत्रसाल टूर्नामेन्ट नाम दिया गया है दूसरा भाग है बुन्देली सांस्कृतिक उत्सव का जिसमें गीत, संगीत, नृत्य, करतब बहुत कुछ सम्मिलित है। गतवर्ष यानी सन् २००१ के बुन्देली उत्सव की यदि याद करें तो मन गद्गद् हो जाता है सात दिवसीय इस उत्सव में गत वर्ष खेल प्रतियोगिताओं में कबड्डी, बालीवाल, दौडे, गिल्ली डण्डा, चौपर, कूदें, कुश्ती आदि की प्रतियोगितायें हुयीं। जबकि रोमांचकारी अचरच भरे अश्व नृत्य, बैलगाड़ी दौड़ के कार्यक्रम हुये।

२९ जनवरी २००१ को इस बुन्देली उत्सव का उद्घाटन ग्राम के सजे धजे स्टेडियम में प्रदेश के जनशक्ति नियोजन राज्य मंत्री श्री राजा पटैरिया ने किया जबकि उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता प्रदेश के लोक निर्माण राज्य मंत्री जी मानवेन्द्र सिंह ने की। विशेष अतिथि के रूप में छतरपुर नगर पालिका परिषद की अध्यक्ष श्रीमती ललिता यादव, छतरपुर के कलेक्टर राजीव रंजन, पुलिस अधीक्षक उपेन्द्र जैन उपस्थित थे। गतवर्ष के उद्घाटन समारोह को रंगारंग कार्यक्रमों में एक विशेष गरिमा प्रदान की जिसमें छतरपुर के डिलाइट इंग्लिश स्कूल एवं महारानी लक्ष्मीबाई कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय की बालिकाओं ने बड़े ही मनमोहक सामूहिक नृत्य प्रस्तुत किये। खचाखच भरे समारोह स्थल में उद्घाटन की बेला का आनंद महिलाओं ने भी बड़ी संख्या में उठाया।

गत वर्ष से बुन्देली उत्सव में एक नया आयाम जोड़ा गया बुन्देली उत्सव मेले का। समारोह स्थल स्टेडियम के समीप ही खुले मैदान में मेला लगा जो लगातार सात दिन तक चला इस मेले का आकर्षण रही प्रदर्शनी जिसमें कई सरकारी विभागों ने अपने विकास और कार्यों की झलक प्रस्तुत की साथ ही ग्रामीण एवं कृषि यंत्रों जैसे ट्रैक्टरों आदि की भी प्रदर्शनी लगाई गयी। इस प्रदर्शनी को देखते तथा मेले में खरीददारी के लिये आसपास के गांवों के लोग प्रतिदिन बड़ी संख्या में आते रहे।

इस उत्सव में पूरे दिन तो विभिन्न खेलों की प्रतियोगितायें चलती रहीं और रात को रंगारंग कार्यक्रम की धूम रही। ३० जनवरी को इस रंगारंग कार्यक्रमों की शुरुआत आकर्षक मंच पर स्कूली बच्चों के सांस्कृतिक कार्यक्रमों से हुयी जिसमें बुन्देली आधारित कार्यक्रम ही हुये। और इस प्रथम दिन के कार्यक्रमों का विशेष आकर्षण रहा बुन्देली पोषाक प्रतियोगिता जिसमें सीनियर जूनियर की अलग अलग प्रतियोगितायें हुयीं यद्यपि सीनियर वर्ग में बहुत कम प्रतियोगी उतरे लेकिन जूनियर

वर्ग में बड़ी ही आकर्षक प्रस्तुतियां हुयी जो काफी संख्या में थी।

स्कूली बच्चों के कार्यक्रम में भी २५ कार्यक्रम प्रतियोगिता के रूप में हुये जिसमें छतरपुर, खजुराहो, नौगांव जैसे शहरों के बच्चों के साथ साथ गंज, बसारी, बरेठी, सांदनी आदि गांवों के स्कूली बच्चों ने भी इसमें बड़े उत्साह से भाग लिया। इस प्रतियोगिता में प्रथम पुरुस्कार लौड़ी की मयूरी जैन को मिला। जबकि खजुराहो की कु. अवन्तिका दुबे दूसरे स्थान पर रहीं। तृतीय स्थान छतरपुर की कु. ऋचा खरे को मिला।

बुन्देली उत्सव के तीसरे दिन अर्थात् ३१ जनवरी को बुन्देली नाटकों की प्रतियेगिता हुयी जिसमें रैनेशां छतरपुर द्वारा प्रस्तुत "हो गओ भुनसारो" को पहला स्थान मिला। इसके साथ ही आधा दर्जन से अधिक प्रस्तुत नाटकों को भी दर्शकों ने बहुत सराहा।

उत्सव के चौथे दिन की शाम एक फरवरी में बुन्देलखण्ड की लुप्त होती विधाओं और कलाओं के नाम रही जिसमें दिवारी, रावला, बधैया, कछियाई, ढिमरियाई आदि के कार्यक्रम दूर दूर के ग्रामीण अंचलों से आये प्रतिभावान कलाकारों ने प्रस्तुत किये। इस शाम २२ कार्यक्रम प्रस्तुत हुये जिसमें सर्वाधिक दिवारी नृत्य प्रस्तुत किये गये और इस सभी कार्यक्रमों में पहला स्थाना पाया बसारी ग्राम की ही आदिवासी पार्टी ने। जबकि दूसरा स्थान गढ़ीमलहरा के फ्रेन्डस् क्लब को और तीसरा स्थान महोबा की लखन लाल लोकनृत्य पार्टी को मिला।

उत्सव के पांचवे दिन की निशा अन्य बुन्देली कलाओं और विधाओं की अत्यन्त रोचक और आकर्षक प्रस्तुतियों से परवान चढ़ी इसमें आल्हा गायन, दलदल घोड़ी नृत्य, सोहरे, दादरे, गारी, कदरवा, सैरें, चौकड़ियां, विदाई गीत कार्तिक गीत, देवी गीत तथा श्रम गीत आदि के तैंतीस कार्यक्रम हुये जो एक प्रतियोगिता के रूप में प्रस्तुत हुये। इसमें उ.प्र. के मवई खुर्द के रामअवतार सिंह एण्ड पार्टी में आल्हा गायन को प्रथम स्थान मिला जबकि उ.प्र. के ही पन्द्री की चोखेलाल एण्ड पार्टी को द्वितीय स्थान मिला और तृतीय स्थान मिला वंशगोपाल एवं साथियों को। इसके अलावा गारी में बसारी की मत्थीबाई प्रथम रही दादरे में खरगापुर के रमेश बाबू सोनी प्रथम रहे। दलदल घोड़ी में सागर की सरस्वती लोककला मण्डली प्रथम रही। सोहरे के रिछाई की विहारीलाल एण्ड पार्टी ख्याल में गंज के चन्द्रप्रकाश अवस्थी कहरवा में बकस्वाहा की गीतेश लोक कला मण्डली, सैर गायन में पं. गुरु परमानंद सैर पार्टी, चौकड़िया में पूनम संगीत महाविद्यालय राजनगर देवी, गीत में छतरपुर की कन्हैयालाल एण्ड पार्टी, कार्तिक गीत में राजा बलवंत संह कालेज राजनगर की पार्टी तथा श्रम गीत में बसारी के चक्की गीत पार्टी प्रथम रही।

इस उत्सव के पांचवें दिन राज्य के स्कूल शिक्षा मंत्री इन्द्रजीत पटेल भी शामिल हुये और उन्होंनें अपने उद्बोधन में बसारी स्टेडियम की प्रशंसा करते हुये कहा कि इस स्टेडियम में राज्य स्तरीय खेल प्रतियोगितायें कराई जावेंगी उन्होंने चौप... की विजेता उस विजेता टीमों को पुरस्कार भी प्रदान किये।

इसी उत्सव में प्रदेश के ग्रामीण विकास एवं पर्यटन मंत्री श्री अजय सिंह भी सम्मिलित हुये उन्होंने बुन्देली आयोजन समिति द्वारा प्रकाशित स्मारिका 'बसंत' का विमोचन भी किया उन्होंने महाराजपुर के श्री चौरसिया की मूंछों से बीच ईंटे उठा... तथा मारुती कार खींचने के करतब भी दिखाये।

गत वर्ष के बुन्देली उत्सव की एक विशेषता और रह... कि इस वर्ष बुन्देली व्यंजन प्रतियोगिता आयोजित हुयी। उत्सव के छठवें दिन हुयी इस प्रतियोगिता में एक दर्जन दलों ने भा... लिया और स्वादभरे मीठे, नमकीन, चटपटे बुन्देली व्यंज... बनाकर उनके स्टाल लगाये जिसका सभी ने निःशुल्क रसास्वाद... किया। इनमें मुर्का, लटा, डुबरी, ठडूला, महेरी आदि अनेक व्यंजन थे। इस प्रतियोगिता में सुधा एवं रुचि अग्रवाल प्रथ... तथा बसारी की रोशनी और रुचि अग्रवाल द्वितीय स्थान प... रही तृतीय स्थान दो पार्टियों को मिला जिसमें आशा, सरित... ज्योति अग्रवाल एवं अंजना शुक्ला उनकी साथी शामिल थी।

उत्सव में सर्वाधिक उत्तेजना भरा आकर्षक कार्यक्र... रहा दंगल का, यानि कुश्ती प्रतियोगिता का। इसमें दूर दूर... आये पहलवानों की जोरदार कुश्तियाँ हुयी। जिसको देखने... लिये पूरा स्टेडियम भर गया। आश्चर्य यह रहा कि कुश्... दर्शकों में महिलाओं की संख्या बहुत अधिक थी। कहीं काल... घटा तो कहीं घनघोर घटा नाम के पहलवान अखाड़े में उतरे... उनकी कुश्तियां देखकर लोग दंग रह गये।

इसके साथ ही अत्यन्त रोमांचक कार्यक्रम रहा अश... नृत्य का। जिसमें दूर दूर से आये अश्व और अश्व पाल... अपने प्रशिक्षित घोड़ों के न केवल दृश्य प्रदर्शित किये ब... उनके अनेक करतब भी प्रस्तुत किये जिन्हें देखकर लोगों... दांतों तले उंगली दबा ली।

बुन्देली उत्सव २००१ में एक नया आयाम जोड़ा ग... बैलगाड़ी दौड़ का। उत्सव स्थल से कुछ दूर बड़े मैदान में प्रदे... के सहकारिता मंत्री डॉ. गोविन्द सिंह की उपस्थिति एवं मु... आतिथ्य में यह आयोजन हुआ। इस प्रतियोगिता में सजी-ध... २१ बैलगाड़ियों ने भाग लिया और प्रतियोगिता जी... भैरा-परसनिया के रघुराज सिंह ने। जबकि दूसरा स्थान मु... पुरवा के गड्डू पटेल ने पाया और तीसरे स्थान पर रहे ... बंधियन के श्री रमेश। इस प्रतियोगिता को देखने विभिन्न प्रदे...

के कृषि उपज मण्डी बोर्डों के अध्यक्ष व प्रबंध संचालक भी आये जो खजुराहो में एक सम्मेलन में भाग लेने आये थे। उन्हें बुन्देलखण्ड की बैलगाड़ियां और उनकी यह दौड़ बहुत भायी।

बुन्देली उत्सव का सबसे आकर्षक और अंतिम कार्यक्रम रहा फाग गायन और राई नृत्यों का। बुन्देलखण्ड का यह राई नृत्य न केवल बुन्देलखण्ड और मध्यप्रदेश में प्रसिद्ध हैं। देश और देश के बाहर तक इस राई नृत्य के प्रदर्शन हो चुके हैं और इस तरह राई नृत्य बुन्देलखण्ड की पहचान बन चुका है। इस उत्सव में एक दर्जन से अधिक राई पार्टियों ने राई नृत्य प्रस्तुत किये जबकि इतने ही फाग गायन दलों ने भाग लिया। इनमें प्रथम स्थान प्राप्त किया जैसीनगर सागर की बसन्त सेना राई पार्टी ने जबकि दूसरे स्थान पर रही बसारी ग्राम की आदिवासी राई पार्टी। और तृतीय स्थान पर चन्द्रनगर की बुन्देलखण्ड राई पार्टी रही।

फाग गायन में प्रथम स्थान संयुक्त रूप से छतरपुर की श्यामलेजू पार्टी तथा बसारी की आदिवासी फाग पार्टी ने प्राप्त किया। द्वितीय स्थान पर श्यामरी की फाग पार्टी और तीसरे स्थान पर पारवा की फाग पार्टी रही।

इस राई नृत्य और फाग गायन कार्यक्रम के मुख्य अतिथि प्रदेश के कृषि मंत्री श्री महेन्द्र सिंह सिंह कालूखेड़ा रहे उन्होंने इन नृत्यों का भरपूर आनंद उठाया। यही नहीं उनके साथ राजस्थान के कृषि मंत्री दीपेन्द्र सिंह शेखावत, महाराष्ट्र के कृषि मंत्री श्री गणपति राव देशमुख, गोवा के कृषि मंत्री श्री प्रकाश एस. विलियम भी इस समारोह में शामिल हुये साथ ही कई प्रदेशों के मण्डी बोर्ड अध्यक्षों ने भी इस समारोह को देखा और सराहा इन अतिथियों का उत्सव समिति के संरक्षक शंकर प्रताप सिंह मुन्ना राजा सहित कई लोगों ने स्वागत किया। गत वर्ष के बुन्देली उत्सव का समापन बड़ा ही सुखद अविस्मरणीय और उपलब्धियों से भरा रहा। समापन समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में प्रदेश के मुख्य मंत्री दिग्विजय सिंह शामिल हुये। और उन्होंने बसारी के इस बुन्देली उत्सव को सरकारी सहायता के रूप में प्रतिवर्ष तीन लाख रुपये देने की घोषणा की। और साथ ही एक नायाब तोहफा दिया ग्राम बसारी को बुन्देली कला–संस्कृति संग्रहालय का। मुख्यमंत्रीजी ने घोषणा की कि ग्राम बसारी में यह संग्रहालय खोला जायेगा जिसका करतल ध्वनि से स्वागत किया गया।

पिछले बार में बुन्देली उत्सव में गुजरात के विनाशकारी भूकम्प की छाया रही लेकिन पूरे उत्सव में भूकम्प पीड़ितों की मदद के लिये राशि एकत्रित की गयी। जो मुख्यमंत्री को भूकम्प सहायतार्थ भेंट की गयी। यह राशि १४ लाख रुपये की अधिक की थी। सबने इस कोष में दिल खोलकर दान दिया था।

समापन समारोह में उत्सव की प्रत्येक चुनिन्दा प्रथम आयी विधाओं का प्रदर्शन किया गया जिसे सभी ने खूब सराहा और उसके बाद पुरस्कार वितरण का कार्यक्रम हुआ जो टोकन रूप से मुख्यमंत्रीजी द्वारा शुरू किया गया। लेकिन सैकड़ों की संख्या में घोषित इन पुरस्कारों का वितरण काफी देर तक चलता रहा।

इस तरह सप्ताह भर चले बुन्देली उत्सव का शहरी, ग्रामीण और दूर दूर से आये लोगों ने भरपूर आनंद उठाया। इसमें खजुराहो के सांसद सत्यव्रत चतुर्वेदी भी शामिल हुये तो निवाड़ी के विधायक बृजेन्द्र सिंह राठौर भी शरीक हुये और न जाने कितने महत्वपूर्ण व्यक्ति आये, कलाकारों का तो जमघट लगा रहा। खिलाड़ियों का मेला लगा रहा साथ ही कार्यकर्ताओं का अपार परिश्रम पदाधिकारियों की दिन रात की मेहनत और हजारों लोगों का सहयोग ही इस आयोजन की सफलता का आधार है।

— नल विभाग के सामने, छतरपुर (म.प्र.) □

स्व. राव बहादुर सिंह बुन्देला बसारी सम्मान २००१

बुन्देली विकास संस्थान बसारी ने बुन्देली के रचनात्मक विकास में संलग्न विभूतियों को 'स्व. राव बहादुर सिंह बुन्देला, बसारी सम्मान' देने का निर्णय लिया। जिसके तहत २००१ में बुन्देली के वरिष्ठ कवि श्री माधव शुक्ल 'मनोज' सागर को बुन्देली में रचनात्मक योगदान हेतु, डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त को बुन्देली में गहन आलोचना तथा शोधपरक कार्य हेतु तथा श्री जयेन्द्र सिंह परमार, बुड़रक को बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक तथ्यों को संजोने हेतु 'स्व. राव बहादुर सिंह बुन्देला बसारी सम्मान २००१' प्रदान किये गये। इसके तहत ११०० रुपये की नकद राशि, प्रशस्ति पत्र तथा शाल श्रीफल समिति द्वारा विद्वानों को प्रदत्त किये गये।

चिट्ठी मिली —

मान्यवर मुन्नाराजा,

सादर स्नेह नमन्,

आपका प्रेमासिक्त बुन्देली शैली में आलिखित सांस्कृतिक परम्परा की अक्षुणता को कायम रखकर उसे नये आयाम देने की रचना का आमंत्रण प्राप्त कर अभिभूत हूँ। संस्कृतियों का निर्माण करने में पीढ़ियों के बलिदानों की श्रृंखलायें और अनवरत परंपरायें हमारा मार्गदर्शन करती हैं। महान् बलिदानी हरदौल की गाथा गाते–गाते यहां का लोक अघाता नहीं है और खेल–कूद, मेले, आमोद–प्रमोद तो आबाल वृद्धों को जीवन देते हैं। यदि निष्पक्ष शोध किया जाये तो यह भूभाग जिसे पुराणों में दशार्ण देश (धसान देश) और नदी को दशार्णा (आज की धसान) कहा है। मानव जीवन की सभी विधाओं में उत्तम स्थानों का थातीदार है। क्या हमारे महाराजा मधुकरशाह, ओरछेश का मुगल दरबार में तिलक लगाकर जाने का हठ उनके बलिदान की वृत्ति का सूचक नहीं माना जायेगा? भले ही बादशाह ने पुरस्कृत कर दिया हो। पर राजा तो प्राण हथेली पर रखकर ही दरबार में गये थे। हम अपने वर्तमान के साधुमना महाराजा वीरसिंह देव (द्वितीय) महाराजा ओरछा का जिक्र करना नहीं भूलेंगे जिन्होंने यह कहकर कि ''आप लोग स्वराज का काम करो पर थोड़ा बचाव रखकर नाम बदलकर करो'' और स्वराज की लड़ाई ओरछा सेवा संघ के नाम से लड़ी गयी वे भागीदार माने जायेंगे। क्या महाराजा के खेलप्रेम, साहित्य प्रेम और प्रकृति प्रेम की उद्दाम भावना को नकारा जा सकता है? उन्होंने जो खेल टीम बनायी थी उसमें देश के प्रख्यात खिलाड़ी थे, प्रख्यात पहलवान भी थे और साहित्यकारों को संरक्षण तथा देव पुरस्कार, विराट कवि सम्मेलनों का, वसंतोत्सव का आयोजन भूलने लायक है? दादा बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू यशपाल जैन, कृष्णानन्द गुप्त, रामगोपाल चतुर्वेदी आदि को स्टेट में रोककर उनसे तथा लोकनाथ सिलाकारी जैसे साहित्यकारों से विविध विधाओं के साहित्य का परिपोषण और परिशोधन कराना ओरछेश की ही सत्प्रवृत्ति, सात्विक प्रवृत्ति जहां तक कि संत प्रवृत्ति का परिचायक है। राजाशाही और बात है और राजाओं द्वारा लोक कल्याण के निमित्त स्थापित उत्तमोत्तम मानदण्ड और बात है। क्या छतरपुर और क्या बुन्देलखण्ड की सभी देशी रियासतों का ऐसी प्रवृत्ति में किया कार्य विस्मरणीय है? नहीं। मैं इन सबके बारे में सोच–सोच कर परमानन्दित हो जाता हूँ। आपके आयोजन मंगलमय हों। लोक समृद्धि के लिये प्रतिवर्ष किया जाने वाला यह पुण्य प्रयास हमारे अस्मिता को समुन्नत कर संरक्षण प्रदान करे। इस भावना के साथ मेरी समस्त अंतर्भावनायें आपके साथ हैं।

भावनाओं का ज्वार है पर आपकी व्यस्तता में अधिक बाधा उत्पन्न न हो, इस हेतु मैं अब शब्द विराम देकर परमपिता से यह कल्याण कामना करता हूँ कि आपके संकल्प यशस्वी हों।

आपका —
मगनलाल गोइल
विधायक टीकमगढ़

भैया बहादुर सिंह परमार

छतरपुर बारन कों नई साल में राम–राम पौंचे।

बुन्देली उत्सव की नोंनी परम्परा डारबे के लाने महाराज मुन्नाराजा को रिनियाँ सबई रैहैं। उनके कारन अपने देस को ज फैल रओ। भगवान गनेस जू हरदौल लाला उनैं जुग जुग जिवावें ई उत्सव के माध्यम से बुन्देलखण्ड की संस्कृति खां नयी दिश मिलहै और कलाकारन खां उनको स्थान हासिल हुइये। हमाई जे मंसा है।

— अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद
मण्डपम्, राठ रोड, उर

अभी हाल ही में बुन्देली विकास संस्थान द्वारा प्रकाशित स्मारिका बसंत २००१, हमें एक मित्र के माध्यम से प्राप्त हुयी पठन पाठन के पश्चात आप लोगों का बुन्देली के विकास हेतु भगीरथी का प्रयास प्रशंसनीय एवं श्लाघनीय लगा। स्मारिका की विषय सामग्री अत्यन्त रोचक, ज्ञानवर्धक एवं संग्रहणीय के साथ–साथ भावी एवं अनभिज्ञ पीढ़ी को बुन्देली साहित्य, संस्कृति से परिचय कराने का यह श्रेष्ठ प्रयास है।

लोक परम्पराओं की श्रृंखला में सावनी एवं बीजासेन मैया पढ़कर यादें ताजा हो गयीं। साहित्य में ख्याल, फाग, फड़, ले आदि विधाओं को भी उचित स्थान दिया गया। जगदीश्वर की मैया 'मोय मायके जाने', काशीराम अकेला की 'पइसा दै दो मो मताई' निहाल अहमद सिद्दीकी की क्षणिकाएं टुकड़ेल आदि लघुकथायें भी रोचक रहीं। ये सभी धन्यवाद के प्राप्त हैं।

—आर.एन. यादव
बैंक अधिकारी,
एम–१/३७ सैक्टर बी, अलीगंज, लखनऊ

'बसन्त' के माध्यम से बुन्देली भाषा व संस्कृत को बढ़ावा देने का आपका अनूठा प्रयास सराहनीय है। आप इस पत्रिका के माध्यम से बुन्देली के साहित्य तथा इतिहास के अनुछुए पहलुओं को उजागर करते रहेंगे।

— डॉ. डी.पी. खरे
टीकमगढ़

बुन्देली उत्सव के अवसर पर प्रकाशित 'बसन्त २००१' पढ़ने को मिली। सामग्री अच्छी थी और इसने मुझे प्रभावित किया। मैं चाहता हूँ कि भविष्य में भी इसी प्रकार की सामग्री प्रकाशित करते रहें।

— साकेत सुमन चतुर्वेदी
७२१, ऐबटगंज, चित्रा चौराहा, झांसी

आप सभी विद्वत् जनों के बसंती प्रयासों से बुन्देलखण्ड जनपद की विलुप्त होती लोकसंस्कृति–विधाओं को पुनर्जीवन प्राप्त होने लगा है। वास्तव में अपनी इस बुन्देली माटी की इससे अधिक और क्या सेवा हो सकती है? मेरा परमात्मा से निवेदन है कि 'बसन्त' एवं उसके सृजक आयोजक शुद्ध, सद् बुद्धिमान, सदा हि भरे रहें कि जिससे बुन्देली धरती का रूप स्वरूप निरन्तर निखरता रहे।

— डॉ. काशीप्रसाद त्रिपाठी
भारत भवन, पुरानी टेहरी, टीकमगढ़ म.प्र.

बुन्देली बसन्त

— श्रीमती विजयश्री बुन्देला

आ गओ बुंदेली बसंत
बज रये ढोल नगाड़े,
हो रओ कोलाहल भारी
रंग बरस रओ, ग्राम बसारी में।

बुन्देलखण्ड की धरती पै
जौ उत्सव हो रओ नोंनों,
ईमें जुरत सतऊ जात
कौनऊ रहत न अनोंनों।

घुरवा नाचें, नाचें मनुवाँ
और नाचें लोग लुगाई,
मोड़ा, मोड़ी, प्रजा, पौन सब
चारऊ ओर खुशियाली छाई।

ईमें होबे खेल कबड्डी
बॉलीबाल और गिल्लीडंडा,
चौपर की जब बिछे बिसात
तब देखत है बनती भैया।

बांधे ईंटे मूंछन सें और
मूंछन से खैंचत गाड़ी खों
अचरज होवै देख जिनन खों
ऐंसे लोग जुरत हैं भैया।

सोहरे, दादरे, कातिक गीत कहरवा
गीतन की अगनित विधायें
लैबे भाग भगे आउत हैं
बड़ी दूर सें गुइयां।

आबे जाबे कौ खर्चा पाबें
जितने खेल खेलबे बारे,
जीतें सो इनाम मिलत है
शील्ड देत है भैया।

ई उत्सव खों देख सबई खों
लगत है खूबइ नोंनों,
ई साल सें ऊसाल लौ
होत उच्छाव है दूनों।

आबैं मंत्री और मुख्यमंत्री
नेता संग विधायक,
यू.पी.एम.पी. एक दिखत है
क्या खूब छटा बासंती।

सात दिना कौ टैम ऐसें निकरै
लगत बात है कल की,
अबकी लगी रही हो जोनऊ
पूरी हुइये फिनकी

'छत्रसाल' की ई धरती पै
बनी रहै कुछ उनकी,
दैन लगै सहयोग सबई तो
चिंता नइया कल की।

— राजमहल परिसर, छतरपुर ☐



बुन्देली बुझौअल

— अरविन्द सिंह यादव

बारा गोड़े तेरा मूड़ ओई में दो पूंछें ढूंड़। (सीताहरण)
सेता सुपेता इस देश में नहीं।
खाने वाली चीज उसमें फुकले नहीं। (ओरा)
लाल मोंरौ लहँगा, हरीरी मोरी तोई।
बरै मोरी अक्कल, मैं रात भर रोई।। (लाल मिर्च)
राम के बैन, भरत की सारी।
भओ न ब्याव, रही न कँवारी।। (राज्य गद्दी)
टेड़े मेड़े जात काँहौ, दाँत निकारें कात काहौ।। (साँप)
सूधी साँठ फुनई पैं गाँठ, पीका फोरें पूरे पाँच (गुँदंला)
लम्बी गर्दन पींठ पर फोड़ा। पतरी टांगें रेत में दौड़ा।। (ऊँट)
कोऊ मोरी किस्सा जानें। मोहाँ बिना मूँड़ कौ चानें।। (कैंकड़ा)
ठट्ठा कौ ठट्टा, ठट्टा की ठठोली।
मर्द की गांठ औरत ने खोली। (ताला चाबी)
सांप सटके ग्वाय मटकै, तीतुरिया मन्नाय।
येरी सखी मैं तोसें पूछौं, जौ कौन तमासौ आय।। (रॉट)
चार खूट की लकड़ी, चारौ खूटें खट्ट।
मोरी किस्सा बतायेंजा, नईं तो यहाँ से उट्ठ। (ककइ)
कोऊ ऊकी कहानी जानें। ऊहां बिन गर्दन कौ चानें। (मेंढक)
हंस वरन वैठक लगी, फिर सुआ वरन किलकोटा।
फिर सिंह वरन गर्जन करै, फिर गदा वरन रऐ लोट।। (दारुखोर)
ऊपर सें गिरो डब्बा। सूंगन लगो बब्बा।। (कैंथा)
एक जन्तु इतनौ जन्ट। ऊकी पूंछ में किरन्ट।। (जुगनू)
मैं कटत तें काये रोउत। (प्याज)
संत बड़े मनमौजी, कात बहिन सें भौजी। (लक्ष्मन, सीता)
परनारी प्यारी लगे, सबई लगाबै अंग।
सबके पुरखा तरगये, पर नारी के संग।। (गंगा जी)
चार जुगन के बीच में, न्याव अटक गई एक।
जुग बीतो प्रलय भओ, न्याय भई न नेक।। (राहू केतु)
पैले भइतीं बैंनें–बैंने, फिर भवतो भइया।
जीके पीछे बाप भवतो, फिर भइती मइया।। (मऊवां)
लाल लड़इया टेड़ी पूंछ। न जाने तौ मताई से पूँछ।। (लाल मिर्च)
ऐंचक बेंचक घोड़े को, तीन मूढ़ दस गोड़े की (हर–बैल–आदमी)
एक डार की बारा डारे, बारा की बत्तीस।
तऊ न जाने मौरौ गुइया, भई अठारा, बीस।। (चौंक)
पथरा की बिलइया, कठवा की पूंछ।
न बने तो अपनी बऊ से पूँछ।। (जाँतो)
बरी के तरें–तरें गोल बटरा, आँखें दिखावै तिवारी डुकरा।(मेढ़क)
सारंग जलत जात दिन राती। बिना तेल उर बाती। (चंदा–सूरज)
एक भटा में दो नरुवा। जो कोउ हमाई किसा न जाने ऊ मरुवा।
(बेलन)
एक टोर तरें चार अंडा। (गाय या भैंस के थन)
जल कपै, जल कौ बेला कपै। चोर आबे, कोउ लै न सके।।
(जुंदइया)

कारे पहार से भागा चोर, कानपुर में पकड़ा गया।
गदम्बपुर में हुआ मुकदमा, नौपुर में मारा गया। (जुंआ)
ऊपर से गिरो बम, तरें नइयाँ दम। (ओरौ)
ऊपर से गिरी काली, एक लरका न खाली। (जामुन)
धन्य–धन्य रे किसान। तरें मेड़ी ऊपर खरयान। (पुरेन)
कुत्ता लोरे पानी में, पूंछ डरी डढ़ारे में। (चम्मच)
सरी नकरिया टोरै को, लाल बटइया घोरे को, बड़े बैलवा जोतै को।
(सांप, आगी, शेर)
तनक सौ जगदीश, उन्ना पैरें एक सौ बीस। (प्याज)
कुत्ता की पूंछ हमाये पास। कुत्ता भोंके आसपास। (लाउड स्पीकर)
चार खूंट को चौंतरा, अस्सी गज की डोर
राजा गये शिकार खेलन, नाचन लागी मोर (पतंग)
एक गांव में ऐसा वीर, गाना गा कें मारै तीर। (मच्छर)
सूदो सटका, बीच में गांठ। पीका फूटे पूरे पांच।। (हांथ)
खड़बड़–खड़बड़ खरा दौदरा देत,
भौजी को भइया गिर परो गेल में चूमा लेत। (महुआ)
मूढ़ बिड़ो गरदाने में,हांथ गोड़े डाँड़े में। (कछुवा)
चार खूंट को चौंतरा, बावन बीगा खेत।
सोरा से हर चले, सैला लागो एक।। (पेन कापी)
एक अचम्बो हमने देखो, मुर्दा आटा खाय।
टेरे से बोले नहीं, मार देत चिल्लाय॥ (मृदंग)
बेव न रखाओ, मीठो–मीठो खाओ। (शहद)
एक टोर तरे कई अंडा, घुम गई टोर फूट गये अंडा (जतरिया)
तनक सी रेशम, बात करै कोसन। (फोन)
चार खूट की चकरी, पड़िया सी अफरी। (बोरा)
बारा सारस छै सुआ, चार हंस, दस मोर।
मैं ठांडी चितवत् रही, निरखत गये एइ ओर।। (धरती)
अटक मटक चली, पैर चली सइयाँ।
बड़ी खसम की लाड़ली चड़ चलीं कइयाँ।। (तलवार)
लम्बी पूंछ गिलहर नहीं, दोए सींग नहीं गाय।
नाच करे आकश में, मीठौ राग सुनाये।। (पतंग)
आगन देखौ पागन देखौ, देखो है कलकत्ता।
एक अचम्बौ ऐंसौं देखो, फूल के ऊपर पत्ता। (बंदगोभी)
बारा घर पाखे चौवीस, अच्छे कुरवा लागे तीस।
बारा घर कौ एकई द्वार, पंडित होय सो करै बिचार।। (साल)
थन थन थनियां, हाथ गुथनियां। हूँ हूँ कक्का, लैले कइयां।। (दपकी)
देवे हाँ लुगवां, भगें हाँ लुगाई। (शंकर जी)
पंच बैठे न्याय नहीं, बारात आयी दूल्हा नहीं।
सौत के भइयां ने, लाज बचाई। (द्रौपदी)
जाँगन बीचन बा, जानो न तुम बा।
एक हाथ गलगंदा डाले, एक थथोले बा।। (उखरी मूसर)
जल थंमन बैरी दहन, स्वान उखारत दंत।
कान बिरोबर कामनी, कहां बिसारी कंत।। (लाठी)
जल कौ भोजन पवन है, पवन का भौजन कौन।
ससुर बहू के पाँव परत है, ऐसौ महीना कौन।। (कार्तिक माह)
देखत कौ कोंरौ, थथोलत कौ कर्रो। (घर का खूंट)
पेट में लरका, ऊपर झलरियां। (नारियल)
चार जने, सोरा जनी। एक खाट पै, कैसे बनी।। (अंगुलिया अंगूठा)

पेड़ो है धामक धहुआ, पत्ता है जंगाली।
फूल फूलो श्याम सुन्दर, पौद है ऊके कारे।।(छेवला का फूल)
नही धरन में नहीं गगन में, अतफर रात विचारी।
अतफर हू पर बैठ जात है, सैहर करें सबारी।। (तखरिया)
एक ईट कौ चौंतरा, नौ सौ गांय अमाय।
पर डबला मैं सीत न जाए।। (नेपर)
एक मोंरौ लाल बैल, एक मोंरौ कोड़ा।।
लाल बैल हां चोर दूकें, दौरे मोंरौ कोड़ा।। (बेर और काटें)
एक फूल है काले रंग का, सिर पर सदा सुहाय।
वर्षा धूप में खिल–खिल जावै, छाया में मुरझाय।। (छाता)
कुकरा कैसे केस, बुकरा कैसे कान।
हमाई किसा जानों, नई तर तानत कान।। (छेवला के फल)
चार बरन, चौदह चरन, आठ कान, दो सींग।।
तिरिया जात की एक है, धिंगा पौचे तीन।।
(छिरिया, बरेदी, कुत्ता, बिगना)
एक पेड़ कौ आदौ नाव। जल्दी ई कौ अर्थ बताव।। (अदरक)
आठ कटाकट, नौ किन चारी। बारा बैल अठारा नारी।।(रांट, रहट)
नाय तकिया मांय तकिया।
बीच में बैठीं, गोरी बिटिया। (चिरौंजी)
सबद–सबद् की दोस्ती, सुनी न चारउ जुग।
बिना सबद पीतम तजे, यह कौन अचम्भौ भव।। (जूता)
घोड़े के सामान में, कुल अक्षर है तीन।
पहलौ अक्षर छोड़के, व्याह राम से कीन्ह।। (गौसिया)
एक अंश के दो पहलवान।
एक अंश ने लै लये प्रान।। (लक्ष्मन–मेघनाद)
हर हरवाहौ लील गाओ, जुंआ लील गओ खेत।
सैला–बैला लील गओ, घरै खबर को देत।। (राहु–केतु)
मोह अंजान पावन मलो, जब न भई मोय पीर।
जहां जौहरी पग धरो, फाटो जात शरीर।। (हीरा)
दस जनन के बीच में, पकरी गई एक नार।
अपनो काम समारके, पाछूँ डारी मार।। (रोटी)
उल्टे सरके वे चलें, उल्टी उनकी रीत।
न कन्धे पै बोझा ढोवे, न ढोवै बे पीठ।। (गुरबील)
साम सुबह चोरी करे, पर घर झाँकन जाए।
पर त्रिया से प्रेम कर, तर बैकुण्ठैं जाय।। (तुलसी की माला)
कांच का घोड़ा, लोंहे की लगाम।
शाम के सबकोउ करै सलाम। (लालटेन)
आठ गोड़े पतरी करयाई। कहां चले बड़े भाई। (चींटा)
ऐसो जीव एक है, धरनी में नित होय।
उसके ही नाम से, गहने बनवे दोय। (दुर्विछिया)
बारा बेंन अठारा भइया।
ठाँड़े–ठांड़े बाप रोबें, परें–परें मइया। (रा...)
ऐड़े बेड़े तुम हो कैंड़े, मूँछ तुर्राय आंख में भैंड़ें। (केंकड़ा)
अपटी बिलइया की चपटी पूंछ।
न बने ता मताई सें पूंछ।। (थैला)
बाप बड़े बेटा बड़े, नाती बड़े अमोल।
जिनके पन्ती बे भये, दो कौड़ी के मोल।।(दूध, दही, घी, मठा)

— ग्रा. भियांताल, पो. चन्द्रनगर,जिला छतरपुर म.प्र.

बुन्देली उत्सव २००२ आयोजन समिति, बसारी

संरक्षक मण्डल :

१. डॉ. गोविन्द सिंह, मंत्री, सहकारिता विभाग, म.प्र. शासन, भोपाल।
२. श्री सत्यव्रत चतुर्वेदी, सांसद–खजुराहो क्षेत्र
३. श्री मानवेन्द्र सिंह, राज्य मंत्री, लोक निर्माण विभाग
४. श्री शंकर प्रताप सिंह, अध्यक्ष, म.प्र.कृ.ग्रा.वि. बैंक, भोपाल
५. श्री देवकीनन्दन पाण्डेय अध्यक्ष, जिला पंचायत, छतरपुर
६. श्री दीवान त्रिलोक सिंह सदस्य, जिला पंचायत
७. श्री राजीव रंजन, (भा.प्र.से.) जिला कलेक्टर, छतरपुर
८. श्री उपेन्द्र जैन, (भा.पु.से.) पुलिस अधीक्षक, छतरपुर
९. श्री ए.साई मनोहर (भा.पु.से.) मुख्य कार्यपालन अधिकारी, जिला पंचायत, छतरपुर

आयोजन समिति :

१. श्री रामदयाल अहिरवार विधायक, महाराजपुर
२. श्री विजयबहादुर सिंह बुन्देला विधायक, चन्दला
३. श्री उमेश शुक्ला विधायक, छतरपुर
४. डॉ. स्वामी प्रसाद लोधी विधायक, बड़ामलहरा
५. श्री कुँ. विक्रम सिंह 'नाती राजा' अध्यक्ष, नगर पंचायत, खजुराहो
६. डॉ. ए.एस. खान, छतरपुर
७. श्री जगदीश शुक्ला अध्यक्ष, जिला कांग्रेस, छतरपुर
८. श्रीमती ललिता यादव अध्यक्ष, नगरपालिका, छतरपुर
९. श्री बहादुर सिंह चन्देल अध्यक्ष, म.प्र. कृ. और ग्रा. वि. बैंक छतरपुर
१०. श्री बहादुर सिंह बुन्देला, अध्यक्ष, जनपद राजनगर
११. श्री स्वरूपचन्द्र जैन, छतरपुर
१२. श्रीमती चन्द्रप्रभा कोरी
१३. सुश्री उमा यादव, पूर्व विधायक, छतरपुर
१४. श्री राजेश महतों, अध्यक्ष, सद्भाव नागरिक बैंक, छतरपुर
१५. श्री जगदीश तिवारी, एडवोकेट, छतरपुर
१६. श्री दिनेश जैन अध्यक्ष, व्यापारी महासंघ, छतरपुर
१७. सुश्री ऊषा सोनी, राजनगर
१८. श्री राम सेवक अग्रवाल, बसारी

स्वागत समिति :

१. श्रीयुत श्रीनिवास शुक्ल, छतरपुर
२. श्री दिवान त्रिलोक सिंह, बसारी
३. प्रो. के.डी. मिश्र प्राचार्य, महाराजा कालेज, छतरपुर
४. श्री गंधर्व सिंह गौर, जिला शिक्षा अधिकारी, छतरपुर
५. श्री देवेन्द्र प्रताप सिंह, बसारी
६. श्री भारत कृष्ण देव बुन्देला
७. श्री भवानीदीन मिश्रा, बृजपुरा
८. श्री राजकपूर तिवारी, छतरपुर
९. श्री केदारनाथ अग्रवाल, बसारी
१०. श्री शारदा प्रसाद शुक्ला, बसारी

खेलकूद व्यवस्था समिति :

१. श्री संजय सिंह, छतरपुर
२. श्री आदित्य दुबे, बसारी
३. श्री पर्वत सिंह, बसारी
४. श्री शरवत अली, बसारी
५. श्री प्रदीप अबिद्रा, जिला खेलकूद अधिकारी छतरपुर
६. श्री जानकी प्रसाद विश्वकर्मा, छतरपुर
७. श्री अशोक नायडू, छतरपुर
८. श्री कल्याण सिंह चौहान, छतरपुर

कृषि मेला समिति :

१. श्री धनीराम पटेल, उपाध्यक्ष, जिला पंचायत छतरपुर
२. श्री डीलमणि सिंह, अध्यक्ष, कृषि मण्डी छतरपुर
३. श्री चन्द्रभान सिंह यादव, उपाध्यक्ष जनपद छतरपुर
४. श्री मनोज त्रिवेदी, छतरपुर
५. श्री प्रभात अग्रवाल, छतरपुर
६. श्री पुष्पेन्द्र सिंह 'पप्पू राजा'

जूरी आफ अपील (खेल कूद) :

१. श्री त्रिलोक सिंह, बसारी
२. श्री भारत कृष्ण देव, बसारी
३. श्री छोटे खान क्रीड़ा अधिकारी, छतरपुर
४. श्री सुरेश जैन, पी.टी.आई., छतरपुर
५. श्री भारत भूषण मिश्रा, छतरपुर

सांस्कृतिक आयोजन समिति :

१. श्री राकेश शुक्ला, पत्रकार, छतरपुर
२. श्री देशराज पटैरिया, छतरपुर
३. श्री अजय अवस्थी, खजुराहो
४. श्री बहादुर सिंह परमार, छतरपुर
५. श्रीमती उर्मिला पाण्डेय
६. श्री जितेन्द्र सिंह 'जित्तू', छतरपुर
७. श्री बी.एन. वर्मा, प्राचार्य बसारी
८. डॉ. मुराद अली, छतरपुर
९. श्री प्रमोद दीक्षित, संवाददाता नवभारत, छतरपुर
१०. श्री बद्री प्रसाद खरे निरंकार, छतरपुर

पंजीयन समिति :

१. श्री राममूर्ति नामदेव, बसारी
२. श्री कृपाराम पटेल, बसारी
३. श्री महेन्द्र शुक्ला, बसारी
४. श्री बीरेन्द्र खरे, बसारी
५. श्री नीलकण्ठ पटेल, कर्री

प्रचार प्रसार समिति :

१. श्री विनीत खरे
२. श्री देवेन्दु पहारिया
३. डॉ. रज्जब खान
४. श्री श्याम अग्रवाल
५. श्री भरत श्रीवास्तव
६. श्री ओम प्रकाश अग्रवाल
७. श्री हरि प्रकाश अग्रवाल
८. डॉ. अजय दोसाज
९. श्री रविन्द्र व्यास
१०. श्री अब्दुल रसीद खान
११. श्री अशोक नायडू
१२. श्री धीरज चतुर्वेदी
१३. श्री दिलीप बुनकर
१४. श्री सुशील दुबे
१५. श्री कमलेश पाण्डेय
१६. रामावतार गुप्ता
१७. श्री हल्के चौरसिया
१८. श्री मन्नू लाल बेलदार
१९ श्री शंकर लाल सोनी एवं समस्त पत्रकार

बैलगाड़ी दौड़ समिति :

१. डॉ. घासीराम पटेल
२. श्री आर.एन. चौबे
३. श्री एच.एस. खरे
४. श्री लखन लाल पटेल
५. श्री आर.एस. सोलंकी
६. श्री सावनेर, उपयंत्री

अश्व नृत्य प्रतियोगिता समिति :

१. श्री रविन्द्र सिंह जी, गर्रोली
२. श्री बाबूराम चौरसिया, महाराजपुर
३. श्री रामबाबू ताम्रकार, छतरपुर
४. श्री लोकपाल सिंह परमार, छतरपुर
४. श्री आर. सिंह खजुराहो
५. श्री .... यादव, खजुराहो
६. श्री मथुरा यादव, बसारी
७. श्री मन्नू लाल यादव, बसारी

कुश्ती प्रभारी :

१. श्री रफीक पहलवान, अतर्रा
२. श्री मातादीन पहलवान, राजनगर
३. श्री घासीराम साहू, छतरपुर
४. श्री लुकमान खान उर्फ मैनू

पुरस्कार वितरण समिति :

१. श्री सुरेन्द्र अग्रवाल, छतरपुर
२. श्री सूर्यप्रताप सिंह 'चीनी राजा'
३. डॉ. एम.एल. पिपरसानिया
४. डॉ. जगत सिंह परिहार
५. श्री सईद बख्श खैयाम
६. श्री लखन लाल असाटी
७. श्री श्याम खरे, छतरपुर
८. श्री अजय खरे, छतरपुर
९. श्री श्रीकान्त शर्मा
१०. श्री प्रतीक खरे

स्क्रीनिंग कमेटी :

१. डॉ. के.एल. पटेल
२. श्री जगदीश रावत, छतरपुर
३. श्री द्वारका प्रसाद शुक्ला, कदारी
४. श्री परशुराम शुक्ला, पहरा
५. श्री धनीराम पटेल, बसारी

मंच निर्माण प्रभारी :

१. श्री अनिल आठिया, विदिशा
२. श्री प्रेमकिशोर खरे, छतरपुर
३. श्री अजमत अली, छतरपुर
४. श्री कमलेश मिश्रा, छतरपुर
५. श्री दिलीप पिपरसानिया, छतरपुर
६. श्री अनिल वर्मा, टिकरी

बुन्देली पोशाक प्रतियोगिता प्रभारी :

१. श्री बृजेन्द्र सिंह उर्फ मामाजी, खजुराहो
२. श्री योगेन्द्र प्रताप सिंह एडवोकेट, छतरपुर
३. श्री जीतेन्द्र सिंह जित्तू, छतरपुर
४. श्री प्रमोद खरे, पत्रकार छतरपुर
५. श्री वेदप्रकाश चतुर्वेदी, छतरपुर
६. श्री केशव शर्मा, छतरपुर
७. श्री रवीन्द्र सोनकिया, छतरपुर
८. श्री नीरज खरे, छतरपुर

बुन्देली नाटक प्रतियोगिता प्रभारी :

१. श्री हशमत छतरपुरी
२. श्री अजमत अली
३. श्री अमरनाथ व्यास
४. श्री रमेश खरे 'पंक...
५. श्री शिवेन्दु शुक्ला, छतरपुर

स्मारिका समिति :

१. डॉ. बहादुर सिंह परमार, छतरपुर
२. डॉ. कुन्जीलाल पटेल, छतरपुर
३. डॉ. हरिसिंह घोष, छतरपुर

बुन्देलखण्ड के सपूत जिन्होंने बुन्देलखण्डवासियों को उनके अधिकार हेतु जागृत किया :

स्व. श्री शंकरलाल मेहरोत्रा का संक्षिप्त परिचय

— अरविन्द यादव

* श्री शंकरलाल मेहरोत्रा का जन्म ९ मार्च १९४८ को हुआ तथा देहावसान २२ नवम्बर २००१ को हुआ।
* आप प्रख्यात व्यवसायी उद्योगपति होने के साथ महान् समाजसेवी व बुन्देलखण्ड मुक्ति मोर्चा के संस्थापक रहे।
* १९८० में झांसी ललितपुर लोकसभा क्षेत्र से कांग्रेस 'अर्श' से चुनाव लड़ा।
* १९८३ से १९८८ तक नगर पालिका परिषद नौगांव के अध्यक्ष रहे जिनके कार्यकाल में नगर पालिका का टाउन हाल व कार्यालय भवन का निर्माण हुआ। इसके साथ इन्दिरा मार्केट को बनवाने के अलावा आपने कार्यालय में उद्यान निर्माण कराया।
* १९८९ में बुन्देलखण्ड राज्य की मांग को लेकर बुन्देलखण्ड मुक्ति मोर्चा का नौगांव मे गठन करते हुए इसके संयोजक बने। इसके बाद सफलतापूर्वक मोर्चे का संचालन किया व १९९० में विधिवत कार्यकारिणी की घोषणा में बुन्देलखण्ड मुक्तिमोर्चा के राष्ट्रीय महामंत्री बने। पूर्व सांसद लक्ष्मीनारायण नायक अध्यक्ष बनाये गये।
* १९८९ से सफलतापूर्वक बुन्देलखण्ड मुक्तिमोर्चा व राज्य निर्माण आन्दोलन के प्रणेता व नेतृत्वकर्ता रहे तथा पहले संयोजक फिर महामंत्री और अंत में अध्यक्ष पद पर रहकर अपने दायित्व का भलीप्रकार निर्वहन किया। अनेक बार भोपाल, लखनऊ, दिल्ली, झांसी, ललितपुर, टीकमगढ़ आदि में जेल गये।
* १९९५ में इनके नेतृत्व में संसद की लोकसभा में ९ आंदोलनकारियों ने सुरक्षाघेरा तोड़कर सदन में पर्चे फेंके व दण्डित किये गये।
* १९९६ में बुन्देलखण्ड मुक्तिमोर्चा से झांसी विधानसभा क्षेत्र से चुनाव लड़ा।
* १९९७ में छोटे राज्यों की मांग करने वाले १२ संगठनों का झांसी में महासम्मेलन बुलाया तथा इनका एक महासंघ 'छोटे राज्य निर्माण संघर्ष समिति' का गठन किया। पूर्व केन्द्रीय मंत्री अजित सिंह संयोजक, पूर्व राज्यपाल मधुकर दिघे अध्यक्ष व शंकरलाल मेहरोत्रा महामंत्री बनाये गये। छत्तीसगढ़, उत्तराखण्ड, झारखण्ड, गोरखालैण्ड, बोडोलैण्ड, विदर्भ, तैलंगाना आदि इसके प्रमुख घटक संगठन थे। इनमें से तीन अब राज्य बन गये हैं।
* १९९८ में बुन्देलखण्ड मुक्तिमोर्चा के अध्यक्ष बनाये गये।
* १९९८ में आन्दोलन का नेतृत्व करने के एवज में राष्ट्रीय सुरक्षा कानून के तहत ६ माह जेल में रहे।
* बुन्देलखण्ड की जनता की आशाओं के केन्द्र रहे और अन्तिम सांस तक जय बुन्देलखण्ड का नारा जुबान पर रहा। सैकड़ों रैलियों, पदयात्राओं, सभाओं का आयोजन कर राज्य आन्दोलन का नेतृत्व किया।

बुन्देली उत्सव एवं महाराजा छत्रसाल मेमोरियल टूर्नमिन्ट के आयोजन हेतु

ग्राम बसारी में कार्य हेतु समितियां

कार्यक्रम में सभी समिति के सदस्यों के क्रियान्वयन हेतु नियंत्रण समिति–
श्री दिवान त्रिलोक सिंह बुन्देला, प्रभारी
श्री भारत कृष्णदेव सिंह बुन्देला
श्री पर्वत सिंह बुन्देला
श्री शारदा प्रसाद शुक्ला

स्वागत व्यवस्था हेतु समिति –
श्री रामसेवक अग्रवाल
डॉ. अवधकिशोर अवस्थी
श्री संतोष अग्रवाल
डॉ. मुराद अली
डॉ. जगदीश अरजरिया
श्री केदारनाथ अग्रवाल
श्री वृन्दावन रैकवार
श्री सिब्बा रैकवार

कृषि मेला समिति –
श्री प्रेमनारायण रूसिया
श्री आनंद शुक्ला
श्री जुगल किशोर गुप्ता
श्री सुरेश साहू
श्री बाबा अग्रवाल (महेन्द्रा ट्रैक्टर्स)
श्री असाटी जी (मैसी ट्रैक्टर्स)
श्री टंडन जी (टंडन बीज भण्डार)
श्री नन्नेभैया पटेल
श्री रमेश चौरसिया
श्री मोहन चौरसिया

भोजन व्यवस्था एवं कूपन वितरण हेतु समिति –
श्री महेश प्रसाद अग्रवाल (पम्मू) प्रभारी
श्री किशोरी लाल अग्रवाल, प्रभारी
श्री धर्मेन्द्र खरे, सहायक
श्री संजय खरे
श्री मनोज अग्रवाल

मंच व्यवस्था समिति,
श्री शोभालाल गुप्ता, प्रभारी
श्री अच्छेलाल यादव, प्रभारी
श्री मुल्ली यादव
श्री लली गड़रिया
श्री हीरा गड़रिया
श्री बलराम अहिरवा
श्री बबलू तनय मठोर अहिरवार
श्री राकेश तनय पंचू अहिरवार
श्री बिल्लू तनय सूरा अहिरवार
श्री पन्ना तनय सरिया अहिरवार
श्री मंगू तनय पिरवा अहिरवार

गेट व्यवस्था व झंडा बैनर समिति –
श्री शीतल प्रसाद रावत, प्रभारी
श्री महादेव यादव, प्रभारी
श्री सुन्दर तनय सबला अहिरवार
श्री हीरा तनय दुल्ला अहिरवार
श्री सरियां तनय शुकला अहिरवार
श्री बाला अहिरवार
श्री लख्खू तनय पंचा अहिरवार
श्री पप्पू तनय कन्दू अहिरवार
श्री किशोरी काछी

चाय–नाश्ता समिति (जलपान व्यवस्था समिति) –
श्री सुरेश अग्रवाल (पप्पू) प्रभारी
श्री शशिकान्त शर्मा, प्रभारी
श्री प्रकाश रैकवार
श्री राजेश रैकवार
श्री संतोष रैकवार

मेला व्यवस्था समिति –
श्री बाबू लाल ख़रे, प्रभारी
श्री सरजू यादव, प्रभारी
श्री अनारी लाल लोधी
श्री पुन्ना अहिरवार
श्री छोटा तनय रामदास अहिरवार
श्री भज्जू तनय बिहारी अहिरवार
श्री रमेश तनय बिरवा अहिरवार
श्री पंचा तनय पिरवा कोंदर

प्रदर्शनी व्यवस्था समिति –
श्री जयप्रकाश अग्रवाल, प्रभारी
श्री महेश सोनी
श्री रामस्वरूप राव
श्री बिहारी लाल अहिरवार
श्री धनुवां कोंदर

विद्युत व्यवस्था समिति –
श्री लल्ली जैन (समस्त व्यवस्था)
श्री ऋतेश अग्रवाल
श्री सुनील सोनी
श्री रामचरण रैकवार
श्री नत्थू कुशवाहा
श्री लक्ष्मी रैक़वार
श्री सौकीलाल कोंदर
श्री पंचू तनय हलकैंया कोंदर

आवास व्यवस्था समिति (स्कूल के तीन कमरों में) –
श्री लखन यादव, प्रभारी
श्री परमानन्द यादव, प्रभारी
श्री रामस्वरूप (दस्सू) रैकवार
श्री राजू तनय बल्दुआ रैकवार
श्री कुन्जी तनय भन्ता अहिरवार
श्री कल्लू तनय लल्लू अहिरवार
श्री मुकेश विश्वकर्मा (भोजन व्यवस्था)
श्री रामपाल सिंह (भोजन व्यवस्था)

आवास व्यवस्था समिति (स्कूल के अन्य तीन कमरों में) –
श्री वृन्द्रावन राजपूत (घस्सू) प्रभारी
श्री इद्दूखां, प्रभारी
श्री शिब्बू रैकवार (हलकैया)
श्री कलन तनय श्री सेवा लाल रैकवार
श्री मुन्नी लाल तनय पंचा अहिरवार
श्री देशराज अहिरवार

श्री बाबूलाल कुशवाहा (भोजन व्यवस्था)
श्री रामकुमार यादव (भोजन व्यवस्था)

आवास व्यवस्था समिति
(आर.आई.क्वार्टर में) —
श्री बाबू लाल यादव, प्रभारी
श्री भागवत राजपूत, प्रभारी
श्री कल्ला रैकवार
श्री रमेश तनय हरजुआ अहिरवार

आवास व्यवस्था समिति
(पंचायत भवन में) —
श्री प्रभु यादव, प्रभारी
श्री शिब्बा रैकवार (पुन्नू)
श्री झुक्की अहिरवार

आवास व्यवस्था समिति
(न्यू कार्यालय भवन) —
श्री राजू तनय सरपटियां काछी, प्रभारी
श्री विजय रैकवार

आवास व्यवस्था समिति
(मोटर स्टैण्ड पर नये भवन में महिला आवास)
श्रीमती दुर्गा चौरसिया
कु. अनीता सोनी
श्री राकेश अग्रवाल (चाय, नास्ता,
श्री सुरेश पटेल, भोजन व्यवस्था)
श्री सन्तू रैकवार
श्री नन्नाई कोंदर

टेंट व्यवस्था समिति —
श्री अखिलेश्वर प्रसाद चौबे, प्रभारी
श्री मिलन श्रीवास, प्रभारी
श्री रामप्रसाद यादव, सहायक
श्री सुरेश तनय तुलसीदास अहिरवार

अश्वनृत्य व्यवस्था समिति —
श्री आर. सिंह, प्रभारी
श्री मन्नू यादव, सहायक
श्री मथुरा यादव, सहायक
श्री मन्नू तनय गुट्टवा गड़रिया
श्री खुमान धोबी

श्री रघुनंदन साहू

बैलगाड़ी दौड़ व्यवस्था समिति —
श्री स्वामी प्रसाद अवस्थी, पटवारी
श्री मथुरा प्रसाद पटेल
श्री गोकुल यादव
श्री परसू कुशवाहा
श्री करंजुआ अहिरवार
श्री बन्दू यादव तनय गुटियां अहिरवार
श्री शिवदीना अहिरवार
श्री रतुआ अहिरवार

कम्प्यूटर एवं पत्रलेखन समिति —
श्री महेन्द्र शुक्ला, प्रभारी
श्री आदित्य दुबे, प्रभारी
श्री अरूण शुक्ला, सहायक
श्री मंगल सिंह बुन्देला, सहायक

स्टेडियम में रात्रि सुरक्षा व्यवस्था समिति—
श्री सरमना चौकीदार
श्री मातादीन अहिरवार
श्री द्वारिका अहिरवार
श्री हीरापाल
श्री टुड्डी कोंदर

खेल व्यवस्था समिति (कबड्डी) —
श्री शरबत अली, प्रभारी
डॉ. बंगाली, प्रभारी
श्री कन्हैया लाल यादव, सहायक
श्री शहीद खान
श्री लखन प्रजापति
श्री मुकेश साहू
श्री हेमचन्द्र यादव (महादेव)
श्री मातादीन अहिरवार
श्री रामस्वरूप रैकवार
श्री सुरेन्द्र रैकवार
श्री राकेश पटेल (कल्लू)

खेल व्यवस्था समिति (वालीबाल) —
श्री पर्वत सिंह बुन्देला, प्रभारी
श्री संजय सिंह, प्रभारी
श्री एम.डी. विश्वकर्मा, सहायक

श्री महेन्द्र विश्वकर्मा
श्री सिराज खान
श्री भागवत पटेल, कर्री
श्री दुर्गा अहिरवार
श्री मुन्ना लाल अहिरवार
श्री दिनेश रैकवार
श्री कमलेश कोरी
श्री सुरेन्द्र सिंह बुन्देला
श्री नीरज शुक्ला

खेलकूद व्यवस्था समिति
(दौड़, कूद)—
श्री पुष्पेन्द्र सिंह बघेल, प्रभारी
श्री आदित्य दुबे, प्रभारी
श्री छोटे खान
श्री विश्वनाथ सिंह बुन्देला
श्री अशोक जोशी
श्री राजू काछी तनय हरी
श्री धर्मेन्द्र राजपूत
श्री खूबचन्द्र यादच
श्री हरिचरण अनुरागी

अखाड़ा व्यवस्था समिति —
श्री मातादीन रैकवार

चौपर व्यवस्था समिति —
पं. श्री गोकुल प्रसाद शुक्ला
श्री मूलचन्द्र जोशी
श्री सुल्ली रैकवार

कार्यालय प्रभारी —
श्री नवल किशोर अग्रवाल, प्रभारी
श्री महेश राजपूत
श्री गयाप्रसाद साहू

पंजीयन समिति —
श्री बी.एन. वर्मा, प्राचार्य, प्रभारी
श्री राममूर्ति नामदेव
श्री कृपाराम पटेल
श्री महेन्द्र शुक्ला
श्री काशीप्रसाद प्रजापति

□



अपनी माटी मीठे बोल : आकाशवाणी छतरपुर

— गुलाब चन्द (भा.प्र.से. का)

०७ अगस्त १९७६ का दिन। बुन्देलखण्ड के लिए गौरव और खुशी का दिन। ''बहुजन हिताय बहुजन सुखाय'' का महत्वपूर्ण ध्येय लेकर बुन्देलखण्ड के हृदय छतरपुर में आकाशवाणी का पहला स्वर गूँजा।

आकाशवाणी केन्द्र छतरपुर का शिलान्यास भारत सरकार के तत्कालीन सूचना और प्रसारण राज्यमंत्री श्री इन्द्रकुमार गुजराल ने दिनांक १६ मई १९७० को किया था। ६ वर्ष पश्चात् यानी ०७ अगस्त १९७६ को इस केन्द्र का उद्घाटन मध्य प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री श्यामाचरण शुक्ल के कर–कमलों द्वारा किया गया। अध्यक्षता तत्कालीन सूचना–प्रसारण मंत्री श्री विद्याचरण शुक्ल ने की थी। विशिष्ट अतिथि थे आकाशवाणी के महानिदेशक श्री पी.सी. चटर्जी और खजुराहो लोकसभा क्षेत्र की सांसद श्रीमती विद्यावती चतुर्वेदी। आकाशवाणी छतरपुर की स्थापना के लिए श्रीमती विद्यावती चतुर्वेदी ने जो प्रयास किया वह स्तुत्य है।

इस केन्द्र का कार्यक्षेत्र राज्य की सीमाओं में कैद न होते हुए म.प्र. और उ.प्र. के कुल ११ ज़िलों तक फैला हुआ है। उ.प्र. के छह ज़िले हैं — महोबा, बांदा, हमीरपुर, झांसी, ललितपुर, जालौन तथा म.प्र. के पांच ज़िले हैं — छतरपुर, पन्ना, दमोह, टीकमगढ़ और सागर।

आकाशवाणी छतरपुर ने ०७ अगस्त १९७६ से ही बुन्देली कार्यक्रमों पर अधिक ध्यान दिया। पहले दिन से ही सबसे ज़्यादा समय 'ग्राम सभा' को ही दिया गया। 'ग्राम सभा' यानी किसानों का अपना कार्यक्रम, ग्रामीणों की सहज बुन्देली बोली और खेत–खलिहान का कार्यक्रम। 'ग्राम सभा' कार्यक्रम आज भी उतना लोकप्रिय है जितना कि आज से २५ वर्ष पहले था। इतना ही नहीं हम आज भी निरंतर लोकप्रियता में दिनों–दिन बढ़ोतरी कर रहे हैं। 'ग्राम सभा' में प्रसारित होने वाली भेंटवार्ताओं ने किसानों की सदा नई राह दिखाई है। बुन्देली कवितापाठ, बुन्देली नाटक और बुन्देली धारावाहिकों ने बुन्देलखण्ड के पूरे जन समूह का भरपूर मनोरंजन किया, ज्ञान बढ़ाया और नई पीढ़ी को बुन्देली संस्कृति से परिचित कराया। 'मानस प्रवचन' तो अत्यन्त ही लोकप्रिय हुआ है।

आकाशवाणी छतरपुर ने बुन्देली लोकगीतों से अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई हैं। प्रतिदिन यहां से बुन्देली लोकगीतों का प्रसारण होता आ रहा है। इस केन्द्र से प्रसारित होने वाले लोकगीत श्रोताओं की ज़बान पर चढ़े हैं तभी तो आज ''लोकरंजन'' नामक हमारे साप्ताहिक फरमाइशी (फोन पर) कार्यक्रम में श्रोताओं की बाढ़ सी आ गई है। इस केन्द्र ने कई कलाकारों को नई ऊचाइयाँ प्रदान की। खासकर बुन्देली कवियों और बुन्देली गायक–गायिकाओं को तो ऊँचाई के शिखर पर पहुंचाया है। बुन्देली माटी में जो प्रतिभाएं थीं उन्हें तराशकर सामने लाने का काम किया आकाशवाणी छतरपुर ने। चुन्नी लाल रैकवार, देशराज पटैरिया, मैयादीन तिवारी, उर्मिला पाण्डे, लक्ष्मी त्रिपाठी, हरगोविन्द विश्व, बद्री प्रसाद खरे 'निरंकार', मालती सिंह परमार, ब्रजलता मिश्र, शकुन्तला सक्सेना से लेकर रज्जू राजा, चिरइया तक की नई पीढ़ी को आकाशवाणी छतरपुर ने आगे बढ़ाने में भरपूर प्रोत्साहित किया।

इस केन्द्र ने लोकप्रिय कवि ईसुरी और गंगाधर के फागों को जनता तक मनोरंजक ढंग से पहुंचाया है। साथ ही बुन्देलखण्ड से जुड़े संस्कार गीतों, बधाई, दिवारी, अचरी, राई, आल्हा, ढिमरयाई, कछियाई, धुबियाई, कहरवा, ख्याल आदि लोकगीतों की विधाओं से जनमानस को परिचित कराया। सुअटा और मामुलिया जैसे खेल गीतों ने लोक जीवन में आनंद का संचार किया है। इसके अलावा बुन्देलखण्ड के महत्वपूर्ण किले ओरछा, झांसी, ललितपुर, महोबा, चरखारी और चन्द्रनगर आदि के पुरातात्विक वैभव पर आधारित वार्ताओं, रूपकों से बुन्देलखण्ड के सुनहरे अतीत का सम्मान किया है।

बुन्देली नाटक और झलकी के क्षेत्र में हमने कई अविस्मरणीय कार्यक्रम श्रोताओं तक पहुंचाए हैं। 'चीलगाड़ी' एक ऐसा अनूठा नाटक है जो एकदम सहज बुन्देली में शिक्षाप्रद बन पड़ा है। इस नाटक की फरमाइशें आज भी इस केन्द्र को मिलती हैं। लगभग २० वर्षों के बाद भी किसी बुन्देली नाटक को सुनने की ख्वाहिश क्या जाहिर करती है, आप खुद इसका अंदाजा लगा सकते हैं। 'बैरू भौजी' 'उरझन–सुरझन' 'आल्हा–ऊदल' जैसे बुन्देली धारावाहिकों को भला कोई भूल सकता है? इनमें बुन्देली संस्कृति का वह रूप दिखाया गया है जो स्वाभाविक है और जिसे हम भूलते जा रहे थे। खांटी बुन्देली की सोंधी महक वाली अपनी माटी की बोली में कार्यक्रमों को तैयार कर श्रोताओं के लिए परोसते आ रहे हैं। 'किस्सा एक गांव को' हमाए गांव में 'अथाई पे' आदि कार्यक्रमों को सुनकर आप भी यही कहेंगे। बुन्देली में तैयार 'गिली–गिली फू' जैसे रेडियो वृत्त रूपक को इस केन्द्र ने बुन्देली में तैयार किया जिसे आकाशवाणी वार्षिक पुरस्कार प्रतियोगिता में प्रशस्ति पत्र प्राप्त हुआ। केन्द्र की रजत जयन्ती के उपलक्ष्य में पिछले वर्ष पहली बार 'रजतवाणी' स्मारिका का प्रकाशन केन्द्र ने किया जिसमें बुन्देली और हिन्दी की रचनाओं एवं यादगार के क्षणों का समावेश किया।

हमारे केन्द्र पर स्थानीय एवं देश के विभिन्न क्षेत्रों में आए गैर हिन्दी भाषी अधिकारियों ने भी बुन्देली कला, संगीत, साहित्य और संस्कृति की सरिता बहाने में कोई कोताही नहीं की है बल्कि अपने कार्यकाल में कीर्तिमान स्थापित किए और कर रहे हैं। श्रोताओं हेतु कार्यक्रम रूपी सुरुचि भोजन–व्यंजन तैयार करने से लेकर उसे बड़ी नफ़ासत व अदब से परोसने तक का काम हमारे उद्घोषक–कम्पीयर बखूबी करते आ रहे हैं जिनकी प्रशंसा हमेशा मिलती रहती है।

बुन्देली उत्सव में इस केन्द्र के अधिकारियों, कर्मचारियों और नैमित्तिक कलाकारों की लगातार प्रतिभागिता इस बात की परिचायिका है कि हम बुन्देली संस्कृति के प्रति अनुराग रखते हैं और इसकी महत्ता की श्रीवृद्धि में प्रयासरत हैं।

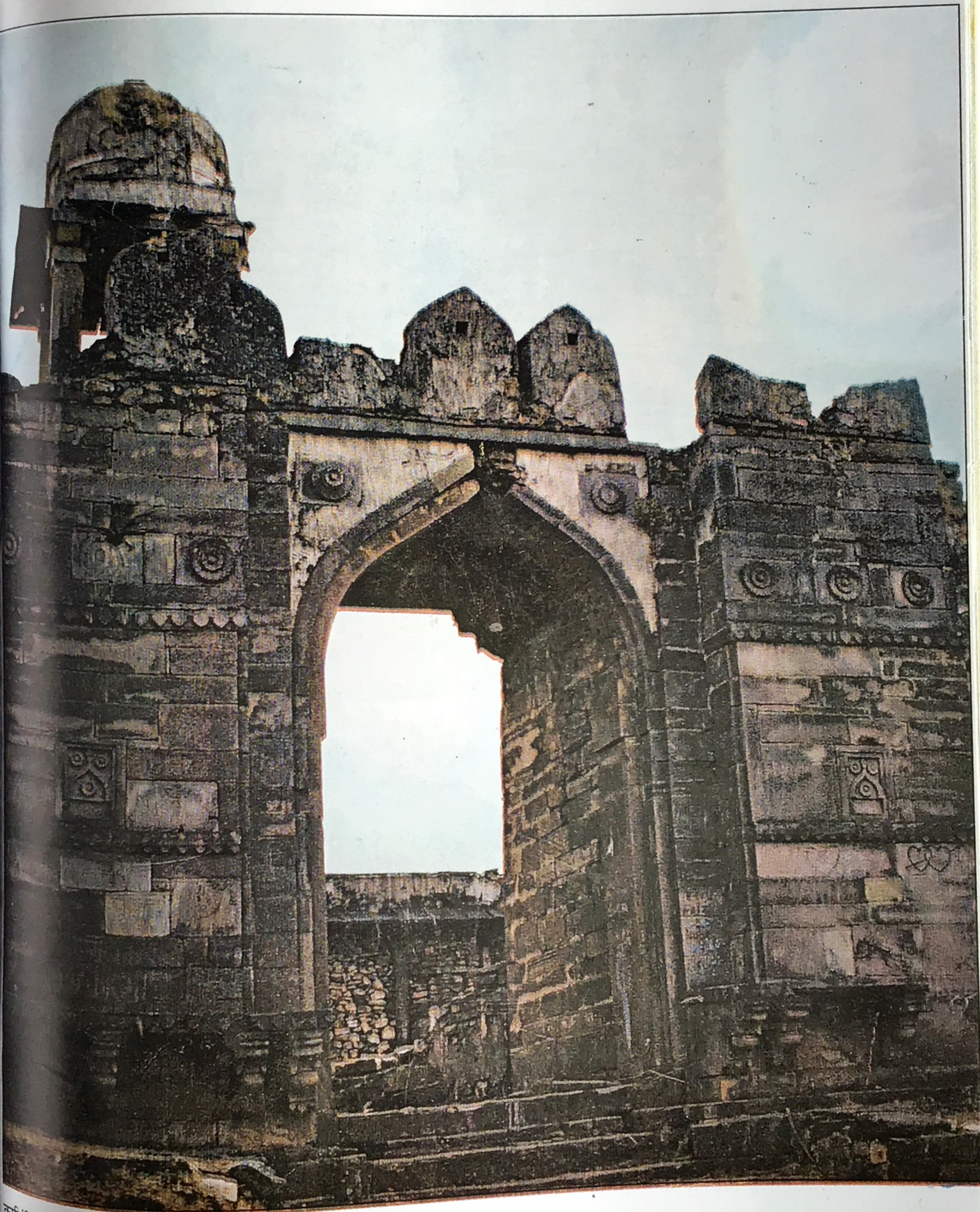
और हां, ४४४.४ मीटर यानी ६७५ कि.हर्टज़ से प्रसारित अनेक लोकगीत आकाशवाणी नई दिल्ली एवं बी.बी.सी. रेडियो से भी प्रसारित किये गये हैं। आशय यह है कि बुन्देली संस्कृति को राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पहुंचाने का सार्थक प्रयास आकाशवाणी छतरपुर का है। इस प्रकार आकाशवाणी छतरपुर एक ऐसा दर्पण है जिसमें बुन्देलखण्ड के सांस्कृतिक वैभव का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। इसकी ध्वनितरगें मुग्धकारी हैं।

वस्तुत: बुन्देली भाषा, संस्कृति, कला, साहित्य, संगीत के विकास–अनुष्ठान में लगे–जुड़े सबका अभिवादन करता यह केन्द्र एक महत् यज्ञ में समिधा सि[द्ध] हो, यही हमारी सफलता है।

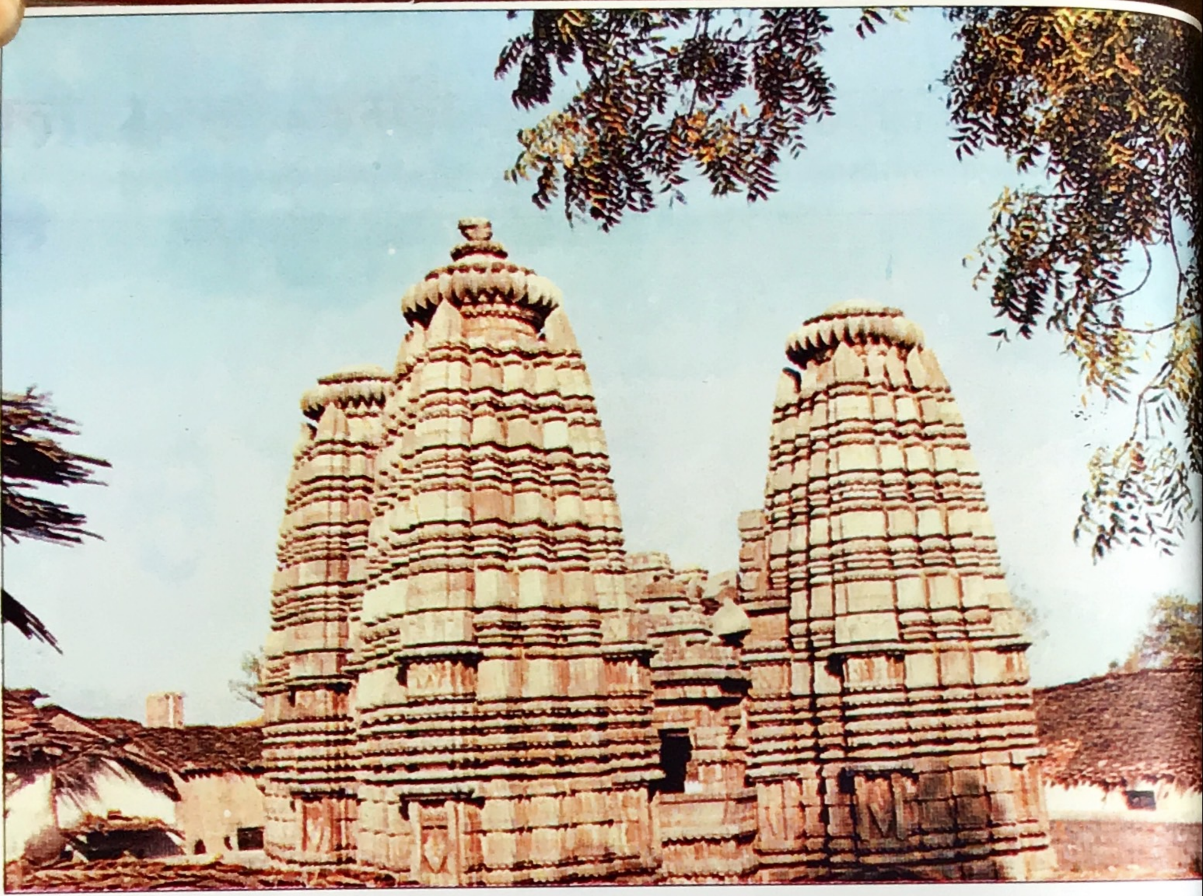
कहना नहीं होगा, आकाशवाणी छतरपुर, गाँव–गँवई के गीत बुन्देली संस्कृति, सांस्कृतिक विरासत और माटी की महक को संभालकर अक्षुण्ण रखने में दिन–रात अपने प्रसारणों से सजग तत्पर है।

— केन्द्र निदेशक, आकाशवाणी, छतरपुर (म.प्र.)

बुन्देलखण्ड गौरव-चित्रावलि



कालिंजर दुर्ग का प्रवेश द्वार



मकरबई मन्दिर



नाथूराम माहौर, रामचरन हयारण 'मित्र' आदि भी अच्छे लगे।

◆ *अबै तक कित्तौ लिखो, कित्तौ, छपो, कित्तौ अनछपो रै गओ आदि?*

उत्तर — भइया हो! भौतई लिखो औ रचो। फुटकर कवितायें तौ लगभग तीनक हजार सें ऊपर हुइयें। सोऊ गद्य–निबंध हजारक हुइयें। कायसें कै लखनऊ और छतरपुर आकाशवाणी से प्रसारण और पत्र–पत्रिकाओं में उनकौ खूब प्रकाशन भओ। किताबें कुल छोटी–बड़ी अठारह छप गईं। अबै तीन–चार तैयार धरीं। नाटक चार छपे। तुमाये दद्दा स्व. पं. हर प्रसाद जू शर्मा गुरसराय के मिडिल स्कूल के हैडमास्टर हते। हमने बालकन के लानें तीस एकांकी उनई की प्रेरणा से लिखे और मंचित करे। जौन अनछपो रै गओ सो बौ ज्यादा नईयां। कायसैं कै मोय प्रकाशित करवे कौ साधन मिलत रओ और मिलत जात। तौई लगभग आठ–दस पुस्तकें अबै छपवे खों धरीं। अगर जियत रओ तौ समेट कैं जैहों। मोरी प्रार्थना भी है —

''चाहत करन दूर सब गरदा, परी बुन्देली परदा।
विंध्या और वेतवन्ती सें, मांगत हों भर सरदा।।
'कलश' कलम कौं कछु दिनन खौं, करें शारदा बरदा।
बुंदेली सेवा के काजै, मांगत हौं आवरदा।।''

◆ *अपुन के लेखन में दाम्पत्य जीवन कित्तौ साधक, कित्तौ बाधक रओ?*

उत्तर — वाह भइया! वाह! अगर तुमाई जे भौजाई हमाओ संग न देतीं तौ हम कछु न कर पाऊते। मैंने उनके लानें सोऊ एक किताब लिखी है। जब वे चलाये (गौने) में आईं तीं तौ मैने सुहागरात में बई किताब — 'शोभा–माधुरी' हस्तलिखित भेंट करी ती। वा रचना भौतई लावण्यमई है। ओई रचना के फलस्वरूप हमायें पैला जो विन्नू भई, उनकौ नाव हमने माधुरी धर दओ। इत्तफाक सें उनें जो पति मिले, उनकौ नाव शोभाराम धरो मिल गओ। वे इंजीनियर हैं। आप जान लो हमाव दाम्पत्य जीवन साधक रओ, बाधक तनकऊ नई। आजऊं बे हमाए लोक–साहित्य के लेखन में आधी से ज्यादा लेखिका और मार्गदर्शिका हैं। आप जा समझ लो कै मोरौ सबरौ लोकसाहित्य उनई ने आय लिखवाओ है। वे धन्य है।

◆ *सबसे नौनी रचना/कृति अपुन खों कौन सी लगत?*

उत्तर— कैसें औ का कँय अपुन सें? रचनायें औ कृतियों तौ 'संतान से' भी प्यारी लगती। उनमें का भेदभाव! अब अपुन नें पूंछो अई है तौ बतावनें तौ परै अई। सो मैं जौ कँय चाउत — 'मोय तौ — 'केशव काव्य–कामनी' भौतई अच्छी लगत। मैं रायप्रवीण औ केशव खों तौ 'दिव्यदेव' की तरां मानत। रोज प्रणाम करत।

◆ *का अपुन खों लेखन के काम में कछु दिक्कतें आईं? उनें कैसे निनवारो?*

उत्तर— लेखन के काम में मोय कबहूँ दिक्कत नई आई, न आज आउत। मन भओ, लेखनी उठाई और एक अंश पूरौ कर कैंई छोड़ो; चाय भली ठंडी हो जाए। चाय पियत जात, कछु पढ़त जात, खात जात और लिखत जात। ऐसें भौत आनंद आऊत। 'केशव–काव्य–कामनी' तौ मैंने इक्कीस रातन् में, बेहोशी में रची। बाद में उयै सुधारौ और संवारौ। राय प्रवीण आऊत ती रात में। मैंने ऊ पुस्तक में लिखौ है —

''जौ मैं कहौ काव्य अपनौ, तो साहित्तिक अपमाना।
जी लाइक मैं नई कायखों, करौ विरथ अभिमाना।।
रात विरातन उनकी बोली कौ, जो सपने में देखो।
सोई 'कलश' ने काव्य रूप में करो, रचो, श्रुति लेखौ।।

◆ *अतीत खों निहार अथवा याद कर कैसो लगत? संक्षेप में बतायें।*

उत्तर— मैं अतीत के बारे में पूर्ण संतुष्ट हूँ। मृत्यु की बेरां पै मोय हँसी आऊत। वे 'मृत्यु देवी' अई तौ मोय पाल रई हैं। कबहुँ–कबहुँ तौ ऐसो भासन लगत कै वे कै रई — 'अभै और तनक ऊक जाव, जौ काम तौ पूरौ कर लेव। आप सांची मानौ। कैऊ दार आई, जई कै गई। मैं मौत खों न तौ डरात हों, न हारत हों और न बेचैन होत।'

◆ *अपुन लिखवे के लानें कौन सौ समय चुनत? रोज कितनौ लिखत? विषय और शीर्षक कैसें तै करत?*

उत्तर— यानी दिनचर्या? दिन तौ पतौ अई नई चलत कै कैसें विला जात। संक्षेप में — भोर ४ से ५ बजे तक शौच–मंजन आदि। ५–६ ध्यान–आराधना। ६–७ घूमबौ। ७–८ बच्चन कौ पढ़ावौ। ८–९ के बीच कलेऊ (चायपान) ९–१२ चिठियन कौ जुआब: चिट्ठी–पाती, लिखवौ। अपरान्ह १२–१ भोजन विश्राम। १–४ रचना लेखन–सृजन। ४–६ घर–गृहस्ती, खेत–खलियान। ६–८ जन–सम्पर्क। ८ बजें ब्यारी। तदुपरांत रात्रि विश्राम।

तनक में जा बात ऐसें कै सकत–जब जो सामने। मूड़े पर गओ सो तुरतंई कर डारो। लिखवौ रोजई होत–जब ऊनयाई सो उठा लई कलम और लिख डारो। समय कौ कछु नैया विषय चुनवे में नैक ऊ देर नई लगत। हाँ! शीर्षक धरवे में जरूर विलात सोचनें परत। कभऊँ–कभऊँ बेर–बेर बदलने भी परत।

◆ *अपुन नें पत्रकारिता और लेखन दोईअन में रुचि समान रूप सें लई। अबकी और तबकी परिस्थितियन में अपुन खों का फरक लगो? तनक में लिखाव।*

बुन्देली गजल :

ख्याल में

— साकेत सुमन चतुर्वेदी

आँख हैं पौरा बहावें, ओजू! तोरे ख्याल में
अब कछू न है पुसावें, ओजू! तोरे ख्याल में
तुम गये जबसें तबई सें यैबी हो गई है हवा
अपने संग–संग जी उड़ावें, ओजू! तोरे ख्याल में
सूक गई फसलें, जा जागां जी की राकर हो गई
झार–झंकर है दिखावें, ओजू! तोरे ख्याल में
आँग में चारे की कोंपें, अब खबीला सी खपें
मेंड़ पें जब पाँव जावें, ओजू! तोरे ख्याल में
दोऊ हाथन सें खुलककें, उड़ गए सुखकें सुआ
आज लों ऐंगर न आवें, ओजू! तोरे ख्याल में
प्रेम की नीचट कसन की एक एक लर खुल गई
कोऊँ न धीरज बढ़ावें, ओजू! तोरे ख्याल में
जी दिया सें और अंदियारों बढ़त हैगों 'सुमन'
ऊसें तों जुगनू है नौनी ओजू तोरे ख्याल में।

—७२१, ऐबटगंज, चित्रा चौराहा (झांसी) उ.प्र. □

दो कुण्डलियां

— कल्याणदास साहू 'पोषक'

नरदा की विनती करी, बखरी बैठे हार।
लाबर दौंदा नीच से, कोउ न पावै पार।।
कोउ न पावै पार, जमानौं है लबरन कौ।
नीति–न्याय की डार, लगौ छिदनाँ बर्रन कौ।।
मन पै स्वारथ लोभ, मोह–ईरषालु परदा।
'पोषक' बदबू देत, सबै निर्धन कौ नरदा।।

०० ०० ००

साँसे अब फाँकै करें, लाबरें लडुआ खाँय।
चापलूस की का कवैं, मन्द–मन्द मुस्काँय।।
मन्द–मन्द मुस्काँय, बनें कलयुगी विधाता।
झूठ, पाप, छल–कपट, नीति सें गैरौ नाता।।
'पोषक' फेंकैं रोज, मामा शकुनि–से पाँसे।
चाल–बाज की चाल, समझ सकवैं न साँसे।

— किले के पास, पृथ्वीपुर □

उत्तर— मोय जैसो अपुन ने कई, साहित्य–सृजन और पत्रकारिता दोईअन में रुचि हती सो गद्य–पद्य तौ जित्तौ–जो बनो सो लिखो अई और 'बुन्देली–वार्ता' साप्ताहिक कौ सम्पादन सोई लगभग २–३ दशक तक करो। इन दोऊ कामन–लेखन और पत्रकारिता में अबकी औ तबकी परिस्थितियन में भौत बदलाव आगओ। वर्तमान और अतीत के मानकों की दशा और दिशा में भौत अन्तर आ गओ। मूल्यन कौ अवमूल्यन भओ और शिक्षण–प्रशिक्षण, पत्रकारिता, लेखन आदि सबई में व्यवसायीकरण या कयें धन्धेबाजी भौत बढ़ रई, जो चिन्तनीय है। ई सें भारतीय संस्कृति दिनों–दिन लोप हो रई।

◆ *अबै तक मिले पुरस्कार और सम्मान संक्षेप में?*

उत्तर— जो पुरस्कार और सम्मान मोय अबै तक मिले, वे इस प्रकार हैं —

१. २६–१२–२००१ को बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी उ.प्र. का 'श्रेष्ठ एवं सर्वोत्तम हिन्दी सेवक उपाधि अलंकरण–राज्यपाल विष्णुकांत जी द्वारा'
२. यूनिसेफ और 'संयुक्त राष्ट्र संघ से विश्व हिन्दी सहस्त्राब्दी सम्मान तथा प्रशस्ति पत्र एवं स्वर्णपदक'
३. बुन्देलखण्ड शोध संस्थान, झांसी, हिन्दी शोध संस्थान, लखनऊ, छत्रसाल ट्रस्ट छतरपुर केशव शोध संस्थान, ओरछा, प्रज्ञा–सम्मान, कन्नौज आदि अनेक सम्मान।
४. विश्व हिन्दी सम्मेलन, नई दिल्ली में स्वर्णपदक।

◆ *और कौनऊ बात?*

उत्तर— बुन्देली भाषा–साहित्य को संविधान में मान्यता मिले तबई भौत नौनौ मोय लगहै। बस।

—मऊरानीपुर, (झांसी) उ.प्र. □

बुन्देलखण्ड के लोकोत्सव और नवरात्रि

— विंध्यकोकिल भैयालाल व्यास

बुन्देलखण्ड आदिकाल से भारतीय चिन्तन, संस्कृति, साधना, और सिद्धि का पावन भूमि भाग है। यह अपने आप में अपनी आरण्यक संस्कृति के साथ सबलता से जुड़े रहने का इतिहास संजोये है, यहां की वरदायनी नदी वेत्रवती का नाम वेदों में उल्लिखित है। इससे अधिक इस क्षेत्र की प्राचीनता का प्रभाव और क्या हो सकता है। नदी, नद, सर, सरोवर, हरीतिमा का यह क्षेत्र हमारे मानस पटल पर चित्रित चित्रकूट सा बना रहता है।

पग–पग पर तीर्थों का होना– उनके प्रति जन–मानस का अगाध श्रद्धा का जुड़ना इनके आँगनों में मेलों का लगना, सरिता–सरोवरों पर नित नये पर्वों के स्नानों, ध्यान धारणाओं का समागम यहां की अपनी विशेषता है। जो सनातन है।

साधना की स्थली यह बुन्देलखण्ड अपने इतिहास में साधकों के उनकी साधनाओं के और प्राप्त सिद्धियों के सार समेटे है। यहां का जनमानस स्त्री–पुरुष मर्यादाओं का, व्रतों का पालन अपना प्रथम कर्तव्य मानता है। व्रतों से प्राप्त फलों के सुखों का समाज का उल्लास–उत्साह और उत्सवों में बदला देखा गया है। सिद्धि का सिद्ध दर्शन यहां के समग्र लोक मे एक लोकोत्सव के रूप सा रमता चला जाने से इस भाव भूमि को लोकोत्सवों की ललित स्थली भी कहा जाता है, डग–डग उत्सव उग–उग भीड़ का यहां का आनन्द ही अलग है। और हां, यह भीड़ परिवार का रूप बनके उभरती आई है। अनियंत्रित भीड़ नहीं! एक व्यवस्थित लोकजीवन का, जागृत समुदाय का अनुशासन समेटे यह जन मानस अपनी महिमा का इतिहास बनाते चला आया है।

लोकोत्सवों का यहां सदा होता रहना क्रमिक रूप से नित नेय तेवरों का हमारा एक स्वभाव महिमामयी माटी की सौंधी सांस जैसे मन को आनन्द देने वाला समैया बना है। यहां की प्रकृति पूर्णता के साथ मठ–मंदिरों की भक्ति भावना, कृष्ण के जन्मोत्सव के साथ समैया, सावन का समैया, फागों के फड़, दशहरा, दीवाली के पुण्य अवसरों पर सजती साझियां यहां की अपनी प्रकृति है सृष्टि है आनन्द है।

भगवान राम के स्थल ओरछा–चित्रकूट–उनाव के बालाजी कन्दरिया महादेव भगवान शंकर के शिवतत्व और देवी की शक्ति का पुजारी यह क्षेत्र वीरों की भूमि है। मैहर की शारदा मैया विंध्यवासिनी चामुण्डा महोबा का अपना ही लेखा–जोखा है।

जीवन की सादगी में सम्पन्ता दीनता में भी गरिमा और स्वभाव की गंभीरता यहां के जन–सामान्य का सर्वस्य है। प्रकृति–परम्परा संस्कृति से संस्कारित व्यवहारों को सरलता से उपजी कलाओं का जो लोकस्वरूप यहां मिलता है अन्यत्र दुर्लभ है। लोक एक समग्रता है विशेष वर्ग नहीं। जहां व्यक्ति समुदाय सभी लुप्त होकर एक अखण्ड वैचारिक समता का मंत्र सा बन जाता है। इसे लोक कहते हैं।

इन्हीं मान्यताओं के दर्शन यहां के लोकोत्सवों में सदा देखने को मिलते हैं। यहां की सहजता में दार्शनिकता का होना इस जाति के जागरण की अपनी विशेषता है।

इन्हीं लोकोत्सवों के क्रम में बुन्देलखण्ड की नवरात्रि की साधना सिद्धि और उनसे उपजी पर्व की पूर्णता तथा उसके उल्लास यहां का नवरात्रि लोकोत्सव है।

जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है कि बुन्देलखण्ड के प्रत्येक उत्सव की भांति नवरात्रि के उत्सव का भी हम अनेकों रूपों में आनन्द प्राप्त करते हैं।

नवरात्रि की पौराणिकता उनका दर्शन मातृशक्ति की विविधरूपता, प्रकृति प्रियता और सांस्कृतिक चिन्तन की गहनता हमें इस उत्सव में हर क्षण सोचने–समझने की आधार भूमि प्रदान करती है।

पौराणिक सन्दर्भों में जैसे शुंभ–निशुंभ, मधु कैटम, रक्तबीज और महिषासुर का मर्दन की कथाओं का विस्तार देने की यहां आवश्यकता नहीं है। भक्तों के हृदय में बसी मां का यह महाकाली महामाया–चण्डिका–चामुण्डा के स्वरूप जन जन के मन में रमे हैं।

असुरों की भौतिक बल पर बनी आसुरी शक्ति का दमन देवत्व का स्थापन और हमारी आध्यात्मिक साधना के और सफलताओं के अनुपम उदाहरण हैं।

नवरात्रि में इसी महाशक्ति दुर्गा के नौ अवतारों का वर्णन पूजन, आराधना नवरात्रि की साधना और अनुष्ठानों के अंग हैं।

सौभाग्यवती महिलायें सभी प्रकार के उपवास पूजन दीपदान करती हैं तो पुरुष वर्ग सप्तशती पाठ, कीर्तन, भजन–जवारों की स्थापना उनके घरों का पूजन करते हैं, रत जगा करते हैं। कुमारी कन्यायें शारदीय नवरात्रि में नौरता अर्थात नौरातों की देवी की अर्चना करते हुये अपने लिए श्रेष्ठ वर की कामना करती हैं,

हम देखते हैं कि असुरता–दानवता अपनी कुटिलता भरे क्रियाकलापों अन्याय–अत्याचारों, भृष्टाचारों–अनाचारों से सहज ही सम्पन्न होकर मनुजता को देवतत्वों को पीड़ा देती हैं और देव स्वभाव अपनी सरलता के कारण जब संतप्त हैं तो उनकी सामूहिक वैचारिकता संघर्ष करने की क्षमता अपनी सुरक्षा के लिए संघ शक्ति की साधना की आवश्यकता जनमती है। संघ शक्ति के प्रति उदासीन हो जाने से पराजय पराभव जब उनकी समझ में आता है तब उनके संगठन का स्वभाव पनपता है, यही संगठन शक्ति का वर्णन मां दुर्गा के समाहित है। समस्त देवी तत्वों का एकत्रित संगठित बल महाशाली के अवतार का दर्शन है। इसी संगठन शक्ति का दर्शन नवरात्रि का पूजन है।

पुरुष का थोथा पुरुषत्व, मातृशक्ति को जो सहज अदेखा करता जाता है। नारी पक्ष को कोमल दुर्बल आश्रित जीवन तत्व समझने लगता है, उसका अपना दंभ नारी को मात्र भोग्या समझ लेता है। उसकी मातृशक्ति की वह अवहेलना करता है, तभी पुरुषों का पतन पनपने लगता है, वह पराजित होता है और वह मातृशक्ति की बखान करता है, स्तुतियां रचता है और उन्हीं अनुष्ठानों–स्तुतियों का स्वरूप मां दुर्गा का अनुष्ठान पर्व और उत्सव हमें नवरात्रि में देखने को मिलता है।

''सदां भवानी दाहिनी सम्मुख रहैं गनेश, पंचदेव रक्षा करैं ब्रह्मा विष्णु महेश'' इन पंक्तियों में हमारी सांस्कृतिक चिन्तन की सम्पदा समाई है। हमारे सोच और संस्कार आध्यात्मिकता के मूल से पले पुसे तत्व हैं। भवानी का रूप नारी जाति का सम्मान, गणेश जी की बुद्धि, ब्रह्मा का रचना क्रम, विष्णु का पालन पोषण और शंकर में रौद्र रूप का आवाहन–वर्तमान जड़ता का संहार को हमारा संस्कार बना देता है। इन्हीं संस्कारों की उपज नवरात्रि में मातृत्व की आराधना का अनुष्ठान है।

प्रकृति जगत में ऋतुऐं वर्ष में दो बार ऋतुमती होती है, गरमी और सरदी प्रधानता दो ही ऋतुऐं हैं। वर्षा उनके मध्य विचरण करती है। इन्हीं दोनों प्रधान ऋतुओं का ऋतुकाल जब प्रकृति का रज तत्व अपने यौवन को छूता है तो वह नौ–नौ दिनों का होता है। इसे संधिकाल कहते हैं। प्रकृति के उस संधिकाल में दो ऋतुओं का मिलन होता है – इसे नवरात्रि कहते हैं। कालचक्र के सूक्ष्म दर्शन ने प्रकृति के अन्तर में घटित उन विशेष उभारों को देखकर ऋतुओं के इस मिलन समयों को आश्विनी और चैत्र की नव–रात्रियों का रूप देकर इस प्रकृति के पट परिवर्तन को आध्यात्मिक महत्व का बना दिया है।

रात्रि और दिन का मिलन प्रात:कालीन और सायंकालीन संध्या के नाम से प्रचलित है। इन्हीं मिलन बेलाओं को हमारे चिन्तकों मनीषियों ऋषि–मुनियों ने आध्यात्मिक उपचारों की दृष्टि से अत्यन्त उपयुक्त समय समझा है, मिलन बेला बड़े महत्व की होती है, ऐसे समय में हर दिशा में हर अंग में उल्लास और उत्साह भर जाता है। आकांक्षाओं का जिज्ञासाओं का साधना का मिलन और सफलताओं का समायोजन ऐसे समयों पर सुखद होता है। आत्मा और परमात्मा के मिलन को परमानन्द को प्रकृति के संधिवेला के मिलन–संध्या उपासना के समागम के सफल समापन और उपलब्धियों को हम सहज ही समझ सकते हैं।

कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष के परिवर्तन, अमावस्या और पूर्णिमा के नाम से हम जानते हैं। अधिकांश पर्व मेले उत्सव अनुष्ठान समारोह उन्हीं संधिवेलाओं में होते हैं। दीपावली होली, गुरुपूर्णिमा, रक्षाबंधन, हरियाली अमावस्या, शरद पूर्णिमा जैसे प्रधान पर्वों पर ऋतु से संध्याओं का जो परिवर्तन होता है तो कई प्रकार की हलचलें प्रकृति जगत् में हो उठती हैं। इनका प्रभाव मनुष्य के स्वस्थ जीवनचर्या और विचारों पर पड़ता है, इनका प्रतिकूल प्रभाव हम पर न पड़े इसी दृष्टि से ऐसे परिवर्तनों के मौकों पर उपवास व्रत–साधनाओं को संजोया जाता है कि प्रकृति की विपरीत इस चाल से हमारा स्वास्थ्य डगमगा न जाये, परिवर्तन में भी संतुलन बना रहे। नवरात्रि की साधना प्रकृति के इस प्रकृति से सामंजस्य बनाये रखने का समायोजन है।

वासन्ती नवरात्रि के स्मारोपण के समय पर मर्यादा पुरुषोत्तम राम का जन्म रामनवमी तथा शारदीय नवरात्रि के समापन पर सनातन की मर्यादा की रक्षा राम की रावण पर विजय हमारी नवरात्रि साधना की सामूहिक सिद्धि है।

लोकोत्सवों के ये लोक रंजक कार्यक्रम हमारे दर्शन की गहराई को सहजता प्रदान करने के चतुर चिन्तन है।

— नरसिंहगढ़पुरवा, छतरपुर म.प्र. □

बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक धरोहर – 'टेसू'

— श्रीमती ब्रजलता मिश्र

भारतभूमि त्यौहारों की पुण्यभूमि है। बुन्देलखण्ड में जितने त्यौहार और लोकोत्सव होते हैं, उतने किसी भू–भाग में नहीं होते। आज के भौतिकवादी युग में जहां मानव की व्यस्तता क्षण–प्रतिक्षण बढ़ती जा रही है, समयाभाव से उत्साह, उमंग और उल्लास का ह्रास हो रहा है, मुस्कराहट, हँसी और ठहाके कोसों दूर होते जा रहे हैं, वहाँ जन–जीवन को सरस, सामान्य और स्वस्थ बनाने में ये लोक–पर्व अपनी अहं भूमिका निभाते हैं।

हमारे क्षेत्र की प्राचीन संस्कृति और सभ्यता के रक्षक लोक–पर्व हमारी अमूल्य धरोहर है। बुन्देलखण्ड में बालकों का ऐसा ही एकमात्र लोकोत्सव है – 'टेसू'। क्वांर (आश्विन) माह के शुक्लपक्ष में दशमी के दिन से ही यह लोकोत्सव प्रारम्भ होता है। किंवदन्ती है कि प्राचीनकाल में 'सुअटा' नामक एक दानव अविवाहित कन्याओं को सताता था उससे त्रस्त कन्याओं ने नवरात्र में नौ दिन 'सुअटा' लोकोत्सव के माध्यम से उषा काल में भगवान् शिव और पार्वती को दूब और धतूरे के फूल से दुग्धाभिषेक करके पूजन किया। चन्दा और सूरज जैसे पराक्रमी भाइयों ने उन बहिनों की रक्षा की और 'टेसू' नामक शूरवीर ने अपनी दुधारी तलवार से 'सुअटा' दानव का वध किया। पूर्णिमा के दिन बड़ी धूमधाम से 'ढिरिया' अथवा 'झिंझिया' से टेसू का विवाह हुआ।

'टेसू' लोकोत्सव मनाना खर्चीला या महंगा नहीं है। केवल कुछ समय देकर सरलता से सभी बालक इस पर्व को मना सकते हैं। 'टेसू' बनाने के लिये मिट्टी, रंग–बिरंगे पतंगी कागज, बाँस के टुकड़े, रंग, गोटे तथा कौड़ियों और गोंद की आवश्यकता होती है। इनकी सहायता से तीन पैरों का पुतला बनाकर उसकी चार भुजाएँ बनाते हैं उनमें क्रमशः तलवार, ढाल, धनुष और बाण धारण कराते हैं। कहीं–कहीं दो भुजाधारी टेसू गदा और तलवार ही लेता है। राजसी वेशभूषा वाले टेसी के सिर पर पगड़ी, साफा अथवा मुकुट धारण करते हैं। ''जाकी रही भावना जैसी'' — उक्ति के अनुसार बालक अपनी मनोभावना, बुद्धि कला–कौशल, सौन्दर्य–प्रेम के आधार पर टेसू की मुखाकृति विभिन्न हाव–भावों की बनाते हैं। कहीं–कहीं वीरता और वैभव का प्रतीक टेसू सच्चा शूरवीर और शालीन दिखाई देता है, तो कहीं–कहीं नटखट, उच्छृखल, मूर्खतापूर्ण कार्य करने वाला तथा निम्न मानसिकता का परिचायक टेसू का स्वरूप हास्यास्पद प्रतीत होता है। रात्रि में तेल का बड़ा सा दीपक प्रज्ज्वलित करके टेसू को साथ लेकर बालकों की टोली घर–घर जाकर उसकी वीरता का प्रशस्तिगान गाती हैं –

टेसू जाएँ – पौर – दुआर।
हाँतन लएँ पैनी तरवार।।
धारन करें बीर कौ रूप।
टेसू हैं बुन्देली भूप।।
इनकी भौत निराली सान।
फागें दूरइ से सैतान।।
तुरतइँ दै देओ इनकी चौथ।
चाँएँ नैंक हो चाँएँ भौत।।

इस प्रकार बालक 'आखौती' (चन्दा या दक्षिणा) के रूप में धनराशि अथवा अनाज एकत्रित करने के लिये प्रत्येक घर के द्वार पर अपने टेसू को खड़ा करके इस प्रकार गाते हैं –

टेसू बेटा हैंइँ अड़े।
खाबे खों माँगें दही बड़े।।
दही बड़े में मिर्ची भौत।
टेसू पौंचे काँनी हौद।।

धनराशि एकत्र करने के लिए तुकबन्दी की छोटी या बड़ी रचना के सृजन में बालकों का समय तो लगता है, किन्तु खेल–खेल में उनकी बौद्धिक प्रतिभा, दूरदर्शिता, समझदारी और रचना शक्ति का विकास भी होता है तथा हल्का–फुल्का मनोरंजन भी। मूलतः रुपया–पैसा माँगने का उद्देश्य लेकर ये रचनाएँ कभी सार्थक होती हैं तो कभी एकदम निरर्थक भी। उदाहरणार्थ –

टेसू बेटा रसिया।
घूमन जाएँ दतिया।।
टेसू बेटा बीर सपूत।
दतिया में मिल गऔ एक भूत।।
भूत ने ऐसी करी कमाई।
सौ डिब्बन की रेल चलाई।।
रेल चल रई खटके सें।
देओ रुपैया झटके सें।।

बालक स्पष्टतः अपने टेसू की प्रकृति को जनता के सामने उजागर करते हैं कि यदि चन्दा तनिक भी कम मिलेगा तो टेसू हमसे रूठ जाएगा। वे गाते हैं –

नीम तरे सें उड़ी पतंग।
नौ सौ मोती नौ सौ रंग।
एक रंग मैने मांग लियौ।

घुड़ला ने सलाम कियौ।।
पीरी पगड़ी लीलौ कोट।
टेसू माँगै सौ–सौ नोट।।
एक नोट घट गओ।
टेसू बेटा नट गओ।।

और फिर यदि मनचाहा चन्दा टेसू को नहीं मिलता है तो वे झगड़ा करने पर भी उतारू हो जाते हैं किसी से डरते नहीं और वे आगे तब ही बढ़ते हैं, जब उन्हें मनचाहा चन्दा मिल जाता है –

टेसू अगड़ करें।
टेसू झगड़ करें।।
काउ से न डरें।
टेसू लैई कें टरें।।

यदा–कदा बच्चे भी टेसू से अप्रसन्न हो जाते हैं टेसू के नखरे उठाते हुए, उसके लिये 'भीख' (चन्दा) मांगते–मांगते वे थक जाते हैं, तो उसे कसाई कहकर कोसते हैं –

टेसू बेटा बड़ौ कसाई।
हम लरकन सें भीक मंगाई।।
ढिरिया संगै ब्याऔ रचाई।
सबने मिलकें पंगत खाई।।

क्रोध के वशीभूत होकर वे उसे गाली देते हैं और मारने को तैयार हो जाते हैं –

टेसू ठाँड़ौ आँगन में।
देओ सारे की टाँगन में।।
टाँगन की टँगाई लेओ।
नई देबै तौ गारी देओ।।

टेसू गीतों के वर्ण्य–विषय अनेक हैं। देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिस्थितियों तथा विज्ञान के नवीनतम साधनों से भी टेसू–गीत अछूते नहीं रहते। आधुनिक संचार साधन 'टेलीफोन' का प्रयोग इस टेसू गीत में देखिये –

बुलबुल बैठी डाल पै।
झूम रई है ताल पै।।
मारौ गुल्ला गाल पै।
गिर परी है जाल पै।।
देखौ बाकें कड़ रऔ खून।
तुरतइँ कर देओ 'टेलीफून'।।

गंजे टेसू का हास्यास्पद स्वरूप खड़ी बोली मिश्रित बुन्देली में देखिये –

कक्को गई दिल्ली
उतैसें ल्याई बिल्ली
बिल्ली मारै पंजा।
टेसू हो गये गंजा।।

स्वभाव से अलमस्त टेसू की मौज–मस्ती और मनमानी पर भला किसे हंसी नहीं आएगी –

टेसू आए परदेशन सें।
रोटी खाई बेसन सें।।
पानी पियें मटकन सें।
हाँत पोछें मूछन सें।।

शहरी संस्कृति और वातावरण के प्रभाव से आजकल टेसू गीतों में बुन्देली के स्थान पर खड़ी बोली, उर्दू, फारसी और कहीं–कहीं छुटपुट अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग भी होने लगा है –

घण्टाघर में चार घड़ी।
चारों में जंजीर पड़ी।।
जब–जब घण्टा बजता है।
खड़ा मुसाफिर हंसता है।।
सब हँसते हैं बेधड़क।
सामने है नई सड़क।।
नई सड़क पर टेसू वाला।
तन से गोरा मन से काला।।
बैठा–बैठा करे विचार।
रख दो रुपया साढ़े चार।।

प्रथम पंक्ति निरर्थक होते हुए भी इस टेसू गीत में पशुओं के प्रति सहृदयता अवलोकनीय है –

गत्ताड़ा भाई गत्ताड़ा।
भैंस को डण्डा क्यों मारा?
भैंस का बच्चा मर जाता –
तेरे बाप का क्या जाता?

खड़ी बोली के इस विस्तृत टेसू गीत का बहुत प्रचलन है –

टेसू राजा यहीं अड़े।
खाने को माँगे दही–बड़े।।
टेसू लिये अठन्नी।
लेके आए पन्नी।।
पन्नी अच्छी होती तो टेसू सजवाते।
टेसू अच्छा होता तो महल बनवाते।।
महल अच्छा होता तो चक्की लगवाते।
चक्की अच्छी होती तो गेहूँ पिसवाते।।
आटा अच्छा होता तो पूड़ी बनवाते।
पूड़ी अच्छी होती तो सास को खिलाते।।
सास अच्छी होती तो हाथी पै बिठाते।
हाथी अच्छा होता तो जंगल में घुमाते।।
जंगल अच्छा होता तो नदिया पै जाते।
नदी अच्छी होती तो टेसू मलंग नहाते।।

आधुनिक तकनीक से बनी जापान में निर्मित मोटरसाइकिल पर विराजमान होते हुए भी नटखट टेसू की राष्ट्रीय भावना सराहनीय है –

बुन्देली तंतटोटका

— डॉ. डी.आर. वर्मा 'बेचैन'

दुनियां में जितने भी जीव धारी परमेसुर ने बनाये हैं उनमें मान्स सबसें जांदा अकल कौ पुतरा बनाओ। सिंयार की जितनी चीजें हैं वे सबकीं सबई मनुष जौन उर सब जिवधारियन की भलाई के लाँनें बनीं। हमाए देश में देशी दवा दारू कौ भौतऊ नोंनों ज्ञान है। रिषी मुनीश्वरन्नें बड़ी बड़ी पोथीं बनाकें धर दई। विरमा जी, इन्द्र जी, उर देवतन के वैद अश्वनीकुमार भये उनसें जा विद्या धरती पै आई। धनंतर उर फिर चरक, कैऊ रिषी ई बैदगिरि के पंडित भये। तौ हमाव मतलव जौ है कै इन पोथियन में हजारन तंतटोटका बताये गये। उन सब तन्टोटकन खों मानस के हित के लानें बनाओ गओ। बड़ी खोजें करीं उन्नें, बड़े अनुभव करे तब जे सब चीजें हांतें लगीं।

> प्रत्येक अंचल के अपने अंधविश्वास व जड़तायें होती हैं, इन अंधविश्वासों के पीछे पूर्व में कोई वैज्ञानिक चेतना रही है किन्तु कालान्तर में वैज्ञानिकता लुप्त हो अंधपरम्परायें शेष बचीं हैं, जो उस लोक अंचल के लोक मानस की विशिष्ट पहचान हैं। बुन्देलखण्ड के अंधविश्वासों को यहां पर लेखक ने संजोया है। यह मात्र संकलन की दृष्टि से प्रकाशित किया जा रहा है। इसे अजमाकर अवैज्ञानिकता को आत्मसात न करें।
>
> — संपादक

बुन्देलखण्ड के गांवन गांवन में इन तंतन उर टोटकन के जानकार बूड़ी मताई वैनें उर बूड़े आदमीं हैं। पशु, पंछी, जरा बूटी, पेड़ पौदा उर कैउ जिंसें इन तन्टोटकन के लानें चावनें परतीं। कैउ पड़े गुने इन बातन खां हँसीं, दिल्लगी पाखंड जानें। अकेलें हमाये वेदन में इनकौ लेख सोउ जांगन तांगन पाव जात। हर्रा लगत न फिटकरी उर रंग चोखौ हो जात इन टोटकन सें। तो दिल खोल कें अनुभव करें भये कछु तंन्टोटका मांसन की भलाई के लानें लिखवे की मंशा आई। अगर पसंद आ जांए तौ अपुन अपुनया सकत। जादोतर जे ऐतवार उ बुद्दवार के दिना करे जात।

१. गुहेरी के लानें — विरौनियन में फुरिया हो जात। भौत दुःख देत। ईकी पीरा मिटावे दिन के दिना जब टट्टी फड़ाकत होके सुस्ते हो जाव उर कांछ लगाउन लगौ तबई नेउर कें कांछ खोलें खोलें करिया पार चाय कौनऊं पार खां चाय सूरज खा तीन बेर चिरादो। वस्स राम चाय तो गुहेरी ठीक होजै। भौतेरन की ठीक हो गयी। इन तंतन में, टोटकन में इच्छा शक्ति उर विचारन की चोट लगत, बा काम करत।

२. शीत के लानें — आंग भर में जब चाय चकत्ता से उमक आउत। वे भौत खुजात। जौ रोग भौत वेशरम होत देर में जात। ई के लानें जूठी पातरन खां बटोर के दिन के दिना बार के ताप लो। शीत चलो जै। कई एकन खां आराम भओ।

३. कटीला उर उचला रोग के लानें — कटीला रोग उ

टेसू बेटा नटखट।
रोज चलावें फटफट।।
फटफट है जापान की।
जै बोलें हिन्दुस्तान की।।

जन—साधारण का ध्यान आकृष्ट करने में सहायक बुन्देली का यह टेसू गीत भी बहु प्रचलित है —

आगरे की गैल में बिटिया सुनार की।
गोरे—गोरे गाल हैं, नथनी हजार की।।
महलन में बैठकें ढुलकी बजाई।
ढुलकी की थाप दई यार कौं सुनाई।।
करौ दुपट्टा हतौ यार की निसानी।
फट गऔ दुपट्टा बोतौ हो गई दीमानी।।

'टेसू' लोकोत्सव में पर्याप्त मनोरंजन तो होता ही है। यह लोकपर्व हमारी बुन्देली संस्कृति का प्रतीक है; जो बुन्देलखण्ड की धरोहर है। इसके द्वारा बालकों की कल्पना—शक्ति, रचनात्मक बोध, सृजन, मूर्ति—निर्माण, रंग—संयोजन कला तथा सौन्दर्य के प्रति अभिरुचि तथा भावाभिव्यक्ति आदि सद्गुणों का विकास होता है। आज दूरदर्शन और चित्रपट के माध्यम से पाश्चात्य संस्कृति और शहरी सभ्यता की ऊपरी तड़क—भड़क की चकाचौंध में अन्धे होकर हम अपने मनभावन, शिक्षाप्रद, सरल सहज, सुलभ और सस्ते लोकोत्सवों को विस्मृत करते जा रहे हैं। अपनी संस्कृति को हम ही कुचल रहे हैं। अपनी इस अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर की पुनः स्थापना का संकल्प लें — जैसा कि किसी सुप्रसिद्ध कवि ने कहा है —

"अपना तन—मन—धन देकर,
हम करें पुनः संस्थान।"

— 'केशवपुल' ३५२, नानकगंज
सीपरी बाजार (झांसी) उ.प्र.

उचला रोग छोटे बछवा, बछियां, छिरिया, गाड़रन के बच्चन खां हो जात। कटीला में मों पै गोल गोल कांटे से हो जात रोगी बच्चा पशुवन के चर नई पाउत। ई के लानें उर उचला के लानें एकई तंत है। उचला में शरीर के चाय जां में वारटिकियां के उड़ जात। दिना के दिना पोता देत कपड़ा में सें थोरौ सौ फार कें ऊकटीका उर उचला की जांगा फेरकें गलियोर में फेंक देवै तौ जे दोई रोग निश्चित रूप से चले जात।

४. आंचर सूजे के लानें – छोटे मोड़ी मोंड़न खां दूद प्यावे वाई औरतन खां जौ रोग हो जात। ई में कौनउं भी आंचर सूज जात। फोरा कैसौ दर्द उठत। औरतें मानतीं कै आंचर में बार चलो गओ। ई के लानें दिना के दिना लुड़िया सें आंचर दाब देवै उर ६ बेरां ककई से सात बेर ऊँछवे जैसो नेंग कर देवै। आंचर ठीक होजै।

५. सुकी रोग के लानें – जौ बच्चन कौ सूका रोग कुवाउत। बच्चा ई रोग में सूक कें कांटे हो जात। लरका बिटिया खां जब जौ रोग गस लेत तौ मुसकिल दिखात। ई के लानें तसला में सपरा कें दिन के दिनां बौ पानी गलियारे में फेंक देवे। अकेलें ऐसौ करे सें दूसरे वालीबच्चन खों जौ रोग हो सकत। ऐसौ बुरऔ ना विचारै। दूसरे तरा कौ तंन्टोटका करै कुआ के गर्रा डारवे के लट्ठा तरे हो सात बेरां काड़ देवैं। ई खां हुश्यार दो जनें चइये। एक और तंत करै कै चौमासिन में पंन्टूटा हो जात। पानी के कटान से खदरा बन जात उर कऊं माटी सदी सी रात। दोउ तरफे भरका–गढ्ढा बन जात। ऐसी पुलिया सी हो जात। वाली बच्चे खां सात बेरे ऊ पुलिया के तरे हो काड़ दो। सुकी रोग गओ।

६. पेट पिराय होन व्यान की बेरा तौ ऊके लानें – जौन घर में बाल बच्चौ होनें ऊ घर में गइया कौ सींग पैले से कौनऊँ भी जाँगा टांग देवै तो जच्चा खां पेट दर्द की जांदा पीरा ना भुगतनें परै।

७. कनाई गिरावे के लानें – बाल बच्चौ हो जावे के बाद अगर कनाई जल्दी नई गिरत तौ वारन की लट जच्चा मों में दाब लेवै उर अपनी मताई को नाव लै लेवै तौ कनाई गिर जात। ऐसौ कोऊ जनी मान्सन ने अजमाकें बताओ।

८. आंदी के लानें – आंदी रोग में आदे मूंड़ पिरात। भयानक पीरा होत। ई के लानें दिना के दिना शुद्ध घी की जलेवी बिना दिन ऊरत देरी पैहो खा लेवै तो आंदी रोग चलो जात।

९. परया बुखार के लानें – एक दिनां छोड़ कें भयंकर जाड़ों दै कें जौ परया बुखार चड़त। रोगी भूतप्रेत बाधा जैसो बकन लगत। ई के लानें रोगी खां बिना बताय धतूरे की दातून दिन के दिना करा देय। पैल टोर कें बना के रख देवै आरामें। संगै १० पईसा कै ५ पइसा पीपरा के पेड़े तरें धरवा देय उर कै देवै कै जाव म्हराज! तुमाई विदा है। परया चलौ जात।

१०. बद के लानें – जांगन के ऊपर रागन के ऐंगर केंड़ा जैसी एक नस सूज जात। फरा सी फूल जात। कोउ कोउ खां तौ पक जात सो चिरवानें आउत। ई के लानें दिन के दिना देरी पै हो लुड़िया सें सात बेरा दाब देवै। बस्स बद मिट जै।

११. आंखें खुजावै (बगल बंद) के लानें – कुआ के घाट पै जितै पनयांई पानी भरवै गगरी धरतीं, उन गड़ कुइंयन को पानी दिन के दिना आंखन लगा लेय तौ बगल बंद (आंखं खुजावौ) ठीक हो जात।

१२. दूध कड़े के लानें – अगर जनी खां दूद नई कड़त तौ ऊकी सास होय चाय अजिया सास होय, चाय जिठानी होय चाय रिश्ते की प्रेम की कोउ होय ऊसें दूद मांग लेवै। दूद मांगवे कौ तंत दिन के दिना खपरन की पई में हो दूद दैवे वाई दूद बुआ देवे उर लैवे वाई खोवा अड़ा कें पीवे को नेंग कर लेवै। ऊकें दूद आजै उर ऊकें दूद बंद होजै। जांदातर तौ उनसै दूद मांगो जात जिनें ऊकी जरूरत नैयां।

१३. दांत निकरें के लानें – लरका बिटियन के दांत निकरती वेरी मताई खां चइये कै बार होन जाय तौ लौटती बेरां बमूरा के हरीरे कांटे अपने दांतन से काट कचर के उगल देवै। दिन के दिना यानी एतवार, बुद्धवार में जो तंत करै। दांत सुक सें कड़जै।

१४. जुँवा (जूं) चले जांय – दिवाई के दिना बेरी के पेड़े में जुवां बारौ सात बेरां लबुदिया मार देय तो जुवां नरैं।

ऐसें हजारन तंत टोटका है। बुरओ करत के भी हैं। शंकर जी नें महेश्वरतंत, दन्तात्रेय ने दन्तात्रेयतंत हजारन बताये। पोथियन में से सिंसारी में चले आ रये। इन तंत टोटकन सें भलौ काम करो चइये।

– ग्रा.पो. स्यावरी, मऊरानीपुर (झांसी) उ.प्र.

विगत वर्ष 26 जनवरी को गुजरात में भूकम्प आया जिसके सहायतार्थ बुन्देली उत्सव समिति के माध्यम से मुख्यमंत्री सहायता कोष में निम्न लोगों/संस्थाओं द्वारा राशि दान की गयी –

1. म.प्र. कृषि और ग्रामीण विकास बैंक की ओर से –	500000 रु.
2. ग्राम पंचायत बसारी की ओर से –	5100 रु.
3. खजुराहो मिनरल्स छतरपुर की ओर से –	121000 रु.
4. महराजा छत्रसाल नेहरु युवा क्लब बसारी की ओर से	5100 रु.
5. जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक छतरपुर की ओर से	21000 रु.
6. स्वामी प्रणवानंद होम्यो. मेडि. कॉलेज छतरपुर	25000 रु.
7. शास. उ.मा. विद्यालय बसारी की ओर से	6630 रु
8. श्री डीलमणि सिंह 'बब्बू राजा' की ओर से	5100 रु.
9. दानवीन कर्ण युवामण्डल खजुराहो की ओर से	1000 रु.

चम्पा कौ फूल

— श्रीमती कुन्ती व्यास

एक राजा हते। उनकी सात रानियां हती। पै सन्तान कौनऊ कें न भई। इनमें छोटी रानी सुन्दर और गंभीर स्वभाव की हतीं। राजा उन्हें सबसैं जादां चाऊत ते। दूसरी रानियां उनें देख कैं जरत हतीं। सब सुख राज–पाट पर राजा कौ एकई चिन्ता दिन–रात रओ करत ती कै उनकै इतने बड़े राज को बारिस नइयों।

भगवान की किरपा कछु दिनन में छोटी रानी गर्भवती भई। अब तौ राजा फूले न समाये। उननै मंत्री को बुलाकें कइ कै सारे राज में डौड़ी पिटवा दो राजा ने भण्डार खोल दये हैं। जा कौं जो जी चावै आयै और मनचाई चीजें ले जावै। महलन में खुशहाली हौन लगी, मन्दिरन में पूजा पाठ हौन लगे। चारऊ तरफ खुसिंया मनन लगी। जौ देख कैं बड़ी रानियां जर कै कोयला हो गई। वे मनई मन सोचन लगी कै अब का करें? उतै राजा ने छोटी रानी के लिंगा एक नगाड़ौ धरवा दऔ और कै दई कै लड़का होवै तौ जा पै चोवे मार दइयो हम सब काम छोड़कें आ जाहैं।

उतै राज दरवार में गये उतै सब रानियां छोटी रानी के रनवास में पौंची और अनजान बनकें छोटी रानी सें पूछन लगी कै राजा ने जो नगाड़ौ काये के लानै धराऔ है। छोटी रानी सीदी हतीं सो सब बात बड़ी रानियन कों बता दई। जो बड़ी रानियन ने सुनी वो राजा के प्रेम पै छोटी रानी को बधाई दई और कहन लगीं कै राजा कौ तनक आजमा लै। छोटी रानी बोली हाँ जरूर! बड़ी रानी बोली पै राजा सै न कइयौ कै नगाड़ौ हम लोगन ने बजाऔ। वे जोर जोर से नगाड़े कौ पीटन लगीं। नगाड़े की आवाज सुनकै राज महलों में दौरे आये तो छोटी रानी हंसकै कैन लगीं कै हम तौ आपकी परीक्षा लै रयेते। राजा बोले कछू बात नइयां पर आगूंसै ऐसौ न करियो। राजा रनिवास सै बाहर गये कै बड़ी रानियन नै तानै मारे देखलओ राजा कौ प्रैम जरइं से में तुनक गये। छोटी रानी ने अपनी झेंप मिटावे के लानें कई कै राजा नाराज नई हो सकत। जापै बड़ी रानी बोली अच्दी देखें और वे फिर नगारौ बजान लगीं। राजा नै समझौ साचऊं कछू भऔ है फिर बौई झूटी आवाज! राजा खिसियाये दरवार में लौटे कै और कै गये के अब तुम नगाड़ौ पीट पीट कै फार दै हो तौऊ हम न आहैं।

दरवार में कछू दरवारी बड़ी रानियन के पक्षपाती सोई हते तौवे राजा कौ उल्टी–सीदी पड़ाउन लगे जासैं राजा और नाराज हो गये। तब तीसरी बेर नगाड़ौ बजौ तो राजा ने रनिवास के ओर मुह फेर कै तक न हेरो! छोटी रानी कै दो सुन्दर जुड़वां बच्चा भये। एक लरका और दूसरी बिटिया! अब बड़ी रानियन नै का करौ कै दोऊ बच्चन कौ एक हंड़िया में बन्द कर कै – घूरै पै फिकवा दऔ और छोटी रानी सै बोली कै तेरें दो मरे चुखरा भये हैं, लगालै छाती सें। छोटी रानी सुन कै बेहोस हो गई। उतै रानियन नै राजा कौ खबर भिजवा दई कै छोटी रानी की भूल छिमा कर दई जाये और अपने बच्चन को आकै देख जायें।

जब राजा रनिवास पौंचे तो बड़ी रानियन नै मरे चुखरा राजा के सामू धर दये और बोली कै जौ बात मिहलन सै बाहर न जा पाये कै रानी के पेट सैं चुखरा भये हैं। राजा ऐसी सुन कै आग बबूला हो गये और बोले कै छोटी रानी को अबई मिहलन सै निकार दओ जाए। जा सुनकै बड़ी रानी हांत जोर कै बोली कै ऐसौ न करौ बात फैल जैहै। और रानी कौ जा में का दोस भगवान की मरजी। अब बस छोटी रानी को काग बिडारन बना दऔ जाय। सो राजा ने छोटी रानी कौ फटे–पुराने उन्ना पैरां कैं एक बांस हात में गहा दऔ कै वे अब मिलहन के कउना बिड़ारत रयै। उन्है जौ की रोटी खाने कौ डबला भर पानी पीने कौ मिलत रैहै।

हौनहार की बात उतै रानियन ने हड़िया घूरे पै फिकवाई उतै एक साधू अलख जगाऊत निकरे और देखौ कै दो हाल में भये बच्चा हड़ियां में परे अंगूठा चोंच रये। साधू ने उन्है उठा लाऔ और अपनी कुटिया में ल्याकें पालन पोसन करने लगे। बच्चा बड़े हौन लगे तो उनकी सुन्दरता और चतुरई की बातें राजा नौ पौंचन लगी। जौ बात जब बड़ी रानियन नें सुनी तौ सोचन लगी कै ऐसौ न होवै के राजा के आगे सब भेद खुल जावै सो उन बच्चन कौ मरवा दऔ जावै। ऐसी सलाह करकें रानियन ने खोवा के दो पेड़ा जहर मिला के बनाये एक थाली में चौमुख दिया धरौ और बूड़ी कहारन कौ दैकै बोली के जे पेड़ा साधू के लरका बिटियां कौ खबा आऔ। जो बचै सो परसाद बांद दियौ।

कहारिन ने अच्छौ मौका देखो और वे पेड़ा परसाद कें खै उन बच्चन कों खवा दये। पेड़ा खातनई बच्चा मर गये। जब बाबा संजा कै लौटै तौ बच्चन कौ मरौ पाऔ। साधू ने अपनौ माथौ पीट लओ पै अब का हो तौ सो वे रोधो कै जब सान्त भये तो कुटिया के सामने खदरा खोद कै दोऊअन को दबा दओ।

अब का भऔ कै जौन जांगा राजकुमार और राजकुमारी को दबाये ते तो हुआँ वर्षा रित में एक आम कौ पौदा और एक

चम्पा कौ पौदा उग आऔ। साधू बाबा ने उन पौदन को बच्चन की आत्मा मान कै पाले। पल पल में दोई पौदा बड़न लगे आम के पेड़े में तो ऐसे फल लगे कै कभऊ काऊ नै देखे तक न हते। और चम्पा की सुगंध सै सबरौ राजमहल महक उठौ।

एक दिना की बात राजा–रानी बाग में टहल रयेते छोटी रानी फटे–पुराने उन्ना पैरें हाँत में बांस लये दूर सै देख रईती। इतेक में एक कऊआ अपनी चौंच में चम्पा कौ फूल दबाये आऔ और फूल राजा के ऊपर गिरा गऔ। सबनै देखौ। बोले कै ऐसौ सुन्दर बड़ौ फूल तौ आज तक नई देखो।

राजा नै फूल देखो तौ मंत्री को बुला के बोले कै ऐसौ फूल कां मिलै तुरन्त लै आओ।

राजा के सिपाही ढूंडत ढूडत साधू की कुटिया नौ पौचें तौ का देखौ कै चम्पा कौ पेड़ौ फूलन से लदौ है। नियरई एक आम कौ पेड़ौ है और खूब फल लगे हैं बामें। जब सिपाई चम्पा के लिंगा पौंचे तो दोऊ पेड़न सें कछु सर–सर झांई सी आवाज आई जैसे काऊ ने कई होय कै ऊपर हो जाऔ, चम्पा की उगरियां ऊपर कौ होगई – सिपाई फूल न टोर पाये। और जौ बात जाकें मंत्री जी कौ बताई।

मंत्री जू अपने घोड़ा पै चड़कै एक नसैनी लै के बा जागा पौंचे जां पेड़े लगे हते। तो मंत्री के पौंचतई फिर दोई पेड़िन सै कछु सरसराहट सी भई और चम्पा के फूल और ऊपर उठ गये। उनै मंत्री जू हू न टोर पाये।

हारे थके मंत्री राजा नौ गये – मुजरा करौ सब किस्सा सुनाऔ। ऐसौ सुन कै राजा खुद अब फूलन कौ लैवे हातो पौचइ कै अपनी बड़ी रानियन कौ मंत्री सिपाई प्यादे संग लैकें साधू की कुटिया नौ पौंचे। का देखत है के एक आम लदौ ठांड़ौ है और एक चम्पा के फूलन से भरी उगरियां धरती तक लटक रई। जब राजा नियरे गये तौ उनै ऐसौ लगौ कै एक झाई सी प्रेम भरी अवाज में उनै पिता कै रये और देखतई देखत वे फूल उतेक ऊंचे उठ गये कै राजा के लाख जतन करै में हात न लगे।

जब राजा निरास हो गये तो आम से फिर झांई सी आई और उनै ऐसौ लगौ जैसे काऊ ने कही कै बा अभागिन छोटी रानी कौ लिवा ल्याऊते। फिर चाये जितने फूल टोर लेते।

राजा सुनकै सकपका गये। बड़ी रानियन कौ माथौ ठनकौ। वे उतैं से खिसकन लगीं। राजा की शंका और पक्की हो गइ। अब राजा नै तुरन्त छोटी रानी को बुलवाओ। छोटी रानी फटे–पुराने उन्ना पैरें हांत में बांस लये टूटी सी पलकी में बैठ कें आई, राजा का देखत है कै छोटी रानी की डोली आउतनई चम्पा के फूल ऐसे गिरन लगे जैसे कै मताई के गरै लग कैं रो उठे होय। आम और चम्पा की उगरियां डोला पै झुक गई। छोटी रानी कौ छाती से दूध की धारैं बै निकरी।

जब राजानै जौ सब देखौ तो साधू सैं पूंछी। साधू ने सब किस्सा सुनाऔ और बोले कै होय न होय जे दोई पेड़े आपकी संताने है। जिनें हम तुमाये घूरे सैं उठा लाये ते – पाले पोसे पै काऊ वैरी ने उन्हें विष दे दाऔ – बे मर गये और हमने उन बच्चन को जाई जंगा पै गाड़ दये ते। राजा कौ बड़ी रानियन की बा मरे चुखरा भये का बात याद आ गई। जांगा खोदी गई तो तौर तरीके की हड्डी देखी। राजा रौऊन लगे।

मिहलन पौच के राजा ने बड़ी रानियन को हांती के पांव तरै कुचलवाने की सजा दई और छोटी रानी जैसे पैले रहतती पटरानी बनकै रहन लगी। जैसी उनकी फेरी भगवान सबकी घरी फेरे।

जा लोककथा मानुस जात और पेड़ पौदन रूखन विरछन के नाते रिस्तन की बांत पुष्ट करत है।

जो भी चेताउत है कै राजाहाकिम कौ कच्चे कानन कौ न होय चाहिये, बड़े लोगन की जादां सिदाई सोई दोस हो जात है और ईर्खा–द्वेष अपनई कौ नुकसान पौचाउत हैं जा सीख हमें जा लोककथा से मिलत है।

– नरसिंहगढ़पुरवा, छतरपुर म.प्र. □

मुंशी अजमेरी द्वारा रचित 'श्रीरामचरित नाटक'

— डॉ. सियारामशरण शर्मा

राष्ट्रकवि डॉ. मैथिलीशरण गुप्त जिन दिनों खड़ी बोली के अप्रतिम महाकाव्य 'साकेत' की रचना के माध्यम से जन–जीवन में रामकथा का आस्वादन कराने में संलग्न थे, उसी समय मुशी अजमेरी 'श्रीरामचरित नाटक' की रचना कर रहे थे। दोनों महान् कवियों का एक ही लक्ष्य था, जन–साधारण के मध्य मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के आदर्श चिरित्र का गुण–गान करना। 'साकेत' तो प्रकाशित हो गया किन्तु मुंशी अजमेरी द्वारा रचित 'श्रीरामचरित नाटक' आज भी अप्रकाशित है। इसके बाद भी मुंशीजी का उद्देश्य सफलीभूत रहा है। आज भी चिरगांव के नगरिक विगत ८५ वर्ष से प्रति वर्ष खेलते हैं। इतना अदृश्य है कि उन्होंने इस नाटक के कथानक एवं चरित–चित्रण को रामलीला के रूप में प्रस्तुत किया है जो नागरिकों के लिए सहज भाव से हृदयंगम होता रहा है। इस नाटक की ओर सर्वप्रथम मेरा ध्यान मुंशी जी के पौत्र श्री विद्यासागर शर्मा ने आकृष्ट कराया। उन्होंने मुझे अपने एक पत्र में सूचित किया — 'पूज्य दादा जी (स्व. मुशी अजमेरी) ने भी रामचरित नाटक लिखा था, जो अभी तक अप्रकाशित है, परन्तु चिरगांव के नागरिक प्रतिवर्ष उसे खेलते हैं। यह नाटक अपने में अनोखा इसलिए है कि रामलीला के खेलने का ढंग कुछ और है परन्तु दादा जी ने उसे नाटक के रूप में परिणित करके एक विचित्र सौन्दर्य बढ़ाया है' मुझे उन्होंने इसके प्रचार–प्रसार के लिए प्रेरित किया था, किन्तु अब तक यह संभव न हो सका, इसका मुझे खेद है। विगत २३–२४ नवम्बर, १९८१ में मुशी अजमेरी की जन्म शताब्दी का झांसी–चिरगांव में आयोजन किया गया। इस अवसर पर मुंशी जी के व्यक्तित्व–कृतित्व पर आधारित एक स्मारिका का भी प्रकाशन किया गया, स्मारिका के सम्पादक मंडल में मैं भी था, इस स्मारिका में भाइ विद्यासागर शर्मा के अभिमत के आधार पर मैं भी, 'रामचरित नाटक' पर विस्तार से प्रकाशित करने के लिए दृढ़ निश्चय कर चुका था, किन्तु देश के अनेक विद्वानों, साहित्य मनीषियों एवं लेखकों के आलेख एवं सम्मतियां इतनी अधिक हो गई कि स्मारिका में उसे स्थान मिल सका। मैं यहां 'श्री रामचरित नाटक' की मूलभूत विशेषताओं पर पकाश डाल राह हूं। इसकी सम्पूर्ण सामग्री मुझे श्री विद्यासागर शर्मा से ही प्राप्त हुई है, अतएव मैं उनका हृदय से आभारी हूं। मुझे पूर्ण विश्वास हे कि इतने दीर्घकाल के पश्चात भी मुंशी जी द्वारा चित इस नाटक का उचित मूल्यांकन हो सकेगा और हम सब आज भी उसकी नवीनता का आभास कर सकेंगे। इसकी शैली भी रामलीला के ढंग की है, जन अभिरुचि के साथ नागरिक इसे हृदयंगम कर आनन्दि हो उठते हैं।

'श्रीरामचरित नाटक' एक धार्मिक संगीतक (औपेरा) है। चिरगांव के तत्कालीन जनप्रिय रईस वैद्य श्री अयोध्याप्रसाद जैन के आग्रह पर मुंशी जी ने इसे स्वायम्भुव मनु महाराज की तपस्या से आरम्भ करके धनुष यज्ञ तक लिया था। यह नाटक सात खंड़ो में विभाजित है। यह गोस्वामी तुलसीदासजी के बालकंड के कथानक पर आधारित है। मुंशीजी इसे श्रीराम के राजतिलक तक आद्योपान्त लिखना चाहते थे, किन्तु मनमौजी स्वभाव के होने के कारण यह संभव न हो सका। नाटक का रामलीला के रूप में चिरगांव की थी। राय मश प्रचारिणी सभा द्वारा यहां के आढ़त बाजार में प्रतिवर्ष अभिनीत हो रहा है। सभी दृश्य क्रमवार ऐसे रखे गये हैं कि उनके प्रदर्शन में आज भी कोई असुविधा नहीं होती। मुंशी जी स्वयं अच्छे अभिनेता थे। उनके समय में यह नाटक उन्हीं के निर्देशन में नाट्यप्रेमी लोगों द्वारा प्रतिवर्ष खेला जाता था। मुशीजी इस नाटक के माध्यम से सर्वसाधारण के सम्मुख एक आदर्श प्रस्तुत करना चाहते थे। इस नाटक की विशेषता उन्हीं के शब्दों के —

भावपूर्ण भासा विषद, नव रस के आधार।
'रामचरित' नाटक रुचिर, बालकंड को सार।।

मुंशी जी ने इस नाटक के प्रणयन में बाल्मीकि रामायण, तुलसीकृत रामचरित मानस एवं कवितावली, केशवदासजी की राचन्द्रिका तथा रसिक बिहारी की 'राम रसायन' को आधार बनाया है। कहीं–कहीं ललित किशोरी के सवैयों का समावेश करके रोचकता की वृद्धि की है। इसके अतिरिक्त कवि के निजकृत गीतों और पद्यमय वार्तालाप ने सम्पर्ण संगीतक को ताल–लय से युक्तकर क्रमबद्धता प्रदान की। प्रथम एवं द्वितीय अंक में ६–६ दृश्य हैं। नाटक पारसी शैली के सहगान से प्रारम्भ होता है —

''जय जय जगदाधार निरविकार।
तुम्हीं करैया भवसागर से पार।।
तुम घट–घट के वासी हो, अजर–अमर अविनासी हो।
सम्यक ज्ञान–प्रकासी हो, करुणातीत विलासी हो।।
हे करतार! परम उदार! बारम्बार मैं बलिहार...।

इसके पश्चात् सूत्रधार शलोक का उच्चारण करता हुआ प्रविष्ट होता है और नटी से परामर्श करता है कि आज कै सा नाटक खेला जाए जो कि शिक्षाप्रद, भक्तिपूर्ण और मनोरंजक हो। तब नटी 'श्रीरामचरित नाटक' खेलने की राय देती

नट–नटी एवं सूत्रधार इस नाटक पद्धति की देन है। कथानक का आरम्भ इस प्रकार है — स्वयंभु मनु रानी सतरूपा सहित वन में तपस्या को जाते हुए अपने युवराज उत्तानपाद को राज सिंहासन सौंपते हैं। उस समय उनके दोनों पुत्र माता–पिता के वियोग से दुखी होते हैं और प्रजा के प्रतिनिधि तथा सभासद भी व्यथित होकर रह जाते हैं। वनगमन करते समय महाराज मनु समझाते हैं कि जहाँ संयोग है, वहाँ वियोग भी हैं। मैं स्वेच्छा से परमार्थ साधन के लिए जाता हूं। यह जानकर तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए। यह शरीर मरणधर्मी है किन्तु साधन–धाम भी है, मानव शरीर से जो साधना बन सकती है, वह किसी से नहीं। इसी से इसे देव–दुर्लभ कहते हैं। फिर यह देव–दुर्लभ देह पाकर कुछ न किया तो यह जन्म ही व्यर्थ हो गया...। महाराज मनु के माध्यम से लेखक ने भगवत् प्रेम में मनुष्य जीवन की सार्थकता तथा वानप्रस्थ आश्रम की महिमा दोनों का प्रतिपादन किया है। आगामी दृश्यों में देवदत्त वन की शोभा एवं महिमा का वर्णन करता है, इसके अनन्तर मनु की तपस्या पर उन्हें वरदान मिलता है कि कालान्तर में वे अयोध्या के राजा दरशरथ होंगे और भगवान उनके पुत्र राम के रूप में जन्म लेंगे। इसी प्रकार रावण, कुंभकरण और विभीषण उग्र तप करके वरदान पाते हैं। उधर प्रचंड रावण सम्पूर्ण देवताओं पर विजय प्राप्त कर लेता है तथा यम की पुत्री मंदोदरी से विवाह कर लेता है वह लंका को जीतकर राजधानी बना लेता है। उसके आदेशानुसार राक्षस, सुर, नर, गंधर्व सभी की सुन्दर बालाओं का अपहरण कर लेते हैं। तृतीय अंक में ११ दृश्य हैं जिनमें ऋंगीऋषि द्वारा प्रत्रैष्टि यज्ञ, अग्निदेव का आशीर्वाद, चारों पुत्रों का जन्म, भगवान राम का कौशिल्या को विराट स्वरूप का दर्शन, अंतःपुर में उल्लास, बाललीला, ताड़कावध और अहिल्या–उद्धार का प्रदर्शन है। अगले दृश्यों में राजकुमारों का यज्ञोपवीत, राक्षसों द्वारा विश्वामित्र के यज्ञों में बाधा, विश्वामित्र यज्ञ रक्ष हेतु राम–लक्ष्मण को लेने के लिये अयोध्या प्रस्थान, राक्षसों के विकट रूप का चित्रण, सुबाहु–मारिच का दरवार, राजा दशरथ का पुत्र प्रेम में विह्वल होना, विश्वामित्र का राम–लक्ष्मण को वन ले जाना, यज्ञ में बाधा पहुंचाने वाले सुबाहु का वध, मारीचका समुद्र पार फेंकने आदि का वर्णन तुलसीकृत रामचरित्र मानस के समान है। तत्पश्चात् सीता–स्वयंवर के लिए जाते विश्वामित्र के साथ राम–लक्ष्मण का अत्यंत मनोहारी वर्णन हुआ है, मार्ग में गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या उद्धार का चित्रण हुआ है।

छटा अंक में पुष्पवाटिका एवं नगर अवलोकन के दृश्यों का वर्णन है, इस अंक में कुल नौ दृश्य हैं, जनकपुर में राम–लक्ष्मण राजा जनक का आतिथ्य, मार्ग में जनकपुरवासियों का आकर्षण, पुष्पवाटिका में लता ओट में राम–सीता द्वारा एक दूसरे का मोहक आकर्षण, पति रूप में प्राप्त करने के लिए गिरिजा के वरदान का वर्णन है। सातवें अंक में सीता–स्वयंवर एवं धनुषयज्ञ की झांकी का छः दृश्यों में वर्णन है। अंतिमदृश्य धनुसयज्ञ एवं परशुराम–संवाद आकार में बड़ा है, इस अंक में भक्ति, वीर और हास्य रस का सुन्दर समन्वय हुआ है। इसमें रावण–वाणासुर का गुरु के धनुष को न उठाना, उपस्थित राजाओं का धनुष न उठा सकना तथा राजा जनक की विह्लता का वर्णन हुआ है। परशुराम–लक्ष्मण संवाद अत्यंत आकर्षक है। अंततः परशुराम राम में भगवान का स्वरूप समझकर सिर झुकाते हैं, फूल वर्षा होती है तथा श्रीराम को जयमाल डालने तथा मंगलगान के साथ इस नाटक की समाप्ति हो जाती है। इस प्रकार यह नाटक अत्यंत रोचक एवं उत्कृष्ट है।

श्री राचमरित नाटक पर संस्कृत एवं पारसी नाटकों का प्रभाव स्पष्ट है। कथानक केवल बालकांड पर आधारित है, अतः नाटकीय संघर्ष का अभाव है। पात्रों की संख्या अधिक है। नाटक की कथावस्तु, सात अंकों में विभाजित है। पुरुष पात्र तीन प्रकार के हैं — देवगण, महापुरुष, एवं ऋषि, दानव एवं राक्षस पात्र। इसी प्रकार स्त्री पात्रों में रानी सतरूपा, मंदोदरी तथा मालती, लवंग आदि सखियां मुख्य हैं। चरित्र चित्रण की दृष्टि से नाटक के नायक श्रीराम एवं नायिका सीता जी उत्कृष्ट हैं। इस नाटक में मुंशीजी ने श्रीराम के नायकोचित गुणों का भरपूर विकास कराया है। भगवान श्रीराम वीर, धीर, साहसी एवं विवेकशील हैं। वे सौन्दर्य के आभार हैं। कतिपय उदाहरणों से नाटक की महत्ता उजागर हो सकेगी —

वात्सल्यभाव —

चलो देखें भैया–खेलें महल में रघुरैया,
कलाधर मचलत कभहूँ, हंसत कबहूँ हैं,
कबहूं करत किलकार।
विप्र–मुख वचन तोतरे बोलत,
जनु–वीणा–झंकार। अमृत बरसैया।

वीररस —

विश्वविजयि वृत्तासुर का है
जो वध करने वाला,
मेरे उसी अमोघ वज्र से पड़ने दो उसका पाला।
बहुत दिनों की युद्ध लालसा, रण में आज निकालूंगा।
दिग्विजयी दुर्मद रावण का नाम शेषकर डालूंगा।

प्रकृति चित्रण —

नित सुन्दर नव–नव रूप धार,
विहरत बसंत की है बहार,
वन बागन बीथिन–बीच आज,
सहित सजनी ऋतुराज साज।
लिपटीं बेलें तरु लहलहात,
हैं नये फूल–फल, नये–पात।

चरखारी : ऐतिहासिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक वैभव

— रामप्रकाश गुप्त



बुन्देलखण्ड के कश्मीर नाम से विख्यात चरखारी महोबा जिले के अन्तर्गत एक छोटा सा नगर है किन्तु इसका इतिहास साहित्य, संस्कृति एवं कलाओं की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। चरखारी अपने मंदिरों, महलों, उद्यानों, तालाबों और प्राकृतिक वैभव के लिए विख्यात है। पर्यटकों को आकर्षित करने वाली इस स्थली का इतिहास बुन्देलखण्ड केशरी महाराजा छत्रसाल के वंशजों से जुड़ा है।

चरखारी नगर का विकास जैतपुर नरेश जगतराज के समय में हुआ। चरखारी का पुराना नाम चक्रपुरी कहा जाता है। माण्डव्य ऋषि की तपोभूमि होने के कारण इसे माण्डव्यपुरी भी कहा गया है। जनश्रुतियों के अनुसार निकटवर्ती राठ नगरी राजा विराट की राजधानी थी और चरखारी उनकी चरोंखर (चारागाह) थी जहाँ राजा विराट की गायें चरतीं थी। चरोखर से ही चरखारी नाम विकसित हुआ है। महाराजा छत्रसाल के पुत्र जगतराज यहाँ रंजीत पहाड़ी पर शिकार खेलने आते थे उस समय यहाँ घना जंगल था। जिसमें चरखारे (हिरन जैसे पशु) भारी संख्या में रहा करते थे। रंजीत पहाड़ी उन्हें बहुत पसन्द आई और उन्होंने यहाँ एक दुर्ग बनाने की सोची। रंजीत पहाड़ी पर उस समय साधु मंगलदास रहते थे उनका आशीर्वाद प्राप्त कर जगतराज ने यहाँ दुर्ग निर्माण करानें की तैयारी की। किन्तु चरखारी के किले का निर्माण वास्तविक रूप में चरखारी राज्य के संस्थापक महाराजा खुमान सिंह ने ज्येष्ठ शुक्ल १० मंगलवार सम्वत् १६२० वि. में प्रारम्भ कराया था। साधु मंगलदास के नाम पर किले का नाम मंगलगढ़ रखा गया।

चरखारी राज्य का इतिहास —

चरखारी राज्य के शासक बुंदेलखण्ड केशरी छत्रसाल के वंशज थे। छत्रसाल ने द्वितीय पुत्र जगतराज को जैतपुर का राज्य दिया था। जगतराज के ज्येष्ठ पुत्र कीरतसिंह की मृत्यु

---

०० ०० ००

है प्रतीची में अभी कुछ कालिमां,
किन्तु प्राची में प्रकट है लालिमां।
सूर्य के रथ में हरित हय जुत गये,
लोक के घर—द्वार मानों पुत गये।

नाटक में गद्य—पद्य भाषा के दोनों स्वरूपों की संयुक्त छटा देखने को मिलती है। पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है। खड़ी बोली के संवर्धन—परिवर्धन की स्पष्ट स्थिति—परिस्थिति का आभास इस नाटक से होता है। भाषा बोधगम्य है। इसमें तीन प्रकार के कथोपकथन देखने को मिलते हैं — स्वगत कथन, लम्बे—लम्बे पद्यमय कथन तथा हास्य युक्त संवाद। संवाद अत्यंत रोचक एवं भाव—वर्धक है।

यथा — मारिचि सुबाहु संवाद देखिये —

मारिचि—भाई सुबाहु!
'कहा कहों तिंहु लोकमें, धीर न वीर लखात;
युद्ध हेतु भुज दंड मम, फरक—फरक रहजात।'

सुबाहु — हम तें डर सुर भगत ज्यों, प्रबल मेघ तैं मौंन।
कौन वीर या जगत में, करै बराबरि जौन।।

नाटक की भाषा में बुन्देली शब्दों का भी स्वाभाविक ढंग से प्रयोग हुआ है। इस प्रकार नाटक के संवाद भाव—पूर्ण, पत्रानुकूल एवं सफल रहे हैं। नाटक में गीतों के साथ—साथ कवित्त, सवैया एवं दोहों का भी प्रयोग हुआ है। नाटक के गीत राग—रागनियों से परिपूर्ण है। संगीत शास्त्र के अनुसार पद—रचना पर भी मुंशी जी ने यथेष्ट ध्यान दिया है, भैरवी स्वर देखिये—

उडगण क्षय भी हैं, दीखते भी नहीं हैं,
मत अब रजनी है, पूर्ण संध्या बनी है।
मृदुल मधुर निद्रा, चाहता चित्त मेरा,
पर अब चलना है, हो गया है सवेरा।।

मुंशी अजमेरी हिन्दी साहित्य जगत के मूर्धन्य नक्षत्र हैं, द्विवेदी युग में राष्ट्रकवि दद्दा मैथिलीशरण गुप्त के सानिध्य में रहकर उन्होंने खड़ी बोली के उन्नयन में यथेष्ट योगदान किया है। उनकी रचनायें हिन्दी की अमूल्य निधि हैं, जिन पर विस्तार से चर्चा की जानी आवश्यक है। उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनों ही सदा स्मरण किये जाते रहेंगे। वे सिद्धहस्त कवि तो थे ही, अनेक भाषाओं के ज्ञाता भी थे। बुन्देली एवं बुन्देलखण्ड के लिए उनका योगदान स्तुत्य रहा है। उनकी वाणी में जादू था। संगीत के तो वे प्रकांड पंडित थे ही।

मैं भाई श्री विद्यासागर जी का हार्दिक आभारी हूं कि उन्होंने मुंशी जी के 'श्रीरामचरित नाटक' के सम्बन्ध में जानकारी दी। यदि यह नाटक प्रकाश में आ जाता है तो जन—साधारण भी उससे लाभान्वित हो सकता। इसका प्रकाशन न हो सकना हिन्दी साहित्य के लिए दुर्भाग्य पूर्ण ही कहा जायेगा।

—९७, टकसाल, झांसी ☐

जगतराज के जीवनकाल में ही हो गई थी। १७५८ ई. में जगतराज के निधन के बाद उनके द्वितीय पुत्र पहाड़सिंह ने जैतपुर का राज्य हथिया लिया। कीरत सिंह के पुत्रों गुमान सिंह को बाँदा, अजयगढ़ एवं खुमान सिंह को चरखारी का राज्य देकर पहाड़ सिंह ने शान्त कर दिया था। खुमान सिंह को चरखारी का राज्य १७६५ ई. में दिया गया था। खुमान सिंह ने चरखारी राज्य को संगठित कर व्यवस्था कायम की। वह एक वीर योद्धा थे उन्होंने १७६८ ई. में हिम्मत बहादुर गुंसाई के बुन्देलखण्ड आक्रमण को युद्ध में परास्त कर विफल कर दिया था। इससे उन्हें गर्व उत्पन्न हो गया और उन्होंने १७८२ ई. में अपने अग्रज गुमानसिंह के बाँदा राज्य पर आक्रमण कर दिया। गुमान सिंह के सेनापति नौने अर्जुन सिंह ने युद्धस्थल में ही खुमान सिंह को मार डाला था। खुमान सिंह के बाद उनके पुत्र विजय बहादुर राजा बने। उनके शासन काल में १७८२ में मराठों ने आक्रमण किया किन्तु वह चौथ वसूलकर लौट गये। सन् १७८५ ई. में बांदा के सेनापति नौने अर्जुनसिंह ने चरखारी राज्य पर आक्रमण कर विजय बहादुर को चरखारी राज्य से निष्कासित कर दिया। वह झांसी के झोकन बाग में प्रवासी रहे। सन् १७८९ ई. में विजय बहादुर ने अलीबहादुर व हिम्मत बहादुर गुंसाई के सहयोग से अपना राज्य पुनः प्राप्त कर लिया। विजय बहादुर का एक पुत्र पूरनमल अत्यंत बलिष्ठ एवं पराक्रमी था वह तलवार के एक ही बार से ऊँट का पेट काट देता था। उससे आसपास राजा भय खाते थे। विजय बहादुर के समय में ही बुन्देलखण्ड में ब्रिटिश शासन के पैर जमने लगे थे। इसलिए विजय बहादुर ने भी कम्पनी सरकार के प्रतिनिधि। जॉन बेली से २९–७–१८०४ में इकरारी समझौता किया। किन्तु पड़ौसी जसों एवं बिजावर की सनद उन्हें २५–३–१८११ ई. में प्राप्त हुई। विजय बहादुर के तीन पुत्र ईश्वरी सिंह पूरन मल्ल और गोविन्ददास सन् १८२२ में निस्संतान स्वर्गवासी हो गये। विजय बहादुर की उपरानी के पुत्र रंजीत सिंह भी स्वर्गवासी हो गये। इसलिए राजा विजय बहादुर ने रंजीत सिंह के पुत्र रतन सिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाया। विजय बहादुर के १८२८ में स्वर्गवासी होने के उपरान्त रतन सिंह राजा बने इस समय उनकी अवस्था १४ वर्ष की थी। अल्पायु होने के कारण काका मरन सिंह संरक्षक बनाये गये। रतनसिंह के शासनकाल में १८५७ का स्वतंत्रता संग्राम हुआ। रतनसिंह ने उस समय अंग्रेजों का सहयोग किया इन्होंने महोबा के कलेक्टर मि. कार्न को दुर्ग में शरण दी थी। २८ फरवरी १८५८ ई. में तात्या टोपे ने चरखारी पर आक्रमण कर किले का घेरा डाल दिया। राजा रतन सिंह ने तीन लाख रुपया देकर पीछा छुड़ाया। रतन सिंह के सन् १८६२ ई. में निधन के बाद जयसिंह राजा बने उस समय उनकी अवस्था १२ वर्ष थी इसलिए उनकी माता बखत कुमारी संरक्षिका रही। जयसिंह को १८७४ ई. में प्रशासनिक अधिकार प्राप्त हुए। जयसिंह के बाद मलखान सिंह १८८० में राजा बने और १९३३ ई. तक प्रशासन देखते रहे। उनके निःस्संतान निधन के बाद अरिमर्दन सिंह को गोद लेकर राजा बनाया गया। उनके समय में प्रशासनिक व्यवस्था सुस्त रही और रियासत में जन आन्दोलन शुरू हो गये परिणाम स्वरूप अंग्रेज सरकार ने उन्हें निर्वासित कर दिल्ली में रहने को विवश किया। दिल्ली में ही १९४० ई. में उनका भी निःसन्तान निधन हो गया। उनकी रानी ने १९४० में सरीला से जयेन्द्र सिंह को गोद लेकर राजा बनाया। उनके समय में राज्य में जनान्दोलन तीव्र हो गये। १९४७ ई. में भारत स्वतंत्र हो गया। १९४८ में राजा जयेन्द्र सिंह ने १५९०० वार्षिक प्रिवीपर्स लेकर चरखारी राज्य का विलय विन्ध्य प्रदेश में कर दिया।

चरखारी राज्य में स्वतन्त्रता आन्दोलन –

चरखारी राज्य में क्रान्तिकारी पं. परमानन्द से प्रेरणा लेकर १९२१ ई. में पं. रामसहाय तिवारी ने आन्दोलन का सूत्रपात किया। उनका साथ ग्यासीलाल अग्रवाल और फूल खां ने प्रमुखता से दिया दोनों लोगों को कारावास की सजा दी गयी। १९३८ ई. में चरखारी राज्य का दीवान एनुद्दीन बना उसकी साम्प्रदायिक एवं जन विरोधी नीतियों के विरुद्ध शत्रुघ्न सिंह, मन्नीलाल द्विवेदी, कामता प्रसाद सक्सेना आदि ने प्रबल आन्दोलन चलाया। पं. मन्नीलाल द्विवेदी ने १९४० ई. में 'पीड़ित चरखारी' पत्र जन जागृति हेतु निकाला।

चरखारी राज्य का साहित्यिक अवदान –

चरखारी राज्य में कवियों व साहित्यकारों का संरक्षण सदैव रहा। पं. मोहन लाल मिश्र (जन्मसं. १५९० वि.) महाराजा विजय बहादुर के दरबारी कवि थे। उन्होंने 'श्रृंगार सागर' ग्रन्थ रचना की थी। कवि तीर्थराज का जन्म चरखारी में सं. १८०० वि. में हुआ था। उन्होंने श्रृंगार रस के 'रसानुराग' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। खुमान कवि महाराजा विजय बहादुर के समकालीन थे। वह हनुमान जी के परम भक्त थे उन्होंने– हनुमान पंचक, हनुमान पच्चीसी हनुमत पचीसी, हनुमत नखसिख, लक्ष्मण शतक, नृसिंह चरित्र, नृसिंह पचीसी, नीति विधान अष्टयाम, और समरसार ग्रन्थों की रचना की आपकी मान पचीसी अत्यंत प्रसिद्ध रचना है। चरखारी नरेश विजय बहादुर ने अपने झांसी प्रवास काल में 'विक्रम विरुदावली' काव्य ग्रंथ की रचना की थी। प्रहलाद बंदीजन राजा जयसिंह के आश्रित दरबारी कवि थे। प्रतापसाहि बंदीजन का जन्म १८५० वि. में हुआ था उन्होंने १. रामचन्द्र का शिख–नख २. व्यंग्यार्थ कौमुदी ३. काव्य विलास ४. भाषा भूषण तिलक ५. बलभद्र के शिखनख का तिलक ६. जयसिंह प्रकाश ७. श्रृंगार मंजरी ८. श्रृंगार शिरोमणि ९. अलंकार चिंतामणि १०. काव्य विनोद ११. रसराज टीका तथा रसराज चन्द्रिका आदि ग्रन्थों की रचना

की। व्यंग्यार्थ कौमुदी उनका सर्वोत्तम ग्रन्थ है। चरखारी नरेश मलखान सिंह कला प्रेमी एवं सुकवि थे उन्होंने गीता का पद्यात्मक अनुवाद कर इंडियन प्रेस प्रयाग से प्रकाशन कराया था। आधुनिक काल में भी चरखारी में अनेकं रचनाकारों ने साहित्य सृजन किया। आगा हश्र कश्मीरी ने अपना प्रसिद्ध नाटक 'सीता वनवास' और 'राम अवतार' यहीं लिखे थे। वासुदेव खरे ने 'देवयानी' महाकाव्य की रचना की। कालिका प्रसाद सक्सेना 'मकरन्द' भी अच्छे साहित्यकार थे चरखारी राज्य का इतिहास 'हिस्ट्री आफ चरखारी स्टेट' १९२५ ई. में मातादीन त्रिवेदी ने और 'चरखारी स्टेट का भूगोल' पुस्तक नाथूराम द्विवेदी ने लिखी थी।

चरखारी के ऐतिहासिक भवन –

चरखारी में ऐतिहासिक भवनों का निर्माण वहां के कला प्रेमी नरेशों ने कराया है। मंगलगढ़ दुर्ग खुमान सिंह ने बनवाया था यह दुर्ग एक ऊँची पहाड़ी पर निर्मित एक अभेद्य दुर्ग है। जिसमें चारों ओर परकोटा है। क़िले में राजमहल, सिद्ध बाबा की कुटिया एवं गुफा तथा अनेकों मंदिर व अन्य भवन है। सूपा दरवाजा एवं किले का गुर्जा भी दर्शनीय है। किले पर १८५७ की फतेहरोशन तोप भी रखी हुई है। चरखारी नगर में स्थित ड्योढ़ी महल, राजकीय अतिथि गृह, तालकोठी का निर्माण राजा जयसिंह ने करवाया था।

चरखारी के मन्दिर –

चरखारी में १०८ मंदिर राधा कृष्ण के हैं इसलिए इसे लघु वृन्दावन कहा जाता है। लोकगीत की पंक्तियाँ प्रसिद्ध हैं – वृन्दावन भई चरखारी। किले में स्थित बखत बिहारी एवं बाँके बिहारी के मन्दिरों का निर्माण राजा रतन सिंह ने कराया था। गुमान बिहारी मंदिर यहाँ का सबसे बड़ा मन्दिर है। अन्य मन्दिरों में श्री गोवर्धन नाथ मन्दिर, छैल बिहारी मंदिर, चक्रधारी मंदिर, रसिक बिहारी मंदिर श्री गोपाल जी मंदिर, वासुदेव जी मंदिर, एवं मोहनराजा जी मंदिर प्रमुख हैं। इन मंदिरों का निर्माण यहां के धर्मप्रेमी एवं कला प्रेमी शासकों ने समय–समय पर कराया।

चरखारी के उद्यान –

प्रकृति प्रेमी चरखारी नरेशों ने नगर को हरा–भरा रखने एवं अपने आमोद–प्रमोद हेतु नगर में अनेक बाग–बगीचे लगवाये महाराज विजय बहादुर ने नजर बाग, राजा रतन सिंह ने मोती बाग, गंगा सिंह ने महाराज बाग व राव बाग अरिमर्दन सिंह ने राधिका निवास, गुमान कुँवरि ने रायनपुर बाग व गुमान बाग एवं गंगासिंह ने सुदामापुरी बाग लगवाये। इन उद्यानों से नगर के सौन्दर्य में वृद्धि हुई और नगर का वातावरण प्राकृतिक सौन्दर्य से ओत प्रोत हो गया है।

चरखारी के सरोवर –

चरखारी नरेशों ने जनता की सुख सुविधा एवं कृषि की उन्नति हेतु नगर में अनेक बृहद तालाबों का निर्माण कराया मंगलगढ़ दुर्ग में ही अनेक तालाब हैं। चरखारी नगर के प्रमुख तालाबों में रतनसागर, जयसागर, विजयसागर, मलखानसागर, गुमानसागर, तालाब सुदामापुरी, किले का बिहारी सागर, मण्डनाताल एवं कांकुन ताल प्रमुख हैं। सभी तालाबों के नाम उनके निर्माताओं के नाम पर रखे हैं। इन बृहद सरोवरों में पक्के घाट बने हैं और इनमें अथाह जलराशि वर्ष भर हिलोरें लेती रहती हैं।

चरखारी का पारसी थियेटर –

चरखारी के राज अरिमर्दन सिंह कला प्रेमी थे वह नाटकों के बहुत प्रेमी थी उस समय पारसी थियेटर कम्पनियों के नाट्य मंचन की धूम थी। एक बार राजा अरिमर्दन सिंह कलकत्ता गये वहाँ पर न्यू अल्फ्रेड कम्पनी के कोरंथियन थियेटर्स में आगा हश्र का नाटक 'आंख का नशा' चल रहा था। नाटक देखने को लेकर उनका नाट्य कम्पनी के प्रबन्धकों से विवाद हो गया तथा बात की बात में उन्होंने उस थियेटर को सवा लाख में खरीद लिया। वह उसे पूरी साज सज्जा के साथ चरखारी ले आये। चरखारी के स्थानीय और थियेटर कम्पनी के कलाकारों को मिलाकर 'दी रायल ड्रामेटिक सोसायटी चरखारी' की स्थापना की गयी तथा नाटकों के मंचन हेतु एक रंगशाला का निर्माण पारसी रंगमंच की शैली में १९२६–२७ में महाराजा ने कराया। सुप्रसिद्ध नाटककार आगा हश्र कश्मीरी को पन्द्र सौ चांदी के कलदार मासिक देकर चरखारी बुलाया गया उसे ताल कोठी आवास हेतु दी गयी। वह जनवरी १९२६ से मई १९२८ तक चरखारी में रहे। आगा हश्र ने चरखारी में रहकर 'सीता वनवास' और 'रामअवतार' जैसे प्रसिद्ध नाटकों की रचना की। पारसी रंगशाला का निर्माण भी आगा हश्र के ही निर्देशन में हुआ था। थियेटर की लम्बाई चौड़ाई १२०x७५ एवं ऊँचाई ६० फुट है। इसमें रंगमण्डप, दर्शक दीर्घा, गलियारा आदि बनाये गये हैं मंच की ऊँचाई जमीन से चार फुट है। किन्तु महाराजा अरिमर्दन सिंह की राज्य के धन का इस प्रकार अपव्यय किये जाने पर अंग्रेजों ने उन्हें राज्य छोड़कर दिल्ली रहने को विवश किया। राजा अरिमर्दन सिंह के जाते ही आर्थिक अभावों में यहाँ नाटकों का मंचन संभव न हो सका और १९४४ में कम्पनी का सामान पच्चीस हजार में दि ग्रेट शेक्सपीयर कम्पनी लखनऊ को बेच दिया गया यद्यपि स्थानीय कलाकारों ने 'दि जयहिन्द थियेट्रीकल कम्पनी' की स्थापना १९४७ में की किन्तु वह भी धनाभाव में न चल सकी। पारसी थियेटर अभी भी चरखारी में स्थित है।

चरखारी का एक अन्य आकर्षण यहाँ का गोवर्धन नाथ का मेला है जो कार्तिक मास में एक माह तक चलता रहता है।

— विद्यानगर कॉलोनी, चिरगांव, झांसी

बुन्देलखण्ड के व्यंजन और काव्य परम्परा

— डॉ. प्रेमलता 'नीलम'

किसी भी देश प्रान्त, नगर, गांव की लोक संस्कृति परम्परा को वेश भूषा, रहन—सहन, खान—पान, बोली से पहचाना जा सकता है, प्रत्येक जनपद के लोक जीवन एवं संस्कृति में अंतर होता है। चाहे वह मालवा, छत्तीसगढ़ हो बघेली, ब्रज, राजस्थानी, पंजाबी, गुजराती, तमिल, तेलगू या मराठा क्षेत्र हो इन सभी क्षेत्रों में बोली भाषा के साथ साथ खान—पान में अंतर होता है। बुन्देलखण्ड में भी लोकसंस्कृति की अपनी विलक्षण पहचान है बुन्देलखण्ड के व्यंजन भी अन्य क्षेत्रों की भांति रुचिकर सुगंधित स्वादिष्ट एवं पौष्टिक है बुन्देलखण्ड में यह कहावत प्रचलित है —

मऊवा, मेवा, बेर कलेवा गुलगुच बड़ी मिठाई।
इतनी, चीजें चाहो तो बुन्देल में करो सगाई।।

बुढ़े बुजुर्ग ने यह भी कहा है कि —

''मऊवा, बेर, चना, चबैना, बिन, गरी, चिरौजी, परे न चैना।''

उक्त खाद्य वस्तुओं से निर्मित कलेवा अर्थात नाश्ता बुन्देलखण्ड में रुचिकर माना जाता है भोजन में विशेष तौर पर निम्न व्यंजनों का प्रयोग होता है, जिसे लोक कवियों ने काव्यात्मक रूप में वर्णन किया है —

डुबरी, महेरी, लचका, लपटा, कढ़ी, बरी, दार और भात।
बराफरा से चुरमुर चापर, करौदा, आंवरे, चटनी संग सुहात।
कुदई, कनूका, मक्का, जुनरी, बाजरा, बिर्रा, की रोटी अजब बहार।
कुमढ, खीर, सिमैया, हलुआ, गक्करियां, भरता तुरई, लौकी, रसदार।।
अंगर भुजां, चीला, तबा के ढडूला, बना परसे सुगर बुन्देली नार।।
गन्ना चौखे, सिघाड़े खावे, आटे के लड्डुआ, घी गुर डार।।

बुन्देलखण्ड के इतिहास वेत्ताओं एवं विद्वानों के अनुसार प्रत्येक राज्यकाल में भोजन रुचि निम्नानुसार भिन्न भिन्न रहा है जैसे गौड़ो की लोक संस्कृति में जंगली, फल, फूल, कन्दमूल, महुआ, अचार, बेर, तेंदू, मूंगफली, के व्यंजन आदि वैदिक युग के भोज्य पदार्थ की बुन्देलखण्ड में प्रचलित हुए जैसे आटा, गुड़ खसखस नारियल के माल पुआ, गुलगुला, मीठा, चांवल, सत्तू, अमरस, शकरकंद इसी तरह मौर्य थुंग काल में महाभारत काल का प्रभाव पड़ा इसी समय से दूध और दूध से वने भोज्य पदार्थ तथा गेहूं, चांवल, दाल, चना के व्यंजन आज प्रचलन में हैं, आज विशेषतः मेथी, पालक, सरसौं, बथुआ, चना राजागिर की भाजी, विभिन्न, विधियों से घर घर में रुचिकर तैयार की जाती है, मौसम के अनुकूल ककड़ी, कमलगटा, सिघाड़े, गन्ना, हरी पत्तेदार, सब्जी, फलमेवा का प्रयोग भोज्य में खूब किया जाता है, ज्यादातर अतिथियों के सत्कार में बरा, पापड़, लुचई (पूड़ी) कड़ी, सिमइंया, सीरा (कसार) मोतीचूर, लड्डू रायता, इमली, आम का पना, अधिकतर स्वादिष्ट और स्वास्थ्य की दृष्टि से पकाये व परोसे जाते हैं।

वैज्ञानिक दृष्टि से बुन्देलखण्ड में भोजन संबंधी कुछ लोक मान्यताएं भी प्रचलित हैं जैसे पुराना पान, नया घी, बूढ़े पुराने कहते हैं कि बड़े भाग से मिलते हैं लोक कवि ने कहा है कि —

''पान पुरानों घी नओ उर कुलवंती नार।
जे तीनइं तब पाइये जब हो प्रसन्न करतार।।''

इसी तरह कल कौन सा भोजन ग्रहण करना चाहिये लोक मान्यता स्वास्थ्य की दृष्टि से शिक्षाप्रद भी है जैसे —

''चैत मीठी, चीमरी, वैसाख मीठा मठा,
जेठ मीठी खीर, खांय भादो भुंजे चना।
क्वार, मीठी काकरी, ल्याब तुरतइं टोर कें,
कातिक मीठी कुदई, दही में डारो मोर कें
अगहन खाब जुनरी, झुर्रा नीबू, जोर के
पूस मीठी खीचरी, गुड़ डारो उमें फोर कें।''

कौन सा भोजन किस ऋतु में नहीं लेना चाहिए यह वर्जनाएं भी लोक प्रचलित है—

चैत गुर, वैसाखे तेल, जेठे मऊआ, असाढे बेल,
सावन भाजी, भादों मही, क्वार करेला, कार्तिक दही।
अगैन जीरौ, पूसै धना, माघै मिसरी, फागुन चना।
इतनी चीजें खैहो सही मरहौ नई तो परहो सही।।

बुन्देलखण्ड में लोक संस्कृति में व्यंजनों का प्रभाव पड़ता है। विज्ञान कहता है, कि पौष्टिक भोजन ही ग्रहण करें पाचन प्रणाली पचा सके उतना ही खायें यह कहावत प्रसिद्ध है

''पचे सो खावै रुचै सो बोलें।।''

भोजन भांति भांति पकाया जाय निम्न कहावत यह सीख देती है कि चांवर की कनी उर भाल की अनी, अर्थात कच्चा चांवल स्वास्थ्य के लिये हांनिकारक है वैज्ञानिक दृष्टि से स्वच्छ पौष्टिक आहार, शरीर को स्वस्थ एवं प्रसन्न रखता है उत्तम आहार से ही शारीरिक एवं मानसिक विकास होता है, इसलिये कहा गया है, कि ''जैसा खाओ अन्न, ऊँसई भओ मन।'' भोजन के साथ साथ पानी पीने की मान्यताएं भी लोक मानस को प्रभावित करती हैं जैसा पानी पीजिये वैसी बानी बोलिये।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में लोक संस्कृति लोक आहार, क्षेत्रीय मान्यताएं पाश्चात्य संस्कृति के कारण चकनाचूर हो गई है,

ईसुरी काव्य में सामाजिक चेतना

— डॉ. एन.आर. चौरसिया

सन् १८५७ की क्राँति विफल हो जाने के पश्चात् चारों ओर एक निराशा भरा घटाटोप छा गया। लोक चेतना मुरझा सी गई। लोक साहित्य भी गतिहीन हो गया। ऐसे विकट समय में 'ईसुरी' का प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने लोक साहित्य को गति प्रदान कर, मुरझाई लोक चेतना में, प्राणों का संचार किया। उन्होंने क्राँति का जो शंख फूंका, वह केवल विद्या तक ही न सीमित रहकर, लोकगीत की पुरानी मान्यतायें बदल डाली। यहाँ तक कि ग्रामीण जीवन की घरेलू बातें, उनकी फागों के माध्यम से होने लगीं। लोक साहित्य को इतना व्यापक आयाम देने का काम ईसुरी जैसा समर्थ क्राँतिकारी कवि ही कर सकता है। उनकी फागों में केवल उनका ही हृदय तरंगायित नहीं हुआ बल्कि एक सच्चे और ईमानदार बुँदेलवासी की भावनायें मुखरित हुई हैं। इसीलिये उनकी फागें बुँदेली कंठ का कंठाहार ही नहीं बल्कि बुँदेली कंठ का पर्याय बन गई।

'ईसुरी' का समय विशेष परिवर्तन का था। जीवन की विभिन्न गतिविधियों में मानव समाज इतना उलझा हुआ है कि उसे मनोरंजन आदि के लिये फुरसत ही कहाँ? और है भी तो बहुत कम। ईसुरी ने समय की इस गति को पहचाना। व्यस्त मानव की प्रकृति को समझा। परिणाम स्वरूप 'चौकड़िया' नाम की चार कड़ी की एक ऐसी फाग को जन्म दिया, जो सर्वथा नूतनता लिये हुये, नवीन शैली और स्वरलहरी में, कम से कम समय में गा सकने वाली तथा मन को छू लेने वाली, चुटीली बातों को अपने में संजोये थी।

'ईसुरी' की रचना–धर्मिता जनवादी है। शब्दों का वाग्जाल नहीं। तुलसी के बाद हिन्दी में इतना सहज, सरल और मन को स्पर्श करलेने वाला कवि ईसुरी ही है। जिसे आम आदमी की पीड़ा की, सीधी अनुभूति है। चाहे सामंती शोषण की हो या प्राकृतिक प्रकोप की, ईसुरी चुप न रह सके। लोक जीवन की एक झाँकी देखिये जिसमें प्रगतिवाद और यथार्थवाद का सामंजस्य दिखाई देता है। भारतीय किसान के जीवन का प्रमुख आधार, उसके बाग–बगीचे और खेतीबाड़ी ही है। जो प्रकृति की कृपा पर आज भी अवलम्बित है। यदि प्रकृति इनसे रूठ जाए तो जन–जीवन अस्त–व्यस्त और दयनीय हो जाता है –

आसौं लै गओ साल करौंटा, करौ खाव सब खोंटा।
गौऊँ, पिसी खां गिरुआ लग गओ, मउवन लग गओ लोंका।
ककना, दौरी सब धर खाये, रै गओ फकत अनोटा।
कात 'ईसुरी' बांदे रइयौ, जबर गाँठ कौ घोंटा।

प्रकृति के रूठने पर, हाथ पर हाथ धरे रहकर नहीं बैठना है। 'करौ खाव सब खोटां' से स्पष्ट है कि इसमें अन्य उद्यम की सहज प्रेरणा छिपी है। वहीं दूसरी ओर ''बाँदें रइयौ जबर गाँठ कौ घौंटा।'' में साहस न छोड़ने की बात स्पष्ट परिलक्षित होती है।

समाज की सम्पन्नता और विपन्नता की स्थितियों का चित्रण इनकी फागों में हुआ है। ''बर जावै सूका तोरी साल, हमाई ननद बिक गई फुंदइया सी'' स्पष्ट है कि अकालों के समय मनुष्य तक का क्रय–विक्रय हो जाता है। बेचारे गरीबों को तो दो–दो दिन के फाँके पड़ने लगे। उनके दर्द भरी आहें, उनके हृदयों से निकले बिना कैसे रह सकतीं हैं।

आसौं हौंस सबई के भूले, कइयक काँखे फूले।
कच्चे बेर बचे हैं नइयाँ, कंगीरन ने रूले।
फाँके परत दिना दो–दो के, परचत नइयाँ चूले।
मारे–मारे फिरत 'ईसुरी', बड़े–बड़े दिन दूले।

एक समाज का चितेरा और जागरूक कवि ही ऐसी अभिव्यक्ति कर सकता है। सामंती शोषण का यह यथार्थ चित्रण है। अकाल की बाद की स्थिति के लिये नागार्जुन की पंक्ति बरबस याद आ जाती है –

इसलिये व्यक्ति के आचार, विचार और स्वास्थ्य में दिनों दिन परिवर्तन आता जा रहा है प्राचीन काल में आहार प्रक्रिया शुद्ध स्वच्छ होती थी आज के जैसा प्रदूषण मिलावट नहीं था इसलिये लोक मानस बीमारियों से कोसों दूर थे। वर्तमान में बीमारियां मक्खी, मच्छर की तरह फैल रही हैं आधुनिकता की दौड़ में मानव जीवन को बदल दिया है जमीन पर बैठकर भोजन करने की जगह कुर्सी टेबिल ने ले ली है। विवाह अवसरों पर पंगत बैठा करती थी इसके स्थान पर गिद्ध भोज की तरह रात्रिकालीन डिनर होने लगे हैं आज आवश्यकता है लोक व्यापी परम्पराओं को पुन: जीवित करने की ताकि आने वाली युवा पीढ़ी लोक परम्पराओं और बुन्देली आहार से परिचित हो सके और स्वस्थ्य मन में स्वस्थ विचार जन्म ले सके। बुन्देलखण्ड की शान को पुन: वापिस लाये संक्रांति, बसंत पंचमी, जैसे पर्व पर इडली, डोसा नहीं, गूजा, पपड़ियां, खुरमा, बत्तियां खाये और अंत में यही कहूंगी।

''महोबा का देसी पान, है बुन्देलखण्ड की शान,
जय बुन्देलखण्ड जय, भारत।''

—लॉ कॉलेज के पास, दमोह

"कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास"

महुआ का वृक्ष कितना उपयोगी होता है? यह हर बुंदेलखण्डवासी खूब अच्छी तरह जानता है। ईसुरी अपने समय के समयदृष्टा थे। उनकी पैनी दृष्टि से भला कोई चीज कैसे ओझल हो सकती है? मानवीय संवेदनाओं के कवि होने के नाते, इनकी फागों में मानवीय जीवन की गहन और व्यापक अनुभूतियों का समावेश हुआ है। आज प्र्यावरण प्रदूषण की गहन समस्या, हम सबके सामने खड़ी है। निदान हेतु वन संरक्षण का दृढ़ संकल्प, पर्यावरण प्रेमियों के लिये कितना जरूरी है? इसकी चिंता उस समय ईसुरी को रही। किसी व्यक्ति द्वारा महुये का वृक्ष काटते हुए देख, उसकी पीड़ा उनकी वाणी में फूट पड़ी। जिसमें अत्यंत कोमल और अनुनय भरे शब्दों में वृक्षों की रक्षा की बात कही गई है।

इन पै लगै कुलरियाँ घालन, मउवा मानुस पालन।
इनै काटवौ न चाइयत ते, काट देत जे कालन।
ऐसे रुख, भूंक के लाने, लगवा दये नंदलालन।
जे करदेत नई सी 'ईसुर', मरी—मराई खालन।

लोग अनावश्यक ही हरे—भरे वृक्षों को काटते हैं। यह हमारे जीवनाधार हैं। इन्हें हमें नहीं काटना चाहिए। हमारी भूख शांत करने के लिये ही प्रकृति ने हम पर दया करके उत्पन्न किये हैं। इन वृक्षों से निर्जीव शरीर में सजीवता का संचार होता है।

नशीले पदार्थों का सेवन एवं धूम्रपान का प्रचलन आज हमारे समाज में बढ़ रहा है। कुछ लोग तो इसे सभ्यता का प्रतीक भी मानने लगे हैं। इससे अनेकों परिवार घुटनपूर्ण स्थिति में दम तोड़ रहे हैं। उनकी आर्थिक स्थिति चरमरा रही है, तथा सामाजिक वातावरण भी प्रदूषित हो रहा है। स्वयं उस व्यक्ति के हित में भी नहीं है, जो इसका सेवन या धूम्रपान करता हैं एक गृहणी जिसके पति को गाँजा पीने की लत् पड़ गई है। उसे अत्यंत आत्मीयतापूर्ण, लाड़—प्यार तथा दुलार से शिक्षा देती हुई कहती है —

"गांजौ पियौ न पीतम प्यारे, जरजैं कमल तुमारे।
जारत काम, बिगारत सूरत, सूकत रकत नियारे।
खाँसत—खाँसत फटैं पसुरियाँ, कफ के वहैं पनारे।
जौ तौ आय साधु—संतन कौ, अपुन गिरस्ती वारे।
'ईसुर' कात छोड़ दो सइयाँ, अबै उमर के बारे।।"

काश! हर गृहणी जिनका पति इन व्यवसों में लिप्त है, इसी प्रकार शिक्षा देती हो कितना अच्छा होता?

परिवार को नियोजित रखना आज की राष्ट्रीय समस्या है। परिवार की प्रगति का सारा दारोमदार इसी पर निर्भर करता है। यदि इस ओर ध्यान नहीं दिया गया तो घर—आँगन होते देर नहीं लगती। ईसुरी समाज के सजग प्रहरी थे। इसका अंदाज उनको उस समय भी था —

पर गई लरकन की रगदाई, बऊ बरसाने आई।
धोवन ज्वाब देत धोबे खों, अब नई होत धुआई।
सोरैं धोउत बसोरन चिक गई, नाउन कर गई नाई।
कैसौ करैं रज के मारैं, घर में आफत आई।
आँगन सौ घर हो गओ 'ईसुर' मांगन लगे खबाई।

आकाशवाणी और दूरदर्शन का उद्घोष — "पति—पत्नि का सच्चा प्यार, एड्स से बचने का आधार" पर नारी साहचर्य एड्स का एक प्रमुख कारक है। भारतीय समाज महान उदात्त और सदाशयी समाज रहा है। 'नारी जागृति मंच' इसके लिये विशेष कारगर सिद्ध हो सकता है। लोककवि लोक का चितेरा होता है। इस हेतु उसने पूर्व से ही सचेत कर रखा है, कि इस तरह की प्रवृत्तियां लोक में प्रचलित थीं, लेकिन समय—समय पर जागृत नारी ने सराहनीय पहल करके समाज को पददलित होने से बचाया और इस विकराल समस्या को उत्पन्न ही नहीं होने दिया। इसकी झलक इनकी इन पंक्तियों में दृष्टिगोचर होती है। जिनमें नारी ही उत्प्रेरक है। वह अपने पति को नीतिपूर्ण उक्ति द्वारा सम्बोधित करती हुई सचेत करती है और उसे सन्मार्ग पर लाने में सफल होती हैं यदि इस तरह का दायित्व समाज की हर नारी निभा सके तो समस्या से निजात दिला सकती है और जीवन के सुन्दर समतल में पीयूष स्रोत प्रवाहमान हो सकता है यथा —

भौरां जात पराये बागै, तनक लाज न लागै।
घर की कली कौंन कम फूली, काये न लेत परागै।
जब चाऔ रस लेव मौंज सें, छिन—छिन छवि अनुरागै।
जूँठी—जांठी पातर 'ईसुर', भावै कूकर, कागै।

उपर्युक्त विवेचन से समाज की एक ऐसी तस्वीर उभर कर सामने आती है कि 'ईसुरी' न केवल अपने युग के सम्वेदनशील तथा प्रगतिशील लोक कवि थे, वरन् वे एक क्राँतिकारी लोककवि थे।

— शास. शिक्षा महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.) □

विलुप्त हो रही है बुन्देलखण्ड में फड़बाजी तथा ख्यालबाजी

— अयोध्याप्रसाद गुप्त 'कुमुद'



बुन्देलखण्ड के लोकजीवन में लोकरंजन का सबसे सशक्त माध्यम 'फड़' कुछ दिनों बाद सिर्फ यादों की धरोहर रह जायेगा, तब न चंग की थाप पर ख्याल सुनने को मिलेंगे और न फगवारों की फागें। 'फड़' के अंतर्गत गांव की चौपाल में चबूतरे या तखत के बने मंच पर दो प्रतिद्वंदी पक्ष बैठते थे। संगीतबद्ध गायन प्रतियोगिता होती थी, गांव में फड़ रात भर चलता था। पूरे गांव के लोग–लुगाई रात–रात भर आराम छोड़कर फड़ से रस विभोर होते थे। इसमें गाया जाने वाला साहित्य 'फड़ साहित्य' कहलाता था। इसके अंतर्गत ख्याल लावनी, सैरा, सैरे, फाग, लेदें, मंजे–झोलना, तड़ाका आदि का संगीतबद्ध गायन होता था। गांव के अनपढ़ किन्तु लोकविद्या मर्मज्ञ रसिक श्रोता इनकी परख रखते थे। जो पक्ष प्रतियोगिता में मात खा जाता था, उसकी चंग या ढोलक छीन ली जाती थी। इन विधाओं में सर्वाधिक लोकप्रिय विधा 'ख्याल' रही है' किन्तु अब वह भी विलुप्तोन्मुख है।

उत्तरप्रदेश संगीत नाटक अकादमी ने पिछले साल बुन्देलखण्ड के प्रतिनिधि ख्यालगायक राघवदास सेठ, गुरसरांय (झांसी) को अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया है। इससे इस लोकविधा के गायकों में नया उत्साह जगा है।

ख्याल मूलतः संगीत की विधा हैं संगीत की शास्त्रीय शैली ध्रुपद धमार तथा लोकशैली ख्याल है। लोकरीतिकारों ने इसे शास्त्रीय छंद का स्वरूप दिया है। यह २२ पंक्तियों का मात्रिक छंद है। प्रत्येक पंक्ति में ३२ मात्रायें होती हैं। प्रारम्भिक दो पंक्तियाँ टेक की होती हैं। इसके बाद पांच–पांच पंक्तियों के चार छंद होते हैं। इनमें चार पंक्तियों के चौक के बाद पंचमी पंक्ति उड़ान की होती है। इसकी विशिष्ट गायन शैली है जिसे तर्ज या बहर कहते हैं। 'बहर' को अनेक प्रकार से वर्गीकृत किया गया है। जैसे बहर खड़ी, बहर लंगड़ी, छोटी, शिकस्ता, मुखफ्फा तथा तबील आदि। इसका वाद्य 'चंग' है।

'ख्याल' को खेलपरक (प्रतिस्पर्द्धात्मक) माना जाता हैं ख्याल का अर्थ है 'विचार' — यानि सामयिक विचार। इस प्रकार ख्याल का भाव पक्ष व्यापक हो जाता है। सामान्यतया ख्याल को 'ख्याल--लावनी' कहकर पुकारते हैं। लावनी का अर्थ है सलौनी (लावण्यमयी)। यानी प्रतिस्पर्द्धात्मक समसामयिक सलौनी कविता। ख्याल गायन के दो संप्रदाय हैं 'कलगी' तथा तुर्रा। इसके पीछे एक जनश्रुति है। बताते हैं कि अमीर खुसरो के समय शाहअली तथा तुफनगिरी नामक दो ख्याल गायकों में कई दिन की फड़बाजी में जब उच्चता का निर्णय नहीं हो सका तो खुसरो ने एक को कलगी तथा एक को तुर्रा पहनाकर उसकी दो शाखायें घोषित कीं। तब से इसके दो संप्रदाय घोषित हुये। कलगी दल शक्ति का उपासक होता है, तुर्रा शिव का। इसका मुख्य विकास रीतिकालीन व्यवस्था में होकर गांव–गांव में फैल गया। बुन्देलखण्ड में यह विधा विलुप्तोन्मुख होने के बावजूद, मऊरानीपुर, गुरसराँय, समथर, झांसी, कोटरा तथा कालपी में अभी भी 'ख्यालबाजी' का आयोजन होता रहता है। जिसमें देश के अन्य भागों से भी ख्यालगायक आते हैं। इस समय बुन्देलखण्ड के प्रतिनिधि ख्यालगायक राघवदास सेठ तथा शिवाजी चौहान (दोनों गुरसराँय निवासी) हैं। इनमें राघवदास सेठ का चयन अकादमी पुरस्कार के लिये हुआ है। बुन्देलखण्ड के अलावा ख्याल गायन की परंपरा लखनऊ, फिरोजाबाद, एटा, अलीगढ़ तथा हाथरस में भी लोकप्रिय है। इन स्थानों पर ख्याल के अच्छे गायक अभी भी साधनारत हैं।

ख्याल के लेखन की भांति गायन भी शास्त्रीय स्तर का होता है। एक पक्ष जिस ढंग से 'ख्याल' प्रस्तुत करता है – उसी ढंग से जवाब दूसरा पक्ष देता है। उदाहरण के लिये यदि ख्याल सगण से लिखा जाता है तो उसकी सभी पंक्तियां सगण में होंगी तथा प्रतिद्वंदी ख्यालबाज को भी सगण का ख्याल सुनाना पड़ता है। सगण (।।ऽ) ख्याल का एक उदाहरण देखिये — ''कर ले पट घूंघट ओट भटू, शशि आंगन को उजियार न हो। चलिये गति मंद मयंक मुखी, पग पायल की झनकार न हो।'' (कवि स्व. भोगीलाल सेठ)। रीतिशास्त्र के अनुसार सगण के प्रथम दो अक्षर लघु तथा तीसरा दीर्घ होता है। पूरी पंक्ति में अक्षरों का यही क्रम होता है।

इसी प्रकार यदि विषय की दृष्टि से एक ख्यालबाज ने खण्डिता नायिका या बसंत या सिंहावलोकन (कथा–प्रसंग) का ख्याल सुनाया तो प्रतिद्वंदी को भी खण्डिता नायिका के जवाब में खण्डिता नायिका का, बसंत के जवाब में बसंत का या सिंहावलोकन के जवाब में सिंहावलोकन का ख्याल सुनाना पड़ता है। सिंहावलोकन का एक उदाहरण देखें —

''तकत पराई नार पिया तुम, अपनी हठ क्यों नहीं तजत।
तजत न जग की मात, नाथ के शठतावश ना चारण तकत।''

यह कुण्डलिया शैली का सिंहावलोकन है — तो प्रतिस्पर्द्धी को कुण्डलिया शैली का सिंहावलोकन ख्याल सुनाना पड़ेगा वरना वह मात खा जायेगा। ख्यालबाजी में एक और परंपरा

बुन्देली मुहावरें

— डॉ. जय प्रकाश मिश्र

मोरौ बालापन तौ ईसानगर में बीतो, उतै ऊ समय खूबई बुन्देली बोली जात ती। ईसें हमई ने इतै बुन्देली सीक लईती, ऊके बाद हम पड़बे—लिखबें बायरें चले गये फिर नौकर हो गये, सो औरई बायरें चले गये। बायरें न तो कोऊ बुन्देली बोलत तो और न जानत तो। कभऊँ—कभऊँ अपने बुन्देलखण्ड कौ कौनऊँ मानुस मिल गओ सो ऊसें बोल बता लेत ते। उतै या तौ खड़ी बोली हिन्दी बोली जात या फिर अंगरेजी बोलत। जब मैं फिरकई अपने असफेरे में आओं, तौ वहां ऐंसौ लगो के अब तौ उतई लरका—बारे पढ़ लिख गये सौ बुन्देली नई बोलत। ईसें मोय लगों, कै बुन्देली के कई ऐसे अहाने कहाने हैं, जो न तौ मुहावरन में आयें और न वे बोले जात आयें। हां, बूड़े—पुराने, बब्बा—बऊ हरें तौ अबेलौ बोलत, लेकिन जे कथन उनई के संगे न चले जायें। एईसें मैनें मय अर्थ के लिखवें की कोसिस आय जा करी।

१. घोड़ी हो गई घोड़ी — लड़कियां जब तेज चलें या दौड़ने लगें उनके नियंत्रण के लिये प्रयोग किया जाने वाला कथन।

२. बैलबा सौ दलांकत — जोर से बोलने के लिये प्रयुक्त।

३. तो में लूगर लग जाय — स्नेह में दी गई गाली।

४. भाड़ में जाव — कहा न मानने पर प्रयुक्त किया जाता है।

५. तोरी ठठ्री बर जाय — मर जाने के लिये प्रयुक्त गाली।

६. तोरी नाश हो जाय — सब कुछ समाप्त हो जाने के लिए गाली।

७. मुसटंडा सौ फिरत — काम—धाम न करने पर लड़कों को प्रयुक्त।

८. सूद फट्टका — स्पष्टवादिता के लिये।

९. ताप लओ — नष्ट करने के लिये उपयुक्त।

१०. गंट फस गई — संकट में पड़ने के लिये प्रयुक्त।

११. चैया—मैयां — विवाह होने के लिये प्रयुक्त।

१२. मारे—ढकेले — लावारिस घूमने के लिये।

१३. बंगई सीं परकत — कार्य को उचित तरह से न करना।

१४. गट्टा बन गओ — घुटने टेकने के लिये प्रयुक्त।

१५. मुसरयाई न करो — मूर्खता पूर्ण कार्य के लिये।

१६. रमत—गमत चले आवी — घूमने—फिरने के लिये।

१७. बरयाने — आतंक के लिये प्रयुक्त।

१८. नाते के पनाते — बहुत दूर के रिश्ते के लिये प्रयुक्त।

१९. जी—जुड़ा गओ — संतुष्टि के लिये प्रयुक्त।

२०. जी न जराओ — दुःखी करने के लिये।

२१. जर गये — ईर्ष्या करना।

रही है, मौलिक सुनाने की। डायरी को पढ़कर सुनाने की अनुमति नहीं होती थी। इस प्रकार ख्याल गायक की अनेक विशेषतायें दृष्टि गोचर होती है। पहला, उसकी स्मरणशक्ति अच्छी होनी चाहिये। छंदशास्त्र का ज्ञान होना चाहिये। प्रत्युत्पन्नमति होना चहिये ताकि प्रतिद्वंदी का ख्याल सुनकर तुरंत निर्णय लेकर उसी शिल्प तथा भाव का ख्याल सुना सके।

ख्यालबाजी की सबसे खास बात यह है कि दूसरे श्रोता भी पारखी होते थे। भाव तथा शिल्प की परख गांव के अनपढ़ लोगों को भी होती थी। वे ही इस प्रतिद्वंदी—गायन के असली निर्णायक थे। मात खाने वाले ख्याल गायक की ढपली छीनकर भगा देते थे। इस प्रकार ख्यालबाजी गायक तथा श्रोता का साझा—कार्यक्रम था।

ख्यालबाजी की जवाबी—प्रतियोगिता का एक दुष्परिणाम सामने आया—ख्याल साहित्य को छिपाने का। दूसरे के हाथ न लग जाये, वरना प्रतिस्पर्द्धी से मात खानी पड़ सकती है — इस विचार से ख्यालबाज अपने साहित्य को अपने परिवार या अखाड़े के शिष्यों तक को ही देते थे। अथवा बस्तों में बंद रखते थे। अनेक ख्यालबाज आशुकवि भी होते हैं। इस कारण ख्यालबाजी की बुंदेलखण्ड में समृद्ध परंपरा के बावजूद ख्याल—संगह नहीं छपे। फड़ साहित्य के शोधकर्ता स्व. डॉ. गणेशीलाल बुधौलिया के अनुसार गुरसराय के सेठ भोगीलाल गुप्ता (राघव सेठ के पिता) ने ढाई हजार ख्याल लिखे थे। वे ८००—८०० की तीन जिल्दों में थे। श्री राघवदास सेठ के अनुसार इनमें एक जिल्द दीमक खा गये हैं। दो जिल्दों में लगभग डेढ़ हजार ख्याल अभी भी उनके पास हैं। इसी प्रकार जालौन के चंदनगिरि तथा बल्देव प्रसाद कसगर ने भी काफी ख्याल लिखे थे। किसी जमाने में गंगाधर व्यास तथा ख्यालीराम स्तरीय ख्याल तथा फाग लेखक एवं गायक रहे हैं। कोंच के मन्नूलाल चौधरी तथा मोहनलाल दाऊ भी ख्याल के क्षेत्र में लोकप्रिय रहे हैं।

संगीत तथा लोकसंस्कृति से जुड़ी संस्थायें यदि ख्याल साहित्य के प्रकाशन पर ध्यान दें तो इस विलुप्तोन्मुख विधा को बचाने में मदद मिल सकती है।

— मण्डपम्, राठ रोड, उरई ☐

२२. पट्ठा हो गये पट्ठा — जवान हो जाने के लिये।
२३. टेड़ो मौ कर लओ — अनदेखा करना।
२४. बिलमा लओ — ध्यान बांटना।
२५. मौ जोरी — मुंह लग कर बात करना।
२६. तरईयाँ भरयाई — आंसू भर आना।
२७. आंखें निकरयाईं — मरने के लिये प्रयुक्त।
२८. हँसत—बतात चले गये — अचानक मृत्यु होना।
२९. फूल झर रये — मधुर बोलना।
३०. पतौ—नईयाँ — जानकारी न होना।
३१. मैंने तौ ठान लओ — उद्देश्य की कार्यरूप में परिणति।
३२. मोए नईं पुसात — अच्छा न लगना।
३३. पुरानी लगीं — दुश्मनी का चलना।
३४. चित्त ठीक नईयां — मन का ठीक न होना।
३५. ल्फ लफ जाना — झुकना।
३६. ऊ तौ नसागओ — बिगड़ने के लिये प्रयुक्त।
३७. डटैंयाँ लगना — छुपकर बातों को सुनना।
३८. पौं फटना — सवेरा होना।
३९. गम्म खाना — इन्तजार करना एवं शान्त होना।
४०. झमा आना — मूर्छित होना।
४१. कुकरना — ठिठुरना।
४२. गेरऊ गेर — चारों तरफ।
४३. मरे खाँ माररये — निर्बल को सताना।
४४. का हैं राम करईयां — भविष्य में जाने क्या होना।
४५. बाट हेरना — इन्तजार करना।
४६. जुलम करना — अत्याचार करना।
४७. पीर नइयाँ — प्रेम स्नेह नहीं।
४८. कोऊ—काऊ कौ नइंया — कोई किसी का नहीं।
४९. प्रान सूखना — एकाएक मृत्यु से साक्षात्कार होना।
५०. रई थोरी गई भौत — जीवन के अधिकांश समय का निकलना।
५१. जतन करना — प्रयास करना।
५२. जतन कर हारना — प्रयास करने के बाद असफलता।
५३. उल्टी गैल धराना — गलत रास्ता बताना।
५४. दुनियाँ छान लई — सब जगह ढूड़ लेना।
५५. बखत परे की — संकट परना।
५६. जरो सौ कल्लावै — किसी की दिल में बात लग जाना।
५७. नाहक उजारना — व्यर्थ में नष्ट करना।
५८. कौस में कोरी फिरत हिरानों — अपने—दूसरे का पता न लगा पाना
५९. ऊल—जलूल बातें — बेमतलब (व्यर्थ वार्तालाप) की।
६०. कैबे हाँ रै गई — सुनहरे अतीत की स्मृतियां बताना।
६१. सांसे—सूदे — सीधा—साधा होना।
६२. सै रये — बरदाश्त करना।
६३. भुमानी पर जाये — एक तरह का रोग लगना।
६४. कौंडु अन अत्त मूतना — अनैतिक अति करना।
६५. मूसर बदलाना — लेना देना नहीं (मतलब नहीं)।
६६. भारौ सौ पवारौ — बला टालना।
६७. धुकधुकी चलती — घबराहट होना।
६८. थूकन सतुआ सानवो — कंजूसी करना।
६९. नंगा नहाये निचोबै का — अभाव ग्रस्त होना।
७०. बिगरे कौ काय बिगरनें — खराब का क्या खराब होना।
७१. अड़ीला सौ टिर्रात — ज्यादा चिल्लाना।
७२. गधा से जीते ना गदईया के कान मरोरें — सबल से न बोलकर निर्बल पर रौब दिखाना।
७३. देखवे—सुनवे कौ सुख — दूसरे को संतोषी देखकर संतुष्ट होना।
७४. शौक चर्राना — नया करने के लिये।
७५. सोंट सी फोरत — अत्याधिक पीटना।
७६. बकला उदेर देने — मारने के लिये धमकाना।
७७. कुठिया में हो गुर फोरत — कार्य को गोपनीय रखना।
७८. बातन को भन्ना — अच्छी—अच्छी सिर्फ बातें करना।
७९. खाज फैलाना — संकट पैदा करना या समस्यायें उत्पन्न करना।

— अम्बेडकर भवन के पीछे, किशोर सागर के पास, छतरपुर (म.प्र.) □



लोकगाथा — अमरवीर हरदौल

— उषा सक्सेना

बुन्देलखण्ड में स्थान स्थान पर बने हुये लाला हरदौल के चबूतरे आज भी उनके त्याग और बलिदान की कहानी कह रहे हैं — ये देवर भाभी के पवित्र प्रेम के साक्षी हैं जिनका स्नेह कार्तिकेय और भवानी की भाँति था। आज भी ब्याह कर आई नव वधू को सबसे पहले लाला हरदौल के चबूतरे के पूजन हेतु लाया जाता है जिससे वह परिवार की आदर्श परम्पराओं का निर्वाह कर सके।

मध्ययुग उत्तरार्द्ध, ओरछा नरेश जुझार सिंह जू देव के छोटे भाई हरदौल अपनी कर्त्तव्यपरायणता और पराक्रम के कारण ओरछा में विशेष लोकप्रिय थे। राज्य की रक्षा वे लक्ष्मण की भांति करते थे और अपनी सीता सी भाभी से माँ की भांति स्नेह करते थे — महारानी का भी उन पर पुत्रवत् स्नेह था। वीर, धर्मपरायण और कर्मठ लाला हरदौल की ख्याति कुछ ईर्ष्यालु व्यक्ति सहन न कर सके और उन्होंने राजा जुझार सिंह जू देव को यह मानने पर विवश कर दिया कि महारानी और लाला के सम्बन्ध अनैतिक हैं। कुचक्र और षड़यंत्र से अनभिज्ञ महाराज ने महारानी को विवश किया कि वे अपने सतीत्व का प्रमाण देने के लिए स्वयं अपने हाथों से लाला हरदौल को विष दे दें।

नियति व्यंग्य से मुस्करा उठी। लाला हरदौल ने सब कुछ जानकर भी अपनी भाभी की पवित्रता प्रमाणित करने के लिए सहर्ष विषपान कर प्राण दे दिये। उनके बलिदान की गाथा वहां के रजकणों में अंकित है।

जनश्रुति है कि उनकी मृत्यु के उपरान्त उनकी बहन कुँजावत अपनी कन्या के विवाह में भात न्योतने आई और लाला की समाधि से लिपट कर फूट फूट कर रो पड़ी तभी उनके काम में आवाज आई ''न रो मेरी प्यारी बहन हम भानेज के विवाह में भात पहनावे अवश्य आयेंगे'' और लाला ने मृत्यु के उपरान्त भी ऐसा भात दिया जिसकी महिमा आज भी बुन्देली लोकगीतों में व्याप्त है। वे बुन्देलों के देवता माने जाते हैं। और आज भी विवाह के पूर्व उनका आवाहन किया जाता है।

गाथा लाला हरदौल जू :

अरे अमर भये हरदौल मान धरो धरती पे वीर बुन्देलन को।
वे तो भौजी मताई जैसी मानत हते,
वे तो भैया बाप जैसे मानत हते,

वे दुसमन, हाय दुसमन सह न पाये, घेर दओ विस राजा के कानन में
उननें रानी बुलाई रनबासन सें,
उनें लाँछन लगाऔ अपएं देवर सें,

हाय रानी, हाय रानी सहन न पाई, लओ मूँड़ अपएं दोउ हातन सें।
कई राजा ने जौ तुम साँची हो,
उने देओ विस अपएँ हातन सें,

हाय रानी अरे रानी तो बौराय गई,कोसन लागी अपएँ प्रानन कौ,
अरे बेटा जैसो देवर हतो।
अकेले पति नें लाँछन लगाओ हतो।

उनें सीता जैसी बनने परो, पतिवरता धरम निभाउन कौ
बानें जेंबनार बनाई अपएँ हातन सें,
बानें घोरो विस अपएँ हातन सें,

हाय लला हाय लला यह कह रोय पड़ी, बा तो बिलख रही रनबसतन में।
उतै आये लला जब जेंबन खों,
उनने देखी दसा निज नैनन सें,

हाय भैया, अरे बिलख रहीं काय तुम हो,नईं देख सकत इन अंसुवन कौ
सब बात जान गए लाला तब,
सोचन लागे जे लाला तब

पी लैहों, पी लैहों बिस इन खातन सें, झूठी कर दैहो सब बातन कौ
बिस को प्यारो तब पी डारो,
पीके प्रानन कौ तज डारो।

हाय लाला, हाय लाला में तौ प्राण दय, और धरो मान बुन्देलन कौ
फिर ब्याह परयो जब भानेज को,
आई उनकी बहन भात मांगन कौ,

हाय लाला हाय बीरन कह कह रोय रही, खम्भा से मूँड़ टकराय रही
कैसें अब हम ससुरे जैहें
हम तौ नदिया में डूब जैहें

बड़े भैया, बड़े भैया ने तो ताना दओ, जाओ माँगो भात लला जू सें
बानी फूटी तब खम्बा तें
जा सुनी बहन ने कानन सें

न रोऔ न रोऔ कुंजा बहना तुम,हम तौ आहें भात पहराउन कौ
दओ भात लला ने साँची में
महासोर मचो जा धरती में

पहराये, पहराये मरे पै भात लला,जो अमर भये हरदौल लला।

— ६, इच्छा भवन, मुन्नेलाल धर्मशाला रोड,
पान दरीबा चौराहा, चारबाग, लखनऊ □

बुन्देलखण्ड के कथात्मक गीत : पुंवारे

— वर्षा सिं

लोकमानस में आध्यात्म इस तरह रचा–बसा है कि यदि भावनाओं की श्रेष्ठतम प्रस्तुति देखना है तो उसे आध्यात्मिक लोक सृजन में देखना होगा। इन रचनाओं में कथ्य, शिल्प और संप्रेषण की अद्‌भुत स्वाभाविकता मिलती है क्योंकि ये मस्तिष्क की अपेक्षा हृदय से उपजी हुई होती हैं। बुन्देलखण्ड में भक्ति गीतों की अपनी एक विशिष्ट परंपरा है जिसमें भक्तपूर्ण समर्पण की भावना के साथ अपने हृदय के उद्‌गार व्यक्त करता है। वह अपने आराध्य के श्रीचरणों में तन–मन निछावर कर अपने सुख जीवन की कामना के साथ–साथ जनकल्याण की कामना भी करता है।

बुंदेली लोक साहित्य में जितना महत्व भक्ति साहित्य का है, उतना ही महत्व भक्ति साहित्य में देवी गीतों का है। बुंदेली जनमानस को सबसे अधिक प्रभावित करते हैं देवी गीत। यह स्वाभाविक भी है क्योंकि देवी मां को जगजननी माना जाता है, और मां के प्रति सर्वाधिक प्रेम और समर्पण की भावना होती ही है। बुंदेली देवी आराधना के गीतों की प्रमुख शैलियां हैं —

१. भगतें — ये मूलतः देवी के भक्ति गीत हैं।
२. जस — ये देवी के यशोगान हैं।
३. बीरौठी — इनमें देवी के वीर रूप की स्तुति की जाती है।
४. पुंवारे — ये देवी स्तुति से युक्त कथात्मक गीत होते हैं।

नवदुर्गा के अवसर पर पुंवारे गाये जाते है। कुछ लोकविद् पुंवारे को भक्तों का पूर्ण एवं परिपक्व रूप मानते हैं। नवदुर्गा के समय प्रतिदिन एक पुंवारा गाया जाता है अर्थात प्रतिदिन एक गीतीत्मककथा का गायन एवं श्रवण किया जाता है। वैसे पुंवारे का फलक विस्तृत है, देवी की पुंवारों के अतिरिक्त अन्य विषयों पर भी पुंवारे गाये जाती हैं। बुन्देलखण्ड की कुछ प्रमुख पुंवारें हैं —

१. देवी की पुंवारे
२. राजा जगदेव के पुंवारे
३. धांधू के पुंवारे

(१) देवी के पुंवारे — इस कथात्मक गीत में देवी की स्तुति के उपरान्त देवी महिमा को स्पष्ट करने वाली कथा का गायन किया जाता है। देवी के पुंवारे की यह विशिष्टता है कि नवदुर्गा के अवसर पर गाये जाने के बावजूद इसमें मात्र दुर्गा अथवा उसके नव रूपों की स्तुति के साथ–साथ बुद्धिदायिनी सरस्वती, श्रीदायिनी गौरी एवं सम्पन्नता दायिनी मां शारदा की भी स्तुति की जाती है, तदुपरान्त आगे की कथा कही जाती है। उदाहरण देखें —

पेलऊँ सुमिरों सरस्वती माय, दूजे गौर गनेश मां।
तीजे सुमिरों शारदा माय, चौथे पवन हनुमान मां।।
समुद किनारे एक सुरहई माया, धरे सुरजगढ़ नांव मा
ओ सुरहई में दानों राहत है, रूप धरे विकराल मां।
जिनके चरण धरण में लागे, शीश भुयें आकाश में
जिनखों सबरे देवता डरपें, भै मानें भगवान मां।
oo oo oo
पांच पण्डवा वेई धर साजे, धरम धुजा लये हांत मां
चौसठ जोगिन वेई घर साजी, कोरे खप्पर लये हाथ मा
दिसा लिसें दौरे भई माया, दौर भई सब रात मां।।

(२) राजा जगदेव के पुंवारे — देवी के पुंवारों के समान राजा जगदेव के पुंवारे भी गाये जाते हैं। इन पुंवारों में पहले धर्मराज युधिष्ठिर और राजा राम का स्मरण किया जाता है, इसके बाद राजा जगदेव की कथा कही जाती है। उद्धरण देखें —

कौन जुग पूजे धरमराज ने, कौन जुग राजा राम मां
द्वापर पूजे धरमराज ने, त्रेता राजाराम मां।।
बोले भुवानी सुनो पांडवा, धरनी के मांज बताव मां।
oo oo oo
सुन–सुन पृथ्वीपत राजा, जगदेव से होड़ न फांद मां
oo oo oo
उतें से चल गई देवी जालपा, जगदेव के दरबार मां।
सुन–सुन री मोरी जगत दुलईया, रूंड में मुंड मिलावो मां
दये दान हम नें लेहें माया, मोरे न आवे काम मां।
सीस फेंको आकास में माया, नरियल हो गये वृक्ष मां।
नओ सीस जगदेव को जम गओ, हांत जोड़ सिर नांये मा
पांच भगत माई तोरे जस गावें, चरन छोड़ कहां जायें मा

राजा जगदेव के अन्य पुंवारें भी गाये जाते हैं, जिनमें से एक है — राजा जगत के मामले। इस पुंवारे में प्रत्येक पंक्ति के बाद 'राजा जगत के मामले हो मां' की टेक गाई जाती है। उदाहरणार्थ —

कौन लगाए आम, नीम, महुआ, गुलदाख
बेला, चमेली रूच केवरे रे, चंपे की डार।।
राजा जगत के मामले हो मां...
चुगली करी चुगल ने, अकबर दरबार
जगदेव बड़ो मुआसी, दरबारे नें आये।।
राजा जगत के मामले हो मां...
चिट्ठी लिखी अकबर ने, जगदेव पहुंचाये

बेटी ब्याहो तुम अपनी, उर मानो हार।।
राजा जगत के मामले हो मां...
चिठिया गई सभा में रे, जगदेव दरबार
पड़तई आई मूरछा, सब भये बेहाल।।
राजा जगत के मामले हो मां...

(३) धांधू के पुंवारे –

देवी के पुंवारों और राजा जगदेव के पुंवारों के समान धाधूं के पुंवारे भी बहुप्रचलित हैं। इस पुंवारे की विशेषता यह है कि इसमें बारहमासी का समावेश किया जाता है। यह बारहमासी बालक (श्री कृष्ण) के जन्म से लेकर दसवें मास तक के विकास का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया जाता है। उदाहरण देखें –

पेले मास के जब भये धाधूं, पीवें कटोरों दूध मुस्काए मां।।
दूजे मास के जब भये धाधूं, ओदों सूदे होय मां।।
तीजे मास के जब भये धाधूं, डलन हुंकारी देय मां।।
चौथे मास के जब भये धाधूं, कुडर खुटलियों जाय मां।।
पांच मास के जब भये धाधूं, अंगनों कुड़रत जाये मां।।
छटे मास के जब भये धाधूं, गलियों खेलन जायें मां।।
सात मास के जब भये धाधूं, खेले सकियों साथ मां।।
आठ मास के जब भये धाधूं, खेले तीर कमान में।।
नमें मास के जब भये धाधूं, पढ़ उतरे चटसार मां।।
दसें मास के जब भये धाधूं, गौयें चरावे जाय मां।।
ग्यारा मास के जब भये धाधूं, माई के जस गायें मां।।
बारा मास के जब भये धाधूं, राखें चनों के खेत मां।।

इस प्रकार देखा जाए तो पुंवारे आख्यान के अधिक निकट हैं जिनमें प्रायः शौर्य–कथा को प्रस्तुत किया जाता है। यद्यपि यह भी एक विडम्बना ही है कि आज लोक संस्कृति को अपनी अस्मिता बनाए रखने के लिए जूझना पड़ रहा है और ऐसी स्थिति में पुंवारे गाने का प्रचलन भी पहले की अपेक्षा कम हो चला है। कई पुंवारे लुप्तप्राय अवस्था में जा पहुंचे हैं फिर भी जो शेष हैं उन्हें सम्हाल कर अगली पीढ़ी को सौंपना हमारा दायित्व है ताकि आने वाली पीढ़ी अपनी जड़ों से परिचित रहे।

– एम–१११, शांतिविहार, रजाखेड़ी, सागर, म.प्र. □

लोककलाएं हमारे मन की गहराइयों में प्रवेश कर हमारी संवेदनाओं को छूकर उन्हें जगाती हैं। साथ ही ये हमें सामाजिक संदर्भों से जोड़ती हैं, क्योंकि ये उन संदर्भों से उपजीं और जुड़ी होती हैं। जबकि प्रातिभ कला समाज से नहीं व्यक्ति से अधिक जुड़ी होती हैं।

हम गीत बुँदेली गायें

— हरगोविन्द तिवारी

बुँदेली इतिहास निहारें
गौरव गाथा गायें
बुँदेली गौरव गाथायें
जन–जन को सदा लुभायें
जनमें सदा बुँदेलभूमि नें
महावीर–वीरांगनायें
करना बखान होगा मुश्किल में
किन–किन के नाम बतायें
छत्रसाल बहु मुगल पछारे
महाबली कहलायें
लक्ष्मीबाई अंगरेज ललकारें
अमर शहीद कहलायें
इनके पद चिन्हों को पायें
भारत के जन–जन हर्षायें
हर्षित होकर धूम मचायें
स्वतंत्रता दिवस मनायें
सादर तिरंगा झण्डा फहरायें
पुष्पांजलि बिखरायें
राष्ट्रगान श्रद्धा से गायें
श्रद्धांजलि दर्शायें
भारतहृदय बुन्देलखण्ड में
हम गीत बुँदेली गायें।

—शाहगढ़, जिला सागर म.प्र. □

बोलो फरयादी कां जावैं, जाकैं किये सुनाबैं।
बीस साल सैं चलै मुकदमा, पेशी रोज बढ़ावैं।
कै न सकत कछु करें सैं, मर्यादा में रावैं।
जबरा मारे रौन देवै, पार कौन विध पावैं।।

०० ०० ० ०

देखौ राज काज के ढर्रे, भौत बड़े हैं भर्रे।
कछु निनोर होय न कउं पै, डारें उल्टे छर्रे।।
छर्रे डार डार कै नितनये, उड़ा रयै गुलछर्रे।
जनसेवक कैबे खां सासउ, जे भक्षक हैं कर्रे।।

०० ०० ० ०

अब तौ चेतौ दिल्ली वाले, भारत भूमि पुकारे।
कुर्सी के चक्कर में पैलां करवा दये बंटवारे।।
बची खुची में फिर नफरत के बीज जतन सें डारे।
अब भी राजनीति कर रये जब संकट देश द्वारे।।

– एल.एम. चौरसिया □

कवि जोगीदास भाण्डेरी और उनके वंशज

— डॉ. श्यामबिहारी श्रीवास्तव,

ओरछा नरेश वीरसिंह जू देव ने सन् १६२६ ई. में अपने पुत्र भगवानराय को दतिया नगर, दतिया का महल तथा बड़ौनी की मालगुजारी सम्मिलित करके दे दिया था, तब से दतिया एक पृथक राज्य इकाई के रूप में अस्तित्व में आया था। भगवानराय दतिया रियासत के प्रथम शासक बने थे। भगवान राय के पश्चात् शुभकर्ण, दलपतराव, रामचन्द्र राव, इंद्रजीत, शत्रुजीत, पारीछत, विजयबहादुर, भवानीसिंह और महाराजा गोविन्दसिंह तक दस बुन्देला शासक दतिया के राज्य सिंहासन पर आसीन हुए। अंतिम शासक गोविन्दसिंह के काल में, भारतराष्ट्र स्वतन्त्र होने पर दतिया रियासत का भी विलय हो गया था।[१]

दतिया रियासत के बुन्देला शासक वीर और पराक्रमी थे। इन शासकों की शौर्य गाथाएँ इनके दरबारी कवियों ने रासोकाव्यों के रूप में वर्णित की हैं। तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओं को उन कवियों ने इन रासोकाव्यों में चित्रित किया है। दतिया–नरेश भगवान राय बादशाह शाहजहाँ के मनसबदारों में थे। इनके पुत्र शुभकर्ण ने दक्षिण विजय के अभियानों में सम्राट औरंगजेब का साथ दिया था जिसके परिणाम स्वरूप समय–समय पर इन्हें मनसबवृद्धि के अवसर प्राप्त हुए थे। शुभकर्ण के साथ उनके वीर पुत्र दलपतराव भी दक्षिण के युद्धों में अपने पिता के साथ सम्मिलित रहे। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् जब उसके शाहजादों में सत्ता संघर्ष हुआ तो आजमशाह की ओर से युद्ध करते हुए जाजऊ के मैदान में सन् १७०७ ई. में दलपतराव वीरगति को प्राप्त हुए थे।

जोगीदास के पिता सुखदेव दतिया–नरेश शुभकर्ण के शासनकाल में दतिया आये थे। जोगीदास दलपतराव के राजकवि थे। ये दलपतराव के साथ दक्षिण के युद्धों में रहे थे। जोगीदास ने दलपतराव की वीरता और पराक्रम का आँखों देखा वर्णन दलपतराव रासो में किया है।

डॉ. सीताकिशोर खरे के साथ पुराने कागज–पत्रों की खोज करते हुए जोगीदास की एक वंशावली उपलब्ध हुई है। इस वंशावली के रचयिता बलवंत कवि हैं। संभव है बलवंत कवि भी जोगीदास के वंशज ही रहे हों। इस वंशावली के अनुसार जोगीदास, पृथ्वीराज रासो के रचनाकार चंदबरदाई की वंशपरम्परा में सुखदेव कवि के लुहरे पुत्र थे। वंशावली के आधार पर जोगीदास के वंश का वर्णन आगे किया जा रहा है।

बलवंत कवि द्वारा रचित उपलब्ध वंशावली अधूरी है। इसमें ७३ छंद है। इस वंशावली में प्रारम्भ के १ से १७ तक छंद नहीं है। छंद क्र. १८ से यह प्रारम्भ है तथा छंद क्रमांक ७३ पर दतिया नरेश राव रामचन्द्र के द्वारा कवि जोगीदास को भेंट उपहार के वर्णन के साथ वंशावली समाप्त हो जाती है। वंशावली में जोगीदास के बाद की पीढ़ियों का उल्लेख नहीं किया गया है।

चंदबरदाई से छठी पीढ़ी में रायगोप जितहरा के शासक तानाशाह के दरबार में थे। रायगोप संस्कृत और फारसी के विद्वान थे। सम्राट अकबर की धार्मिक सहिष्णुता एवं उदारवादी नीति से प्रभावित होकर रायगोप अकबर से भेंट करने गए। किसी विशेष व्यक्ति के कहने पर रायगोप सम्राट से मिले केसरिया वस्त्र धारण करके गए थे। सम्राट अकबर जब शिकार के लिए जा रहे थे तभी रायगोप उनके समुख केसरिया पोशाक में पहुंचे और बादशाह की प्रशंसा में निम्न छंद पढ़ा —

"आसमुद्र की गुफा सिंघ आसनह बबट्ठब।
नादवंद पूरयव ब्रह्मपूरन जिहि दिट्ठब।
रिध्धि सिध्धि करतल विभूति भूतल जहँ भरयउ।
गहि कोवंड लीय दंडग्य कंथा उर धरयउ।
अस राजजोग जस गोप कहि गोरख अकबर कंधए।
मनबंध पवन बंधन किए चित बंधन रिप बंधाए।"

सम्राट अकबर ने प्रसन्न होकर रायगोप को पांच हजारी पटा, चार लाख की भूमि गोपाचल (ग्वालियर) के निकट, दस हाथी, सौ अरबी की म्यांन तथा बीस लख नकद रुपये प्रदान किये थे। पहूज नदी के किनारे भाण्डेर नगर से लगे बीबीपुर, अल्लाहपुर स्थान में आकर रायगोप अपने परिवारजनों सहित बस गए थे। रायगोप के पुत्र रतनेश ने ओरछा नरेश वीरसिंह देव को इतना प्रसन्न कर लिया था कि उन्होंने इन्हें अपना ग्यारहवाँ पुत्र ही मान लिया था। महाराज वीरसिंह देव ने इन्हें दस गाँव जागीर में तथा 'लाला' की उपाधि प्रदान की थी। तभी से इस वंश के कवि अपने नाम के पूर्व 'लाला' शब्दांश जोड़ने लगे थे। ओरछा के राजा रामशाह तथा इंद्रजीत ने भी रतनेश कवि को बहुत सम्मान दिया था। रतनेश के पुत्र रसराम मल्लविद्या में बहुत निपुण थे। इनकी मल्लविद्या से प्रभावित होकर सम्राट जहाँगीर ने इन्हें अपने पास रख लिया था। रसराम के दो पुत्र बुलाखीदास और सुखदेव हुए। बुलाखीदास पांच वर्ष की अल्पायु में सम्राट शाहजहाँ से भेंट करने दिल्ली गए थे। बादशाह ने बुलाखीदास की दृढ़ता और वाक्पटुता से रीझकर इनका छत्रसिंह रख दिया था। बुलाखीदास उर्फ छत्रसिंह तथा सुखदेव दोनों भाई दतिया नरेश शुभकर्ण के यहाँ चले आए थे

वंशावली के अनुसार सबसुख के छः पुत्र हुए। सबसे बड़े संतोषमन तथा छोटे जोगीदास। परन्तु शेष चारों पुत्रों के नाम वंशावली में नहीं दिए गए। श्री गंगाराम शास्त्री ने अपने एक लेख में सुखदेव कवि के छः पुत्र – संतोषमन, बृजराज, देवीदास, शिवदास, जयसिंहदास और जोगीदास अंकित किए हैं।[२] परन्तु डॉ. महेन्द्रप्रतापसिंह ने अपने एक लेख में बृजराज को जागीदास का पुत्र बतलाया है।[३] सम्भवतः डॉ. महेन्द्रप्रतापसिंह ने दलपतराव रासो के निम्नलिखित दोहों के आधार पर उक्त निर्णय लिया होगा –

''कुल पुंजक महाराज के, साखन साख सुजान।
भाण्डेरी यह वंस कै, सुत ब्रजराज बखान।।
इक सुत श्री महराज संग, लरौ जाजऊ खेत।
चंपतरायक वंस को उज्जल किय सिरनेत।।

उक्त दोहों से अनुमान लगाया जा सकता है कि बृजराय और सिरनेत दो पुत्र जोगीदास के थे। सिरनेत ने महाराज दलपत राव के साथ जाजऊ से युद्ध में भाग लिया था और वीरगति पाई थी। उपरोक्त दोहे से संकेत मिलता है कि चंपतराय भी जोगीदास के पूर्व पुरुषों में रहे होंगे। चम्पतराय भाण्डेरी महाराज दलपत राव के वीरसेना नायकों में से थे। दलपतराव रासों में एक दोहे में चम्पतराय भाण्डेरी की वीरता का उल्लेख इस प्रकार किया गया है –

''कटौ साकिनीवार तब स्वामधर्म कर चाउ।
भांडेरी तब कुध्ध कर, धायौ चंपत राय।।''

जोगीदास और उनके वंशज कलम और तलवार दोनों में ही कुशल थे। महाराजा शुभकर्ण और दलपत राव के साथ दक्षिण की लड़ाइयों में प्रदर्शित किए युद्धकौशल तथा काव्य रचना दोनों ही के लिए इस वंश के कवियों को दतिया नरेशों द्वारा भरपूर पुरस्कार प्रदान किए गए। दलपतराव रासो में इस वंश को प्रदान किए गए उपहारों का सविस्तार वर्णन किया गया है –

''तिन कवि जोगीदास सुत, पंचम दलपतराय।
घर बैठे अति हेत सह, इहि विधि विदा पठाय।।
हाथी रनसोभा बड़ौ, एक सहस हय बेस।
सिरोपाव जर बख्तर हुए, पठये रीझ नरेस।।
दक्खिन गे ब्रजराज कवि, मुजरा कर सुख पाय।
कर पहुँची अरु धुक धुकी, अपने कर पहिराय।।
खैरी तौ चर हुय बियौ, पादारख लिखवाय।।
अपने मुख दलपत धनी, खेरी भाट धराय।।
इक खेरी भये में दई, राय सुभकरन सिंघ।
जुध्ध जीत इक और दिय, दलपत रा रन रंग।।
तुम भांड़ैरी गाउ दुय, घर बैठेई खाउ।
हमें छांड़ औरै नृपत, मांगन कहूं न जाउ।।
पठै देस करकैं विदा, बहुत चित्त सुखपाय।
करे भाट तैं भूप से, बहुभांतन पहिराय।।''

अपने आश्रय दाताओं के द्वारा समय–समय पर प्रदत्त धन सम्पत्तियों से ये प्रशंसा गायक भाट भूप जैसे धनी मानी हो गए थे। कवि जोगीदास ने उत्तर भारत के राजघरानों में भी अपना प्रभावपूर्ण स्थान बना लिया था। पूर्वी राजस्थान के देवलिया (प्रतापगढ़) और मेवाड़ के महाराजा जगतसिंह से जोगीदास का घनिष्ठ सम्पर्क था। उस समय पृथ्वीराज रासो के संकलन संपादन में जोगीदास ने महत्वपूर्ण कार्य किया था।[४] छत्रपति शिवाजी के राष्ट्रप्रेम ने जोगीदास को बहुत प्रभावित किया था। जिन दिनों औरंगजेब ने शिवाजी को आगरा में कैद कर रखा था तब शिवाजी की सुरक्षा के लिए दक्षिण से भेज गए तेजसिंह राजावत के साथ जोगीदास भी आगरा गए थे।[५] इन्होंने शिवाजी की प्रशंसा में मेवाड़ी भाषा में एक लोकगीत लिखा था।

अब तक जोगीदास की तीन रचनाओं का पता चला है। दलपतराव रासो, हरिपिंगल प्रबंध तथा जोगीदास वैद्यक। हरिपिंगल प्रबंध की रचना देवलिया (प्रतापगढ़) के राव हरिसिंह के लिए सन् १६६३ ई. में की थी। ''जोगीदरास वैद्यक'' में चरक और सुश्रुत का भाषानुवाद है।[६] दलपत राव रासो में दतिया नरेश शुभकर्ण और उनके पुत्र दलपतराव की शौर्य गाथाओं का वर्णन है। दलपत राव रासो के पूर्वार्द्ध में शुभकर्ण और दलपतराव के दक्षिण अभियानों का वर्णन है तथा उत्तरार्द्ध में बादशाह औरंगजेब की मृत्यु के उपरांत उसके पुत्रों में हुए उत्तराधिकार युद्ध का विस्तृत वर्णन किया गया है। जोगीदास के द्वारा वर्णित इस रासो की घटनाओं से इतिहास के नए तथ्य उद्घाटित हुए हैं।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवि जोगीदास भाण्डेरी चंदबरदाई की वंशपरम्परा में उत्पन्न हुए थे। दक्षिण भारत, राजस्थान, बुन्देलखण्ड एवं उत्तरभारत के राजघरानों को जोगीदास ने अपनी कवित्वशक्ति और कृपाशक्ति दोनों से ही प्रभावित किया था। इनके द्वारा विचरित दलपत राव रासो जहाँ बुन्देली भाषा की अनूठी कृति है वहीं मुगलकालीन भारतीय इतिहास की अमूल्य धरोहर भी है।

संदर्भ –

१. दतिया जिले में पत्र पाण्डुलिपियों का सर्वेक्षण – लेखक डॉ. कामिनी, डॉ. श्यामबिहारी श्रीवास्तव, डॉ. सीताकिशोर प्रकाशक – आराधना ब्रदर्स कानपुर, सन् १९९० पृ. १२–१३
२. विंध्यालोक – संपा, डॉ. गंगाप्रसाद गुप्त बरसैंया एवं डॉ. राधावल्लभ शर्मा, बुन्देलखण्ड कला संस्कृति परिषद, छतरपुर पृ. ९७
३. दतिया उद्भव और विकास – संपा. डॉ. के.बी.एल. पाण्डेय, दतिया, १९८६ पृ. १४८
४. वही पृ. १४८–१४९
५. वही पृ. १५३
६. वही पृ. १४८

– अनन्य कॉलोनी, सेंवढ़ा (दतिया) म.प्र.

बुन्देल केशरी महाराज छत्रसाल

— नरेन्द्र जैन

बुन्देलखण्ड की पावन धरती पर अनेक पराक्रमी, शिक्षाविद, समाज सुधारक, चिंतक हुये इसी धरती पर छत्रसाल जैसे महान राज्य संगठनकर्ता भी पैदा हुये जिन्होंने मुसलमानों के विरुद्ध संघर्ष लेकर वीरता, साहस का परिचय देते हुये समस्त बुन्देलों को एकता के सूत्र में बांधकर मुगलों से मुक्त ही नहीं किया बल्कि एक सुव्यवस्थित, उदार, समृद्धि का साम्राज्य भी स्थापित किया।

छत्रसाल बुन्देला शासक थे। बुन्देला शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में लेखकों ने अपने—अपने विचार प्रस्तुत किये हैं।

छत्रसाल ग्रन्थ के अनुसार वीरभद्र गहिरवार (१२२९–१२४८) के पुत्र पंचम देव ने विन्ध्यवासिनी देवी की तपस्या करते समय (अपने सिर की बलि देते समय) तलवार के आघात से जो रक्त की बूंद पृथ्वी पर गिरी उसी के कारण देवी का आशीर्वाद से बुन्देला पदधारी पंचमदेव व उनके वंशधर विख्यात हुये इसी आधार पर बुन्देला शब्द प्रकाश में आया। (छत्रप्रकाश पृ. ८) उर्दू तवारीख के लेखक मुंशी श्यामलाल भी इसी से सहमत हैं, ओरछा गजेटियर वाले विन्ध्य क्षेत्र के शासक होने से विन्ध्येला शब्द का अपभ्रंश बुन्देला लिखते हैं। हकीकहल कलाम एन डवल्यू पी गजेटियर एलियट डाउसन का लेख है हरदेव नामक गहरवार खैरागढ़ से एक बांदी लाकर ओरछा के समीप बस गया और उसके पुत्र बांदेला या बुन्देला कहलायें यह शब्द फारसी के वेदी शब्द से निकला है जिसका अर्थ कैदी अथवा दासी से है। प्रसिद्ध इतिहासकार विन्सेन्ट स्मिथ का अनुमान है कि बुन्देला, गढ़ कुंड़ार के शासक खंगार राजा की कन्या और गहरवार राजपूत की संतान है। पर यह भी उचित प्रतीत नहीं होता है क्योंकि कुंड़ार वाली घटनायें तो १३४० ई. के आसपास की हैं। बुन्देला पदवी उसके पूर्व में मिली थी अतएव यही अधिक सत्य माना जायेगा कि बुन्देला शब्द की व्युत्पत्ति विन्ध्य क्षेत्र से ही है।

इसी बुन्देला वंश में चम्पतराय का जन्म १५८७ में हुआ था ये प्रारंभ में मुगलों के साथ थे। औरंगजेव जब अपने भाइयों से उत्तराधिकार युद्ध कर रहा था, तो इन्होंने औरंगजेब का साथ दिया और दाराशिकोह के युद्ध में औरंगजेब सफल रहा, उसने दाराशिकोह के साथ अत्यंत बुरा बर्ताव किया।

औरंगजेब जब भारत का बादशाह बना तो चम्पतराय मुगलों के विरुद्ध संघर्षरत हो गये, उनका मानना था कि मुगल शासक हिन्दुओं के प्रति अच्छी नीति नहीं रखते हैं। बुन्देलखण्ड में केवल चम्पतराय ही ऐसे महान क्रांतिकारी थे जो देश और धर्म की दुखद स्थिति से परिचित होकर मुगलों के खिलाफ लड़ रहे थे। औरंगजेब चम्पतराय की वीरता और चतुरता को समझता था कि कोई भी मुसलमान सेनापति चम्पतराय से विजय प्राप्त नहीं कर सकता है, तो उसने चम्पतराय के विरुद्ध दतिया केशव शुभकरण को भेजा पर शुभकरण की पराजय हुई। एक बार जब मुगल साम्राज्य के प्रधान सेनापति बहादुर खाँ जो शेरशाह तथा प्रान्तीय शासक ओरछा, चन्देरी दतिया ग्वालियर एवं मालवा के शासक चम्पतराय के निवास स्थान महेवा का घेरा डाले हुये थे। चम्पतराय भी अपने संगठित चुने हुये बुन्देला देश हितैषी वीरों को लेकर उनको क्षति पहुँचाकर छापामार युद्ध द्वारा युद्ध कर रहे थे तो उसी समय उनकी तृतीय धर्मपत्नी—रानी सारन्धा वीरांगना लाड़कुंवरि निकटतम प्रसवकाल की घड़ियां व्यतीत कर रहीं थीं, यह ऐसा घोर विपत्ति का समय था कि चम्पत राय ऐसे नाजुक समय पर भी घर संभाल नहीं सकते थे। अब मुगलों से असमर्थ चम्पतराय ने अपनी रानी से मारने को कहा, रानी ने हिम्मत करके सबको मारा फिर स्वयं आत्महत्या की। ४ मई १६४९ ई. की मोर पहाड़ी डांगकी कंदरा में छत्रसाल का जन्म हुआ। १६५३ ई. में शाहजहां से संधि हो जाने पर चम्पतराव महेवा वापिस आ गये और छत्रसाल का पालन पोषण प्रारंभ हुआ। बचपन से ही छत्रसाल की तेजपूर्ण मुद्रा और बाललीला देखकर लोगों को मालूम होने लगा कि यह बालक भविष्य में होनहार, पुरुष होकर जन कल्याण और क्षत्रिय कुल की उन्नति करेगा।

छत्रसाल तेजी से एक योग्य सैनिक संगठनकर्ता की ओर बढ़ने लगे। किशोरावस्था में ही अपने पिता के संस्कार बढ़ने लगे तथा मुगल, बुन्देला सरदारों (मुगलों के साथ) पर पैनी नजर रखने लगे। मुसलमानों के हिन्दुओं पर धार्मिक अत्याचारों से उनका मन विद्रोही हो उठा। उनको मुगल सरदारों ने बादशाह से मनसब का पद बिकवाने की बात कही। लेकिन उनके मन में था कि मुगल शासन का अंत किया जावे और क्षत्रिय धर्म का पालन कर हिन्दु धर्म का पालन किया जावे।

भारत के हृदयस्थल बुन्देलखण्ड में चम्पतराय के बाद उनका पराक्रमी बेटा छत्रसाल विद्रोही होता जा रहा था। उधर दक्षिण भारत में काफी समय से मराठा सरदार शिवाजी महाराज मुगल, मुसलमानों से गुरिल्ला युद्ध कर रहे थे। ऐसी स्थिति में दोनों की मित्रता होना स्वाभाविक था। छत्रसाल के आने की

खबर पाकर शिवाजी ने उन्हें अपने पास बुलाया और सम्मान सहित बगल में बैठाया। जब एकांत में छत्रसाल ने शिवाजी से अपना मतलब कह सुनाया तब शिवाजी ने समझाया कि आप बड़े ही प्रतापी और होनहार पुरुष हैं। मेरे साथ रहकर आप अपना पूरा प्रताप न बढ़ा सकेंगे इसलिये आप अपने देश में जाकर स्वतंत्र हथियार उठाइये और अपनी प्रजा का धन, धर्म मुसलमानों से बचाइये। हम आपको गुप्त रूप से सब तरह की सहायता देंगे। उनको एक विशेष तलवार भी भेंट की जो पन्ना के कोषागार में आज भी सुरक्षित है। छत्रसाल अब निश्चिंत होकर महेवा चले आये।

इधर औरंगजेब को ज्ञात हुआ कि बुन्देलखण्ड में ओरछा राजा हिन्दुओं का बहुत मददगार है तो उसने फिदाय खां पठान के नेतृत्व में एक शक्तिशाली सेना भेजी। संकट की स्थिति में सुजान सिंह ने छत्रसाल से सहायता मांगी। कहा कि पिछली गलती को भूलकर हमें मुसलमानों से एकजुट होकर मुकाबला करना होगा। सो आप हमारी मदद कीजिये। दोनों ने मित्रता का साथ निभाने की कसमें खाई। अब छत्रसाल सीधे नौरंगाबाद गये। वहां उन्होंने अन्य सरदारों को भी संगठित कर जिनमें कुंवर राज धंधेरा भी था सबने मिलकर एक योजना बनाई कि सेना के लिये धन संग्रह किया जावे और उन्होंने सिरौंज के आसपास आक्रमण करना शुरू किया। इसमें उन्हें काफी धन मिला इन क्षेत्रों के जागीरदारों की रक्षा भी करते रहे और उनसे चन्दा वसूलना शुरू कर दिया।

मालवा के सूबेदार मुहम्मद हासिम को सिरौंज में हराया, मार्ग के अनेक स्थल छोटी, सागर हनूटेक, धामौनी, पथरिया आदि स्थान पर विजय का सिक्का जमाते हुये धामोनी के पास रुक गये। यहाँ पर बुन्देला सरदार और शाही सेना में भयंकर युद्ध हुआ और शाही सेना पराजित हुई।

छत्रसाल ने बाँसा के जमींदार केशवराय दांगी को परास्त किया और इलाहाबाद की ओर कूच किया। केशवराय से युद्ध में छत्रसाल घायल हो गये थे ठीक होने पर ग्वालियर के आसपास ठिकाना बना लिया। ग्वालियर के किलेदार सैयद मुनौबर ने छत्रसाल पर आक्रमण किया – और उसको परास्त किया।

अब तक छत्रसाल की समूचे बुन्देलखण्ड में एक सम्मानजनक स्थिति बन गई। छत्रसाल का राज्य नर्मदा के किनारे जबलपुर के उत्तरी भाग की पन्ना की घाटी से लेकर भिन्ना तक था। उन्होंने विजयराघवगढ़ को भी अपने अधीन कर लिया तथा मैहर के जागीरदार समर सिंह का वध करके उसको भी मिला लिया। रीवा राज्य को पन्ना राज्य में मिला लिया। रीवा खास के उपरहटी मुहल्ला में बुन्देला दरवाजा का निर्माण करवाया तथा राजमहल का सुधार करवाया (रीवा गजेटियर तावारीख पन्ना ३२–३४) वि. सं. १७६८ लोहागढ़ का किला जीतकर शिवाजी महाराज के नाती साहूजी को दे दिया। इस बीच छत्रसाल की राजधानी कुछ दिनों महेबा रही उसके बाद पन्ना हुई।

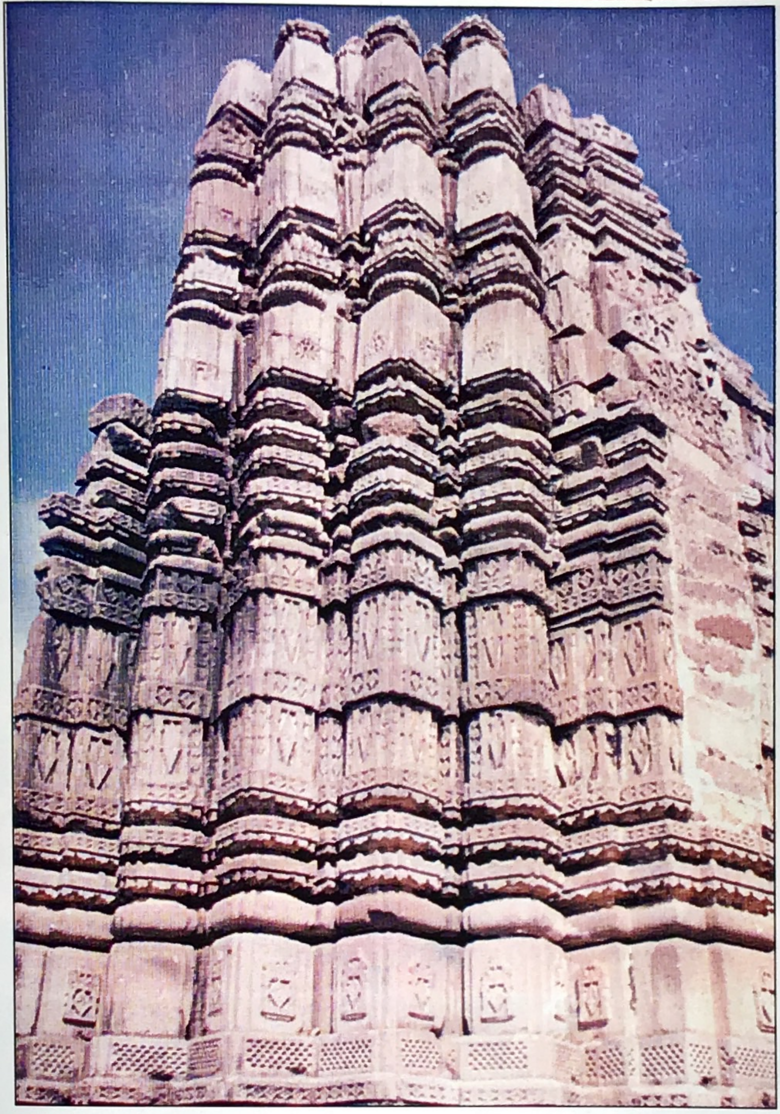
महाराजा छत्रसाल ने कार्तिक शुक्ला ९ गुरुवार विक्रम सम्वत १७६८ (सन् १७०७) को छतरपुर बसाया और यहां का अधिकारी वखत सिंह परमार को बनाया। बाद में हिन्दूपति सिंह ने समस्त महलों का निर्माण करवाया। एक भव्य लाइब्रेरी भी स्थापित करवाई जो विश्वनाथ सिंह लाइब्रेरी के नाम से प्रसिद्ध है।

अब छत्रसाल का राज्य चम्बल नदी तक था कालपी, जालोन, कोंच ऐरच इसी राज्य में थे। दक्षिण में उनका राज्य नर्मदा तक था। सिरौंज, गुना, धामोनी, गढ़ाकोटा, सागर, बांसी, मैहर यह सब छत्रसाल के राज्य में थे। पूर्व में टौस नदी तक था। कालिंजर चित्रकूट भी था, उत्तरी सीमा जमुना तक थी। अब छत्रसाल निस्कंटक राजा हो गये। इसी बीच उनकी मुलाकात स्वामी प्राणनाथ से हुई और उनके ज्ञान से अत्यधिक प्रभावित हुये। बुन्देलखण्ड का इतिहास पृ. १३३ पर एक विवरण मिलता है कि औरंगजेब और छत्रसाल विजयी हुये। इसमें औरंगजेब ने छत्रसाल को महाराज छत्रसाल की उपाधि से विभूषित किया।

इस तरह शांतिमय अवकाश पाकर महाराज छत्रसाल ने अपनी तमाम जीती हुई, भूमि पर अधिकार जमा कर सारी प्रजा को एकता और प्रेम के रूप में बांध लिया। उन्होंने हर जाति के लोगों को योग्यतानुसार पद प्रदान किये। सभी के परामर्श से शासन का संचालन हो रहा था। उन्होंने न्याय का विशेष ध्यान रखा। किसी पर भी अत्याचार नहीं होना चाहिये और सभी प्रकार से शांति थी जो इस दोहा से स्पष्ट है –

इत यमुना उत नरमदा, इत चंबल उत टौंस।
छत्रसाल सौं, लरन की, रही का काहूं हौंस।।

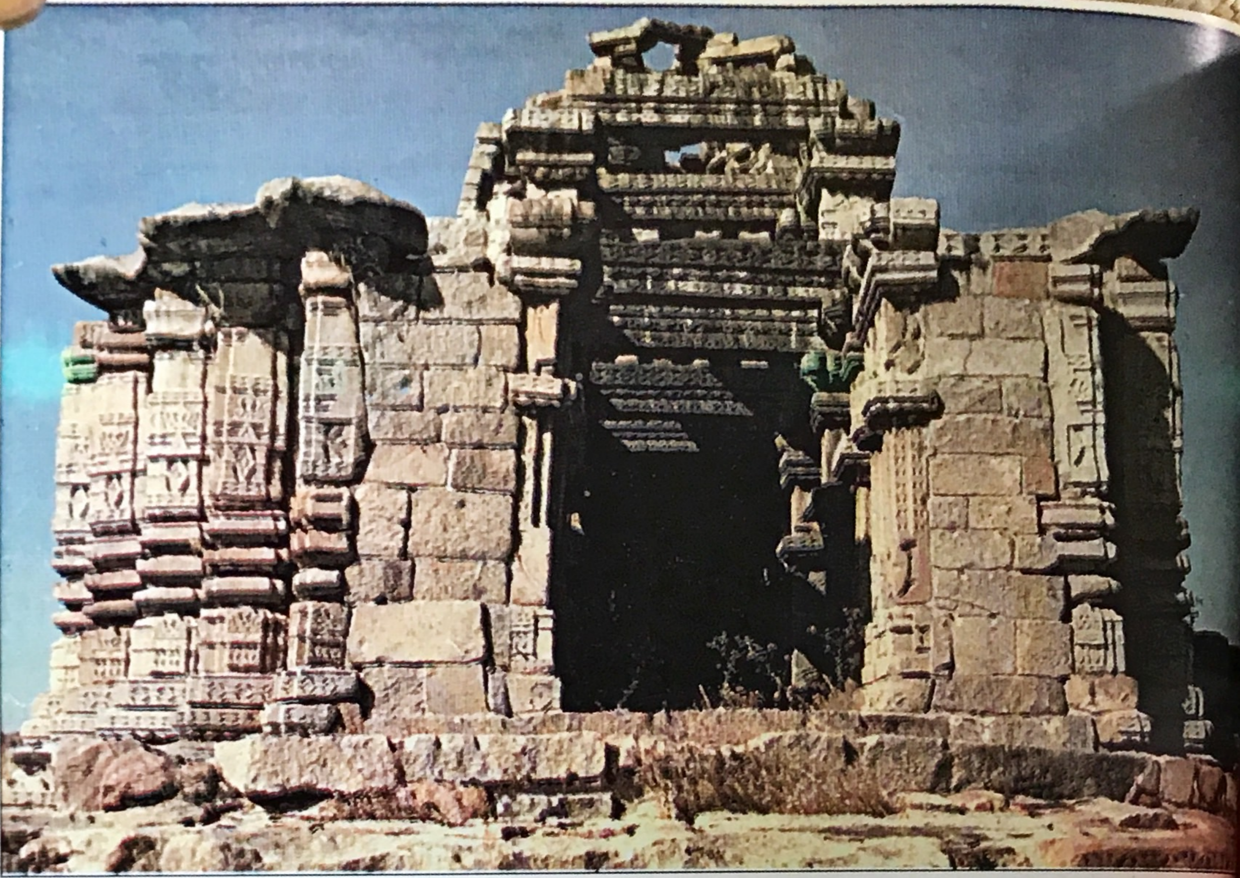
पर यह स्थिति भी न रह सकी, मुगल साम्राज्य कमजोर होने से सन् १७२९ में इलाहाबाद के सूबेदार वंगस खाँ तथा कुछ बुन्देला सरदार जिनमें दतिया के रामचंद, चंदेरी के दुर्जन जो छत्रसाल से ईर्ष्या करते थे। अस्सी हजार सवार और सौ हाथी लेकर बुन्देलखण्ड मे आये प्रारंभ में जैतपुर पर अपना अधिकार किया। अब छत्रसाल की आयु ८० वर्ष हो रही थी, वे युद्धों से दूर रहना चाह रहे थे, पर स्वाभिमान का सवाल था। अतः उन्होंने विचार किया कि अब अकेले वंगस खां की, फौज से मुकाबला नहीं किया जा सकता। तब उन्होंने बाजीराव पेशवा को अपना हितैषी मानकर उनको पत्र लिखा –



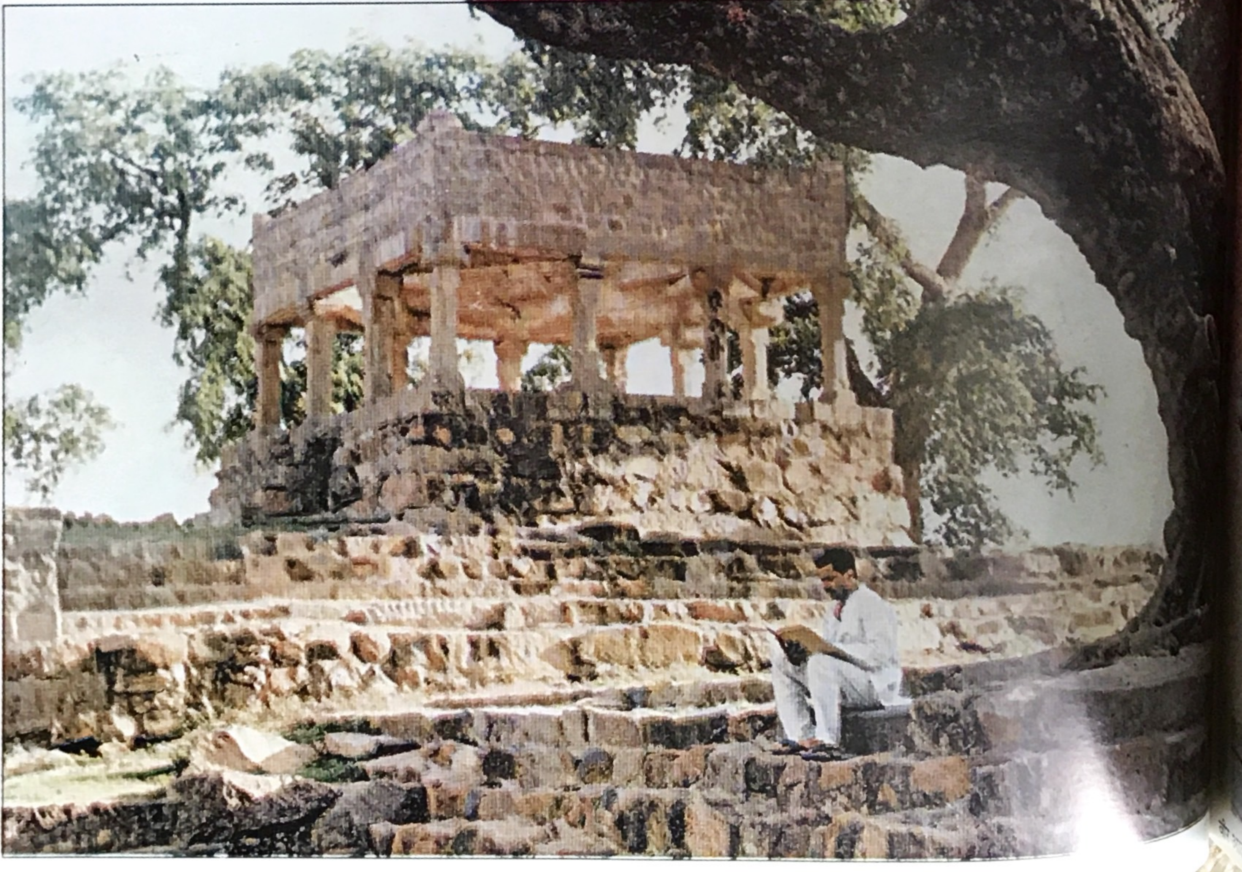
सूर्य मन्दिर, रहलियाँ, महोबा



कारा मठ, मदन सागर महोबा



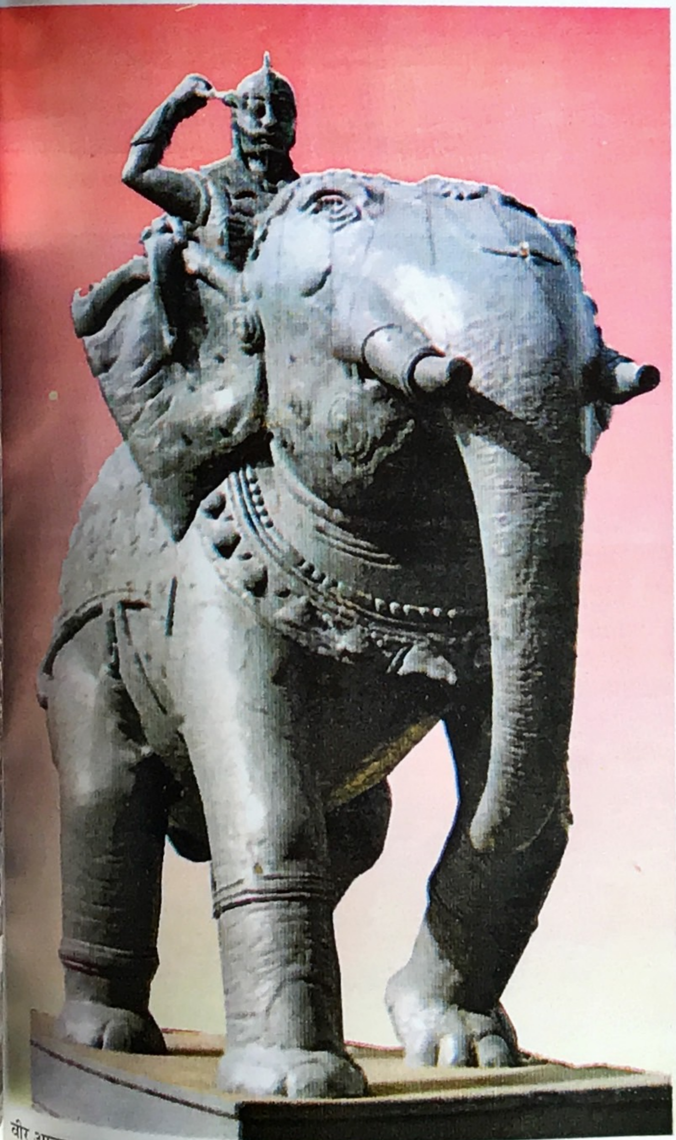
मुख्य द्वार खकरा मठ रहलियाँ, महोबा



आल्हा की बैठक , कीरत सागर, महोबा



ीलकण्ठ मन्दिर की सीढ़ियाँ



वीर आल्हा



वीर ऊदल



राजा इन्द्रजीत सिंह द्वारा 17 वीं शताब्दी में निर्मित "रायप्रवीण महल ओरछा"

सौजन्य-'नोबल्' कुण्डेश्वर





रायप्रवीण महल ओरछा की दीवारों पर चित्रित बुन्देली कलम के चित्र



ड्योढी दरवाजा चरखारी



कोठी ताल चरखारी



कालिंजर दुर्ग का पार्श्वभाग



कालिंजर नीलकंठ मन्दिर का बाह्य भाग



महारानी लक्ष्मी बाई पार्क, हमीरपुर



कल्पवृक्ष हमीरपुर (फूल आने के पूर्व की स्थिति)

झलकियाँ

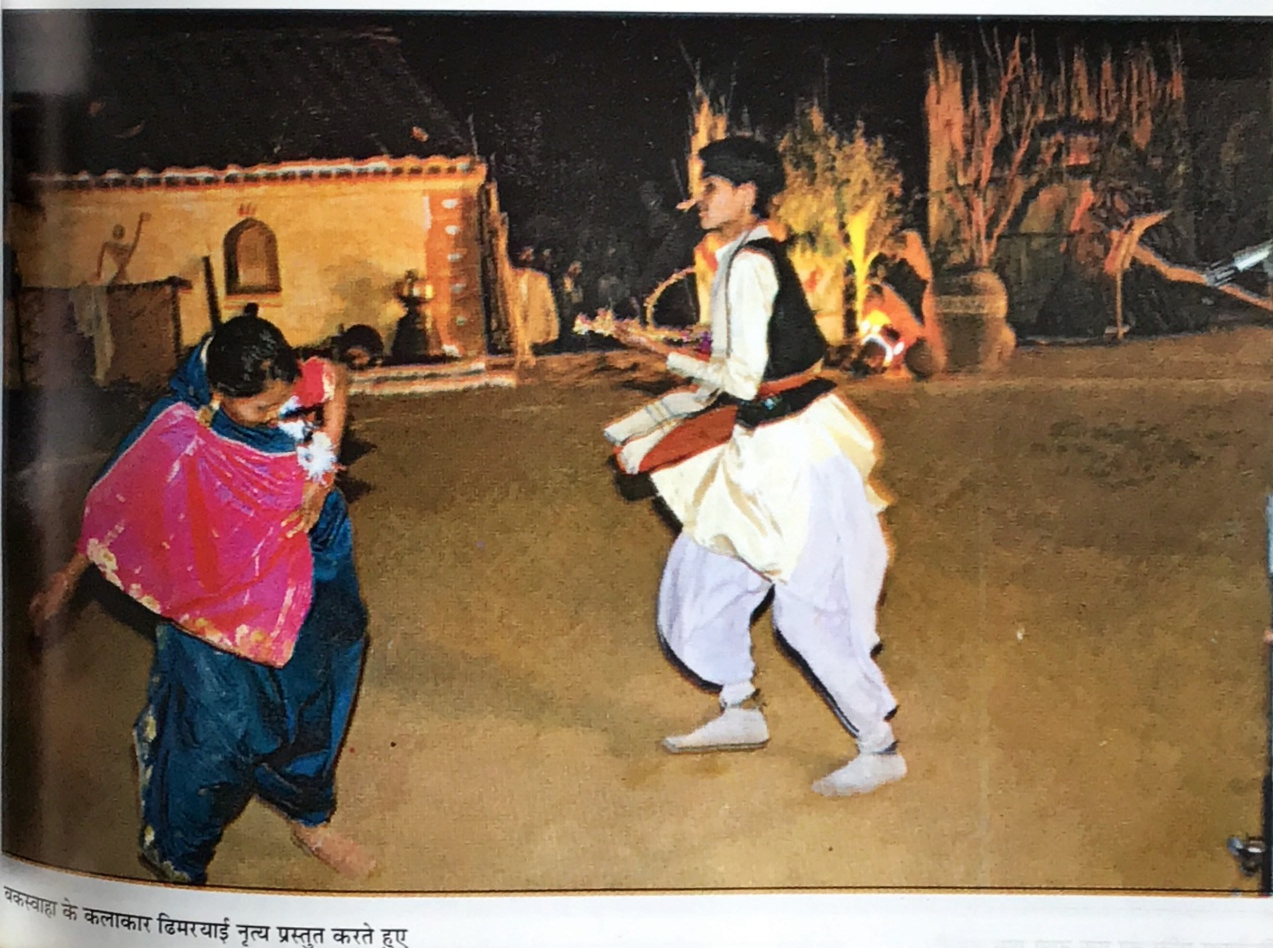




बुन्देली उत्सव 2001 के उद्घाटन अवसर पर अतिथि माननीय श्री मानवेन्द्र सिहं, लोक निर्माण राज्य मंत्री, म.प्र. शासन।



बुन्देली के वरिष्ठ कवि श्री माधव शुक्ल 'मनोज' को सम्मानित करते संरक्षक श्री शंकर प्रताप सिंह 'मुन्ना राजा' तथा कलेक्टर श्री राजीव रंजन



बकस्वाहा के कलाकार ढिमरयाई नृत्य प्रस्तुत करते हुए



बुन्देली व्यंजन प्रतियोगिता के दौरान एक स्टॉल पर सजे बुन्देली व्यंजन मुरका, डुबरी, बिड़ई आदि।



सिद्धेश्वर मंदिर का एक दृश्य ग्राम बसारी।



ख्य मंत्री माननीय श्री दिग्विजय सिंह जी को कलाकार अंशुमान सोनी अपनी कलाकृति भेंट करते हुए।



मुख्य मंत्री माननीय श्री दिग्विजय सिंह जी जैसीनगर राई नृत्य पार्टी को पुरस्कार स्वरूप शील्ड प्रदान करते हुए



बैलगाड़ी दौड़ प्रतियोगिता को हरी झंडी दिखाते माननीय अतिथि डॉ. गोविन्द सिंह, सहकारिता मंत्री म.प्र.शासन।



दंगल प्रतियोगिता में कुश्ती लड़ते हुए पहलवान।



मानीपुरा के कलाकार कछियाई प्रस्तुत करते हुए



दिवारी लोक नृत्य को प्रस्तुत करते कलाकार



बुन्देली उत्सव के दौरान काष्ठ शिल्प की प्रदर्शनी



बुन्देली उत्सव के दौरान मृदा मूर्ति कलाकार बालचन्द्र कुम्हार धमना की कलाकृतियाँ



चौपर प्रतियोगिता में चौपर खेलने का दृष्य।



लम्बी कूद में छलांग लगाता एक खिलाड़ी।



बाल सांस्कृतिक कार्यक्रमों में बच्चे कार्यक्रम प्रस्तुत करते हुए।



अश्व नृत्य प्रतियोगिता में प्रदर्शन क



राई नृत्य की प्रस्तुति करती नर्तकी



Colour Printing By : Priyanka Offset Press Complex M.P. Nagar Bhopal Ph. 555789